प्रकाशक

हिन्द पुस्तक भण्डार, दिल्ली-110006

संबद्ध संस्था

पुस्तक महल, दिल्ली-110006

*विक्रय केन्द्र*

• 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006........................फोन 239314, 2911979

• 10 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागज, नई दिल्ली-110002............फोन 3268292-93

*प्रशासनिक कार्यालय*

एफ-2/16, असारी रोड, दरियागज, नई दिल्ली-110002

फोन 3276539, 3272783, 3272784

टैलेक्स 031-78090 एस वी पी इन * फैक्स 91-11-2924673

*शाखा कार्यालय*

• 23-25, जाओबा वाडी, ठाकुरद्वार, बबई-400002 फोन 2010941

• 22/2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउड), बगलोर-560027 फोन 2234025

• खेमका हाउस, वूमेन्स हॉस्पिटल के सामने, अशोक राजपथ, पटना-800004 फोन 653644



Revised Price
Rs 40/-
PUSTAK MAHAL

मुद्रक पेरिस ऑफसेट प्रिन्टर्स, नारायणा, नई दिल्ली - 1100

# दो शब्द

मुझे प्रसन्नता है कि एक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है जिसकी विषय-वस्तु सर्वथा मौलिक और अप्रकाशित है, तथा वे साधनाए तथा सिद्धिया जिनके बल पर भारत सम्पूर्ण विश्व का सिरमौर कहा जाता है और प्रत्येक साधक की इन सिद्धियो को प्राप्त करने की लालसा रहती है, वे सिद्धिया स्पष्ट रूप मे इस पुस्तक के माध्यम से पहली बार प्रकट हो रही हैं।

सिद्धियो और साधनाओ का विवरण स्पष्ट रूप से दे दिया गया है, इस सबध मे जो भी पत्र मुझे प्राप्त हुए, मैंने विना उनमे सशोधन किये उन पत्रो को इस पुस्तक मे स्थान दिया है, अत इन सिद्धियो की सफलता-असफलता के प्रति प्रकाशक लेखक या सम्पादक किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नही हैं। जो साधक साधना करना चाहे, वे अपने विवेक और इच्छा के अनुसार इनसे लाभ उठा सकते हैं।

साधना कार्य एक कठिन कार्य है। इस पुस्तक मे जो भी सिद्धिया और साधनाएँ दी हैं, वे प्रामाणिक है, पर सफलता और असफलता के मूल मे साधक का विवेक और सामर्थ्य शक्ति मुख्य रूप से प्रभावक रहती है। यदि साधक किसी साधना मे असफल होता है तो यह उसके अपने विवेक और सामर्थ्य शक्ति की न्यूनता ही कही जा सकती है।

प्रकाशक महोदय को तत्परता और रुचि के कारण यह पुस्तक इतने शीघ्र समय मे सज-धज करके प्रकाशित हो रही है, उसके लिए प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

पुस्तक मे वर्णित घटनाए कल्पना एव यथार्थ का सुखद सामजस्य हैं।

यह पुस्तक डॉ० श्रीमाली के सपूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है। अत उनका नाम मैं अपने गुरु होने के नाते आदर व्यक्त करने के लिए दे रहा हूँ। इस दृष्टि से यह पुस्तक मैं गुरु चरणो मे समर्पित भाव से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

—योगी ज्ञानानन्द

# भूमिका

योगी ज्ञानानन्द ने परम प्रिय नारायणदत्त श्रीमाली के जीवन से सम्बन्धित पत्रो का सग्रह मुझे दिखाया, उनकी इच्छा इन पत्रो के प्रकाशन की है, इनमे जो पत्र उन्होंने चुने हैं वे वास्तव मे ही महत्वपूर्ण हैं और श्रीमाली जी के व्यक्तित्व की झाकी इन पत्रो के माध्यम से प्राप्त होती है।

मेरी धारणा है कि ये पत्र बहुत पहले प्रकाशित हो जाने चाहिए थे, क्योकि ये पत्र कालजयी होने के साथ-साथ साधना के क्षेत्र मे कार्य करने वाले साधको के लिए भी प्रेरणा स्तम्भ हैं। इनके माध्यम से वे अपने प्राणो मे एक नई ऊर्जा का सचार अनुभव कर सकेंगे और अपने पथ पर बढने मे उन्हे एक नया साहस और शक्ति प्राप्त हो सकेगी।

मैं श्रीमालीजी के बहुमुखी व्यक्तित्व से परिचित हू, यद्यपि मैं उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आकने मे समर्थ नही हू परन्तु जितना भी मैं उनके सम्पर्क मे आ सका हू उससे ज्ञात होता है कि उनका व्यक्तित्व हिमालय के समान विराट और गगा के समान निर्मल है। उन्होंने जीवन को पूर्ण क्षमता के साथ जीया है, और प्रत्येक क्षण का उन्होंने आनन्द के साथ उपभोग किया है। कई बार जब उनके व्यक्तित्व के बारे मे चिन्तन करता हू तो आश्चर्यचकित रह जाता हू कि एक व्यक्ति साधना के इतने विविध आयामो को किस प्रकार से स्पर्श कर सकता है, पर श्रीमालीजी का व्यक्तित्व हमारे सामने इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जिस प्रकार से वह अपनी विराटता को छू सका है।

मन्त्र के क्षेत्र मे श्रीमालीजी अद्वितीय हैं, उन्होंने मन्त्रो के मूलस्वरूप को स्पष्ट किया है और वेदोक्त मन्त्रो की मूल ध्वनि को स्पष्ट कर हमे उस युग से साक्षात्कार कराया है जब इन मन्त्रो की रचना हुई थी। उनके द्वारा इस प्रकार के मूलध्वनियुक्त मन्त्रो के टेप तैयार किये गए हैं जो कि अपने आप मे ऐतिहासिक कार्य है। आने वाली पीढियो के लिए ये टेप सग्रहणीय रहेगे क्योकि इनके माध्यम से वे

साधक वेदो की ऋचा और उसकी मूल ध्वनि का परिचय पा सकेंगे कि हमारे महर्षियो के मुह से वेदो की ध्वनि किस आरोह-अवरोह के साथ निसृत हुई थी जिससे कि उन मन्त्रो का प्रभाव अमिट था ।

वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ योगीराज श्री सच्चिदानन्दजी का शिष्य होना ही अपने आप मे अत्यन्त उच्चस्तरीय सौभाग्य है और यह सौभाग्य श्रीमालीजी को प्राप्त है । योगीराज सिद्धाश्रम के मूल प्रवर्तको मे से एक हैं और पूरा विश्व उनके प्रति कृतज्ञ है, इस प्रकार के परम श्रेष्ठ योगीराज के दर्शन ही हम साधको के लिए दुर्लभ हैं ऐसे योगीराज के शिष्य होना ही अपने आप मे इस व्यक्तित्व का प्रमाण है । श्रीमालीजी, श्री योगीराज सच्चिदानन्दजी के परम प्रिय शिष्य हैं और उनके माध्यम से मन्त्रो का साकार रूप हमे प्राप्त हो सका है ।

कामाक्षा के तान्त्रिक सम्मेलन की हल्की-सी झाकी योगी ज्ञानानन्द ने इस पुस्तक मे दी है । उस सम्मेलन मे श्रीमालीजी ने जो दुर्लभ और कठिन साधनायें सबके सामने उपस्थित की थी वे अपने आप मे अन्यतम हैं । उनके तान्त्रिक स्वरूप को मैं पहले से ही जानता था और यदि इस क्षेत्र मे उन्हे आधुनिक गोरखनाथ कहा जाए तो अतिशयोक्ति नही होगी ।

ज्योतिष के क्षेत्र मे उन्होंने जो कुछ योगदान दिया है उससे पूरा भारत परिचित है, आने वाले समय मे इस क्षेत्र मे उनका और अधिक योगदान हमे मिरा सकेगा, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है ।

श्रीमालीजी के व्यक्तित्व के बारे मे कुछ लिखू ऐसी सामर्थ्य मैं अपने आप मे अनुभव नही करता हू । उनके सामने मैं लघु हू, भले ही आयु मे मैं उनसे बडा हू परन्तु वास्तव मे ज्ञानवृद्ध ही वृद्ध कहलाता है इसलिए मैं उनके प्रति सम्मान और आदर प्रदान करता हू ।

उन्होंने जीवन मे जो कष्ट और यातनाए सहन की हैं, वे रोमाचकारी हैं । उन्होंने कभी भी अपने जीवन को जीवन समझा ही नही, अपितु अपने प्रत्येक क्षण को सार्थकता प्रदान करने मे ही जुटे रहे । तान्त्रिक क्षेत्र मे उन्हे त्रिजटा अघोरी जैसे युग-पुरुष का सान्निध्य प्राप्त हो सका है, यह कम महत्व की बात नही है ।

मैं श्रीमालीजी के स्वभाव से परिचित हू । वे अत्यन्त सकोची हैं, अपने बारे मे कभी कुछ भी नही कहते हैं अपितु अपनी प्रशसा सुनना भी वे पसन्द नही करते । इसलिए इन पत्रो का प्रकाशन यदि नही होता तो साधक समाज एक बहुत बड़े अभाव मे रह जाता । वास्तव मे ही उनके ये पत्र प्रकाशन के योग्य हैं जिससे कि आने वाली पीढिया और हम सब लाभ उठा सकें । इस दृष्टि से ज्ञानानन्द ने जो कार्य किया है, वह वास्तव मे ही सराहनीय है ।

इन पत्रो के साथ कुछ दुर्लभ साधनाओ से सम्बन्धित पत्र भी प्रकाशित हो रहे हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि सही रूप मे साधना करने पर उसका फल निश्चय ही मिलता है। इससे भी साधक वर्ग लाभ उठा सकता है। आज भी श्रीमालीजी सक्रिय हैं, और अपने ज्ञान को शिष्यो के माध्यम से प्रदान करने मे प्रसन्नता अनुभव करते हैं, यह उनके पत्रो से स्पष्ट है।

मेरी भावनाए उनके प्रति नमन हैं और मैं प्रभु से प्रार्थना करता हू कि वे अभी और काफी समय तक गृहस्थ में रहे जिससे कि उनका लाभ समाज उठा सके और वे दीर्घायु हो जिससे हम सब उनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

—भूर्भुआ बाबा

# विषय क्रम



## साधना और सिद्धियां

# मनोद्गार

बात प्रारभ करता हू, कामाक्ष्या के तान्त्रिक सम्मेलन से। इस सम्मेलन की काफी कुछ चर्चा हम लोगो के बीच थी, विशेषकर जो तत्र मे विश्वास रखते थे या तान्त्रिक क्रियाए जानते थे, उनके लिये यह एक अभूतपूर्व अवसर था। जबकि तत्र की आराध्य कामाक्षा स्थान पर तान्त्रिक सम्मेलन होने जा रहा था। यद्यपि इसकी चर्चा पत्र-पत्रिकाओ मे नही थी, परन्तु तत्र के जानने वालो के लिये यह सूचना अनुकूल थी और इसमे भारत के ही नही, कुछ विदेशो के भी तान्त्रिको के भाग लेने के बारे मे समाचार सुनने को मिले थे।

यह भी सुना था कि इसमे पूरे भारत से विशिष्ट तान्त्रिक भाग लेंगे और उन तान्त्रिको के भाग लेने की भी यह शर्त थी कि इसमे केवल वे ही तान्त्रिक भाग ले सकते हैं जो कि दस महाविद्याओ मे से कोई एक महाविद्या सिद्ध की हो। तत्र के क्षेत्र मे यह काफी ऊचे स्तर की बात होती है। यह शर्त इसलिये रख दी थी जिससे कि विशिष्ट तान्त्रिक ही भाग ले सकें, सामान्य तान्त्रिको से प्रागण भर जाय और व्यर्थ मे ही समय बीत जाय, आयोजक ऐसा नही चाहते थे।

यह आयोजन न तो राजनीतिक स्तर पर था और न सामाजिक स्तर पर। इसके पीछे न किसी सेठ साहूकार का धन था और न कौतूहल आदि। इसका एकमात्र उद्देश्य यही था कि बदलते हुए परिवेश मे तान्त्रिको का समाज को क्या योगदान हो सकता है, और समाज उनसे किस प्रकार से लाभ उठा सकता है?

इसके अलावा यह भी ज्ञात करना था कि वास्तव मे उच्चकोटि के कितने तान्त्रिक है। इसके लिये उन माध्यमो को चुना था जिनका सम्पर्क सुदूर हिमालय स्थित योगियो से और तान्त्रिको से भी था।

यहा जब मैं 'तान्त्रिक' शब्द का प्रयोग कर रहा हू तो इसका तात्पर्य केवल तान्त्रिक ही नही अपितु मत्र शास्त्र के जानने वाले व्यक्तियो या विद्वानो से भी है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इस सम्मेलन में उच्च कोटि के मत्र शास्त्री और तत्र शास्त्रियो को बुलाना था और परस्पर विचार विमर्श करना था।

लेने के लिये उत्सुक थे। अधीरता से उस तारीख की प्रतीक्षा कर रहे थे जब यह तान्त्रिक सम्मेलन होना था। कुल १० दिन का यह सम्मेलन था और उन सभी तान्त्रिको से सम्पर्क स्थापित किया जा चुका था जो इस क्षेत्र मे विशिष्ट थे या अति विशिष्ट थे। इसके साथ-ही-साथ उन मत्र शास्त्रियो या मत्र के जानने वालो और विद्वानो को भी बुलाया था जिन्होने उस क्षेत्र मे अभूतपूर्व कार्य किया हो, मत्रो के माध्यम से जो कुछ भी करने मे समर्थ हो।

उन सभी योगियो और साधको से सम्पर्क किया जा चुका था, जिन्होने अपने जीवन का बहुत बडा हिस्सा उस विशिष्ट साधना मे बिताया हो, और यह प्रसन्नता की बात थी कि भारत के अति विशिष्ट मत्र-मर्मज्ञो और तान्त्रिको ने भाग लेने की स्वीकृति दी थी। इनमे पगला बाबा, स्वामी चैतन्य मूर्ति, कृपालु स्वामी, बाबा भैरवनाथ, स्वामी प्रेत बाबा, अघोरी गिरजानन्द, अघोरी खर्परानद भारती, त्रिजटा अघोरी, आदि कई ऐसी विशिष्ट विभूतिया थी जिनके बारे मे लाखो करोडो बार सुना था, जिनके साथ आश्चर्यजनक कहानिया जुडी हुई थी जो विशिष्ट सिद्धियो के स्वामी थे। इस प्रकार के तान्त्रिको, मान्त्रिको और अघोरियो का सम्मेलन एक स्थान पर हो, यह हम जैसो के लिये आश्चर्यजनक था।

इस सम्मेलन मे निर्णय यही था कि इसमे वाममार्गी और दक्षिण मार्गी साधना से सम्पन्न साधक एक स्थान पर एकत्र हो और अपनी सिद्धियो का प्रदर्शन करें। सिद्धियो को प्राप्त करने मे जो बाधाए आ रही है, उनका निराकरण किस प्रकार से हो तथा इन साधनाओ और सिद्धियो का लाभ जनमानस को किस प्रकार से मिल सके, इसका निर्णय और विचार इस सम्मेलन मे होना था।

इसके अलावा पिछले पाच हजार वर्षो मे यह पहला अवसर था जबकि इस प्रकार के अति विशिष्ट योगी, साधक, तान्त्रिक और मान्त्रिक एक स्थान पर एकत्रित हुए। इसके लिये कुछ विशिष्ट योगियो ने जो प्रयत्न किया था वह वास्तव मे ही सराह-नीय था, और उनके ही प्रयत्नो से यह असभव कार्य सभव हो सका था। उनके प्रयत्नो से ही सुदूर हिमालय स्थित साधको से सम्पर्क हो सका था और उनको उस सम्मेलन मे भाग लेने के लिये तैयार किया जा सका था।

प्रयत्न यह था कि इस सम्मेलन की चर्चा ज्यादा न हो, क्योकि इससे पूरे भारत से लोग दर्शनो के लिये या मिलने के लिये एकत्र हो जाते और इससे अव्यवस्था-सी उत्पन्न हो जाती, फलस्वरूप जिस उद्देश्य के लिये यह सम्मेलन बुलाया जा रहा था, वह उद्देश्य ही अपने आप मे समाप्त हो जाता। इसके अलावा साधको ने भी यह शर्त लगा दी थी कि हम जन-साधारण के सामने न तो जाना चाहते हैं और न अपना या अपनी सिद्धियो का प्रदर्शन करना चाहते हैं।

उनकी बात अपने स्थान पर सही भी थी और यह उचित ही था कि जिस उद्देश्य के लिये यह अभूतपूर्व सम्मेलन हो रहा है, उसकी गरिमा बनी रह सके, साथ-

ही-साथ इसमे जो महापुरुष या विशिष्ट साधक भाग ले रहे हैं उनकी प्रतिष्ठा मे किसी प्रकार की आच न आवे तथा किसी प्रकार की न्यूनता न रहे।

पिछले बीस वर्षों मे मैंने तत्र के क्षेत्र मे घुसने का प्रयत्न किया है और तारा साधना को, जो कि दस महाविद्याओ मे से एक है सिद्ध किया है, और सफलतापूर्वक प्रयोग भी किया है, इससे मैं अपने आपको कुछ समझने लग गया था। सही कहू तो अपने आपको बहुत कुछ समझने लग गया था, परन्तु इस सम्मेलन मे भाग लेने पर ज्ञात हुआ कि मैं कुछ भी नही हू या यो कहू कि भाग लेने वाले साधको के पास जो सिद्धिया हैं उनके सामने मै नगण्य हू, धूल के कण जितना भी मेरा महत्त्व नही है। यदि मै सैकडो वर्षों तक उनके चरणो मे बैठकर ज्ञान प्राप्त करू तब भी उनकी थाह नही आ सकती।

इस तारा साधना की कडी परीक्षा देने के बाद ही मुझे इस सम्मेलन मे भाग लेने की अनुमति मिली थी। मैं सोचता हू कि पिछले बीस वर्षों मे भी मैं जो नही जान सका था वह इस सम्मेलन से जान पाया। यह मेरे पूर्व जन्म और इस जन्म का पुण्य प्रभाव ही था, जिससे कि मैं इस सम्मेलन मे भाग लेने का अधिकारी माना गया। यह मेरी पीढी का सौभाग्य है कि इस पीढी मे इस प्रकार का अभूतपूर्व सम्मेलन हो सका और हम अपनी आखो से इस सम्मेलन को देख सके। वह मेरे पुण्यो का उदय था जिससे कि मैं उन विशिष्ट साधको को देख सका जिनके तो दर्शन ही दुर्लभ हैं। यदि तत्र और मत्र इस देश मे जीवित हैं तो केवल इस प्रकार के विशिष्ट साधको के बल पर ही। ये साधक नही, मत्र-तत्र के मूर्तमत रूप हैं।

जीवन के प्रारम्भ मे मैं कानून का विद्यार्थी रहा था और मैंने उच्च श्रेणी मे कानून की परीक्षा पास की थी, पर मेरे द्वारा एक बार एक गलत फैसला हो जाने के कारण एक निर्दोष को फासी की सजा मिल गई। यह मेरी गलती थी। उस गलती से मैं इतना अधिक दुखी रहा कि मैंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, और हमेशा के लिये नौकरी छोड दी। इसके बाद पत्रकारिता के क्षेत्र मे मैंने भाग लिया और अपनी पैनी दृष्टि तथा निर्मम लेखनी से मैं शीघ्र ही पत्रकारो के बीच लोकप्रिय हो गया और पत्रकार-सघ का अध्यक्ष भी कई वर्षों तक रहा, अग्रेजो का जमाना होने के कारण मुझ पर उनकी क्रुद्ध दृष्टि शुरू से ही थी, अत उन्होंने मेरे चारो तरफ घेराबन्दी प्रारभ की। इस घेरा बदी मे मैं जकडा जाऊ इससे पहले ही मैंने ससार छोड दिया, शादी मैंने की नही थी इसलिये घरबार की चिन्ता थी नही। निश्चय यही कर लिया था कि आगे का पूरा जीवन साधना मे ही व्यतीत करना है, और अज्ञात रहस्यो की खोज मे जीवन बिता देना है।

प्रारम्भ से ही मैं कुतर्की रहा हू, सहज ही मैं किसी से प्रभावित होता नही, बातचीत मे मेरी पत्रकारिता तुरन्त सामने आ जाती है और जिस व्यक्ति से बातचीत करता हू, अपने पैने प्रश्नो से उसके व्यक्तित्व की चीरफाड इस प्रकार से कर लेता हू

सामने आ जाता है, और इस प्रकार मैं उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होने की अपेक्षा वह मेरे व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाता है।

साधु जीवन धारण करने के बाद मैंने इस आदत के कारण कई शत्रु बना लिये। जो भी विशिष्ट साधु या तान्त्रिक होता उससे मिलता और दो चार घटो मे ही मै उसकी कलई खोल देता। उसके भीतर जो कमजोरी होती वह मैं उसके सामने ही उजागर कर देता और इस प्रकार मेरी पत्रकारिता मुझे सहज ही किसी पर विश्वास नही करने देती।

आज भी मै इस आदत को छोड नही पाया हू। कानून का विद्यार्थी और अधिकारी होने के नाते वहुत अच्छी तरह से जिरह कर लेता हू और सामने वाले के अस्त्रो से ही उसको घायल कर लेता हू, साथ-ही-साथ मेरी पत्रकारिता सामने वाले को पूरी तरह से नगा करके रख देती है, इसलिये मै अपने जीवन मे वहुत ही कम लोगो से प्रभावित रहा हू और किसी के प्रति मेरे मुह से 'गुरु' शब्द तो निकल ही नही पाया है, क्योकि जब तक अत्युच्च साधना से सम्पन्न व्यक्तित्व नही मिलता, तव तक मै उसके सामने नतमस्तक हो ही नही सकता। पिछले वीस वर्षो मे मै सैंकडो साधुओ, मान्त्रिको और तान्त्रिको के सम्पर्क मे आया और उनसे सीखने को मिला, परन्तु प्रभावित किसी से भी नही हो पाया। एक प्रकार से मुझे ये सभी खण्ड-खण्ड रूप मे अवश्य मिले, उनका खण्डित व्यक्तित्व अवश्य देखने को मिला परन्तु पूर्ण व्यतित्व मेरे सामने कोई आया ही नही और इसीलिये मेरा सिर किसी के चरणो मे पूरी तरह से झुक ही नही पाया। जव तक मेरा व्यक्तित्व प्रभावित नही होता तव तक मेरे होठ 'गुरु' कह ही नही पाते। एक प्रकार से देखा जाय तो मैं पिछले वीस वर्षो मे 'गुरुहीन' ही रहा हू। यद्यपि इस अवधि मे मैने तत्र की कुछ क्रियाए अवश्य सीखी, कुछ लोगो के कार्यो से प्रभावित भी हुआ, कुछ विशिष्ट साधको के सम्पर्क मे भी आया, भूत वावा से मैंने विशिष्ट तान्त्रिक साधना-तारा साधना-भी सीखी और उनके प्रति अपने मन मे अनुकूल धारणायें भी वनाई, परन्तु हर वार मेरी पत्रकारिता वीच मे आ जाती, और इस वजह से उनके खण्ड व्यक्तित्व से तो प्रभावित हो जाता, परन्तु अभी तक कोई ऐसा पूर्ण व्यक्तित्व नही मिला जो वास्तव मे ही उच्च कोटि की क्रियाओ से सम्पन्न हो और मेरे लिये गुरु पद का अधिकारी हो।

कुछ तान्त्रिक अवश्य मिले, वे वाम मार्गी थे पर उन्हे 'दक्षिण मार्ग' साधना का क ख ग भी ज्ञात नही था, कुछ ऐसे साधक भी मिले जो तत्र की दक्षिण मार्गी साधना मे निष्णात थे, पर वाम मार्ग साधना मे शून्य थे।

कुछ हठ योगी भी मिले जिनके पास कुछ सिद्धिया थी पर वे सामान्य सिद्धिया थी। साधारण नागरिक उससे प्रभावित हो सकते हैं पर मेरे प्रभावित होने का तो प्रश्न ही नही था। कुछ मत्र शास्त्री मिले जो मत्रो के माध्यम से अलौकिक कार्य करने मे सक्षम थे, परन्तु इसके अलावा उनके पास कुछ भी नही था।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यह मेरे जीवन का दुर्भाग्य ही है कि इतना भटकने के बाद भी कोई पूर्ण साधक नही मिला, जिसे दक्षिण मार्ग और वाम मार्ग के तन्त्र का पूर्ण ज्ञान हो और जो इस क्षेत्र का अधिकारी माना जाता हो, साथ ही जिसे मन्त्र का भी उच्च कोटि का ज्ञान हो और अघोरी साधना या गोरक्ष साधना के बारे मे विशेष जानकारी हो। एक ही व्यक्तित्व मे जब तक इन सारे गुणो का समावेश नही होता तब तक वह पूर्ण सक्षम कहलाने मे समर्थ नही हो सकता और जब तक ऐसा व्यक्तित्व मेरे सामने नही आता तब तक मेरा सिर किसी के चरणो मे नही झुक सकता था।

ऐसी स्थिति मे जब मैंने इस तान्त्रिक सम्मेलन की चर्चा सुनी और यह ज्ञात हुआ कि इसमे विशिष्ट साधक भाग लेंगे तो मन मे आशा का सचार हुआ कि शायद इनमे कोई ऐसा पूर्ण सक्षम व्यक्तित्व मिल सके, जिसके सामने मेरा सिर नमन हो या जो वास्तव मे ही इन सारी क्रियाओ का जानकार हो।

मैं चाहता यह था कि ऐसे व्यक्तित्व को केवल 'थ्योरिटिकल' ज्ञान ही नही हो अपितु 'प्रेक्टिकल' ज्ञान भी हो, जिससे कि वह अपने ज्ञान का योगदान दूसरो को दे सके, समाज कल्याण मे सहायक हो सके।

इन बीस वर्षो मे मैंने यह भी अनुभव किया कि जिनके पास भी ऐसा ज्ञान होता है उनकी मनोवृत्तिया दूषित हो जाती है, या उनका स्वभाव पूरी तरह से अक्खड किस्म का हो जाता है, बात करने मे उन्हे कुछ भी होश नही रहता, या तो वे नशे मे चूर रहते हैं, जिससे अपने अलावा उनको दीन-दुखिया की भी खबर नही रहती या वे इतने एकान्तवासी हो जाते हैं कि दूसरो से बात करना भी हेठी समझते है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति क्रोधी और मनमर्जी के मालिक होते हैं। ऐसे लोग किस समय क्या कर बैठेंगे इसको कल्पना ही नही की जा सकती। सीधे-सीधे बात करते-करते वे गालिया देने लग जाते हैं और कई लोगो को तो मैंने मारपीट करते हुए भी देखा है।

मेरी धारणा यह है कि ज्ञान ज्ञान होता है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो, ज्ञान के साथ नम्रता और व्यावहारिकता आवश्यक है, पर जो तान्त्रिक अघोरी या मान्त्रिक है उनका नम्रता से दूर का भी वास्ता नही रहता, वे अपने ही खयालो मे मस्त, क्रोधी, अहकारी, और अपने आपको सर्वोच्च समझते हैं, बिना नम्रता के पूर्ण व्यक्तित्व सभव नही है, नम्रता के साथ यदि साधना होती है, तो वह व्यक्तित्व अपने आप मे ही विशिष्ट बन जाता है।

मुझे कही पढी हुई घटना स्मरण आ रही है। एक बार सारे ऋषि-मुनियो की सभा हुई, और उसमे यह वाद-विवाद हुआ कि देवताओ मे सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है?

इसका भार भृगु ऋषि पर डाला और यह विचार हुआ कि ऋषियो मे भृगु ऋषि श्रेष्ठ हैं अत वे किसी भी प्रकार से किसी भी युक्ति से यह ज्ञात करे कि ब्राह्म, विष्णु, महेश इन श्रेष्ठतम देवताओ मे से, सर्व श्रेष्ठ देवता कौन हैं, जिसमे कि उनको सर्वोच्चता प्रदान की जा सके।

भृगु ऋषि सबसे पहले ब्रह्म लोक मे गए। वहा ब्रह्मा जी सृष्टि रचना मे सलग्न थे। वे वहा जाकर दो क्षण तो उनके कार्य को देखते रहे और जब ब्रह्मा ने ऋषि को प्रणाम किया तो किसी भी प्रकार का आशीर्वाद या उत्तर नही दिया, इसके विपरीत उन्होने लातो के प्रहार से जो कुछ उन्होंने निर्माण किया था उसको तोड-फोड दिया। यही नही अपितु इतना अधिक नुकसान कर दिया कि कई वर्षों की मेहनत बरबाद कर दी। ऐसा देखकर ब्रह्मा को क्रोध चढ आया और ऋषि को पीटने के लिए उद्यत हो गए।

ऋषि ने जब ब्रह्मा के क्रोध से तमतमाते हुए चेहरे को देखा और अनुभव किया कि किसी भी समय हाथापाई हो सकती है तो वे वहा से खिसक गए।

ब्रह्म लोक से निकल कर भृगु सीधे कैलाश पर्वत की ओर गए, जहा महादेव का निवास स्थान था। वहा पर महादेव तथा पार्वती दोनो बातचीत मे सलग्न थे।

ऋषि ने आव देखा न ताव और सीधे पार्वती के कधे पर चढ गए। पार्वती हडबडाकर उठ खडी हुईं तो ऋषि फिर उचक कर उनके कधो पर बैठने की कोशिश करने लगे।

प्रलयकारी महादेव ने जब अपनी आखो के सामने अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार का अभद्र व्यवहार होते देखा तो उनके क्रोध का पारावार न रहा और तुरन्त त्रिशूल उठा कर भृगु को मारने के लिए उनकी तरफ झपटे।

क्रोध से उनकी आखें लाल हो रही थी और जितने वेग से उन्होंने त्रिशूल उठाया या वह आश्चर्यजनक था, भृगु की मृत्यु निश्चित थी, पर वे इससे पूर्व ही वहा से भाग खडे हुए। कुछ दूरी तक तो महादेव ने पीछा किया, पर जितनी तेजी से भृगु भागे थे वह आश्चर्यजनक था।

वहा से भृगु सीधे क्षीरसागर पहुचे, जहा शेषनाग की शैया पर भगवान विष्णु लेटे हुए थे और लक्ष्मी उनके चरण दबा रही थी।

भृगु ने जब ऐसा देखा तो तुरन्त जोरो की एक लात विष्णु के सीने मे दे मारी। यह देखकर शेषनाग क्रोध से फुफकार उठा और उसके फनो से ज्वालाए-सी निकलने लगी, लक्ष्मी एक बार तो हतप्रभ हो गईं, पर दूसरे ही क्षण उनका चेहरा क्रोध से लाल अगारे की तरह दहक उठा।

पर इधर ज्यो ही भृगु की लात विष्णू के सीने पर लगी, त्योही विष्णु शात चित्त से उठ बैठे और भृगु के चरणो को पकड कर दबाने लगे, बोले—आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं, और मेरा सीना अत्यन्त कठोर, लात मारने से आपके चरणो को अवश्य ही चोट पहुची होगी, इसका मुझे दुख है और इसके लिए क्षमा प्रार्थी हू, कहते-कहते उनकी आखो मे आसू छलछला आए।

भृगु उनकी नम्रता के सामने परास्त हो गए। उन्होंने कहा—"प्रभु मैं आपकी परीक्षा ले रहा था, वास्तव मे ही देवताओ मे आप सर्वोपरि हैं।"

वह व्यक्तित्व सर्वोत्तम नहीं हो सकता जो विद्वान या ज्यादा ज्ञानवान हो,

अपितु वह व्यक्तित्व महान है जिसमे विद्वत्ता के साथ-साथ नम्रता भी हो।

मैंने इस प्रकार के व्यक्तित्व नही देखे, जिनमे विशिष्ट ज्ञान के साथ-साथ नम्रता भी हो। तात्रिक और मात्रिक क्षेत्र मे मैंने विशिष्ट योगी और साधक तो अवश्य देखे, परन्तु अनमे नम्रता का सर्वथा अभाव था। उनमे अह की प्रवृत्ति जरूरत से ज्यादा थी, वे प्रशसाप्रिय थे। उनको इससे आत्मतुष्टि मिलती थी। नम्रता और विद्वत्ता इन दोनो का सगम मुझे देखने को ही नही मिला, खास तौर से इस तात्रिक क्षेत्र मे।

अत जब मैंने इस प्रकार के विशिष्ट तात्रिक सम्मेलन की चर्चा सुनी और यह भी सुना कि इसमे सुदूर हिमालय स्थित साधक भी भाग लेंगे और इसमे केवल वे ही तात्रिक या मात्रिक भाग ले सकेंगे जिनमे विशिष्ट ज्ञान हो या विशिष्ट तात्रिक क्षमता हो तो मन मे आशा का सचार हुआ कि शायद इस बार मेरी इच्छा पूर्ण हो जाय। हो सकता है इस बार मुझे खण्ड-खण्ड व्यक्तित्व के स्थान पर पूर्ण व्यक्तित्व से मिलना हो जाय, यह भी हो सकता है कि कोई ऐसा व्यक्ति या व्यक्तित्व मिल जाय जिसके सामने मेरा सर्वांग नतमस्तक हो सके और जिसे मैं गुरु शब्द से सम्बोधित कर सकू।

यह तो मेरी धारणा थी ही कि मेरा गुरु वही हो सकेगा जिसमे सभी प्रकार की तात्रिक और मात्रिक क्रियाओ का समावेश हो या इस क्षेत्र मे उच्चतम ज्ञान से सम्पन्न हो, साथ ही वह ऐसा व्यक्तित्व हो जिसमे ज्ञान के साथ-साथ नम्रता का समावेश हो, वह केवल अघोरी योगी, या तात्रिक ही नही हो अपितु सही शब्दो मे मानव भी हो। मैं ऐसे ही मानव की खोज मे था जो कि पूर्ण हो, क्योकि गुरु 'पूर्णता' का ही पर्याय होता है।

इन सब बातो से मैं रोमाचित था और इसीलिए मैंने इस सम्मेलन मे भाग लेने का निश्चय किया था, परन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि इसमे वही भाग ले सकता है जो उच्च साधना से सम्पन्न हो, अर्थात् तात्रिक क्षेत्र मे दस महाविद्याओ मे से किसी एक विद्या को सिद्ध किया हो या वाम मार्गी साधना मे 'श्यामा साधना' सफलतापूर्वक सम्पन्न की हो, या गोरक्ष साधना मे अघोर तत्र के साथ पीताम्बरी साधना सम्पन्न हो, या तात्रिक क्षेत्र मे सजीवनी विद्या मे निष्णात हो, इस प्रकार के उन्होंने कुछ माप दण्ड, रख दिए थे और जो व्यक्ति इनमे से किसी एक माप दण्ड पर खरा उतरता उसी को इस सम्मेलन मे भाग लेने का अधिकार दिया जाता।

मैंने भूत बाबा से तारा साधना सफलतापूर्वक सम्पन्न की थी और उसमे दक्षता भी थी, अत मैंने क्रिया रूप मे तारा साधना सम्पन्न करके दिखा दी तो आयोजको ने मुझे प्रवेश पत्र दे दिया। यह प्रवेश पत्र पाना ही मेरे लिए सौभाग्य का सूचक रहा, क्योकि इसकी वजह से मैं इस सम्मेलन मे भाग ले सका, विशिष्ट तात्रिको के सम्पर्क मे आ सका और जो मेरा लक्ष्य था, जीवन की जो इच्छा थी वह पूरी हो सकी, अर्थात मुझे ऐसा गुरु प्राप्त हो सका जो मेरे मानस मे अकित था।

तान्त्रिक सम्मेलन के प्रारम्भ होने के एक दिन पहले मैं सयोजक स्वामी अभयानन्द जी से मिला। वे अत्यन्त व्यस्त थे और व्यस्तता से भी ज्यादा परेशान थे। उनकी परेशानी का मूल कारण यह था कि इतने बडे आयोजन मे किसी प्रकार की न्यूनता न रह जाय और उससे भी बडी चिन्ता की बात यह थी कि इसमे भाग लेने वाले सभी विशिष्ट साधक थे और उन सभी का स्वभाव अपने आप मे अलग था। कुछ तान्त्रिको के बारे मे तो यह भी सुना था कि वे साक्षात दुर्वासा के अवतार हैं, क्रोध तो उनकी नाक पर रहता है और थोडा-सा भी अनुचित या उनके मनोनुकूल न होने पर वे कुछ भी कर बैठते है, इस दृष्टि से सयोजक यदि परेशान थे तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही।

इस सम्मेलन के मूल मे भूर्भुआ बाबा थे, जो कि मूलत आध्यात्मिक सन्त हैं परन्तु इसके साथ-ही-साथ विशिष्ट तान्त्रिक भी है, उनकी ख्याति भारत मे ही नही, पूरे विश्व मे है। तन्त्र के क्षेत्र मे और अध्यात्म के क्षेत्र मे उनका नाम अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है। विशिष्ट व्यक्तियो को एक स्थान पर एकत्र करने मे उनका सबसे बडा योगदान रहा है और इस सम्मेलन को सम्पन्न करने के मूल मे उनकी ही प्रेरणा और परिश्रम रहा है।

मैं सम्मेलन के एक दिन पहले प्रयत्न करके भूर्भुआ बाबा से मिला तो वे शान्त चित्त थे, फिर भी उनका मस्तिष्क अत्यन्त क्रियाशील था। मैने इस सम्मेलन के बारे मे जब कुछ जानना चाहा तो उन्होने कहा कि यह मेरे जीवन की कसौटी है। यदि यह दस दिन का सम्मेलन भली प्रकार से सम्पन्न हो गया तो मैं इसे अपने जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि ही मानूगा।

भूर्भुआ बाबा के बारे मे काफी कुछ सुन रखा था और उनके बारे मे जो कुछ सुना था प्रत्यक्ष मे देख कर सुखद अनुभूति ही हुई थी। मूलत वे तान्त्रिक है परन्तु पिछले कई वर्षो से उन्होंने अपना जीवन अध्यात्म के क्षेत्र मे विकसित किया है। इनकी आयु के बारे मे काफी मतभेद है। कुछ तान्त्रिक इनकी आयु ६०० वर्षों से भी ज्यादा बताते है और उनके पास इसका प्रमाण भी है, परन्तु देखने पर वे ६०-७० वर्ष से ज्यादा आयु के नही लगते, शान्त और गम्भीर मुखमण्डल, पैनी दृष्टि, और तेजस्वी व्यक्तित्व। उनसे बातचीत करते समय सुखद अनुभूति ही होती है। वे जो भी बात करते है उसके पीछे उनका ठोस ज्ञान और दीर्घ अनुभव रहता है। वास्तव मे ही वे अपने क्षेत्र के अत्यन्त तेजस्वी व्यक्तित्व हैं।

दूसरे दिन प्रात १० बजे के लगभग सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन के चारो तरफ भूर्भुआ बाबा के शिष्य मुस्तैदी से चौकस थे, और उनको सख्त हिदायत थी कि केवल वे ही व्यक्ति इस सम्मेलन मे प्रवेश करें जिनके पास अनुमति पत्र हो, जिस व्यक्तित्व के बारे मे सन्देह हो उसे वही पर रोक लिया जाय, और तब तक अन्दर जाने की अनुमति न दी जाय, जब तक कि बाबा स्वय जाच पडताल न कर लें। इस सबध मे सामने वाला व्यक्ति चाहे कितने ही उच्च कोटि का हो, चाहे कितना ही गरिमा-

पूर्ण हो, प्रयत्न यही किया गया था कि सभी के पास परिचय पत्र हो जो इसमे भाग लेने वाले थे। कई तान्त्रिक तो प्रात ही आये थे, फिर भी व्यवस्था मे किसी प्रकार की न्यूनता नही थी, और सभी को परिचय पत्र जाच पडताल करके दे दिए गए थे।

सम्मेलन मे लगभग ४०० तान्त्रिक और मान्त्रिक इकट्ठे थे और वास्तव मे ही वे सभी एक दूसरे से बढ-चढकर थे, कोई किसी से अपने आपको न्यून नही समझ रहा था। सभी विशिष्ट साधनाओ से सम्पन्न थे और अपने क्षेत्र मे दक्ष तथा लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तित्व से सम्पन्न थे।

मैंने धार्मिक ग्रन्थो मे ही शिवजी की वारात के वारे मे पढा था, परन्तु इस सम्मेलन को देख कर मैंने अनुमान लगा लिया कि शिवजी की वारात मे किस प्रकार के व्यक्ति सम्मिलित हुए होगे। सम्मेलन मे ४०० से कुछ ज्यादा ही साधु, योगी, अघोरी, तान्त्रिक आदि थे और सभी की वेषभूषा अपने आप मे विचित्र थी।

अधिकाश लगोटी लगाए हुए थे और पूरे शरीर पर भभूत मली हुई थी। कुछ की जटाए इतनी लम्बी थी कि चलने पर पीछे जमीन पर घिसटती थी, कुछ ने तो लोहे की लगोट ही लगा रखी थी। सम्मेलन मे सौ से ऊपर साधु ऐसे भी थे जो सर्वथा निर्वस्त्र थे। कुछ तान्त्रिको ने हड्डियो की माला पहन रखी थी। एक तान्त्रिक ने तो गले मे ११ नरमुण्डो की माला ही पहनी हुई थी। किसी-किसी तान्त्रिक के गले मे विचित्र मणियो की माला थी तो कुछ साधु इतने अधिक कपडे पहने हुए थे कि उनका सारा शरीर उन कपडो मे छिप गया था। एक साधु ने कमर पर नरमुण्डो की कर-धनी वाध रखी थी।

इसमे कुछ भैरविया भी थी, सभवत उनकी सख्या १५ से २० के वीच मे थी। इसमे कुछ तो पूर्णत वृद्ध दिखाई दे रही थी पर एक दो भैरविया ऐसी भी थी जो अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी थी और उनकी आयु २० से २५ वर्ष के वीच होगी, मुझे आश्चर्य था कि इस छोटी आयु मे उन्होंने किस प्रकार से इतनी कठिन क्रियाओ को सम्पन्न कर लिया होगा, परन्तु तान्त्रिको की गति विचित्र है, हो सकता है उन्होंने कुछ क्रियाओ के माध्यम से अपनी आयु को वाध रखा हो और अपने यौवन को अक्षुण्ण वनाए रखा हो।

कुछ हठ योगी भी थे। एक हठ योगी का पाव इतना अधिक फूला हुआ था कि उसका घेरा छ फुट से ज्यादा ही होगा। कुछ हठ योगी विशालकाय थे, एक दो हठ योगी के हाथ लकडी की तरह ठूठ हो गए थे। इस सम्मेलन मे काफी अघोरी भी थे जो कि पूर्णत निर्वस्त्र थे और देखने मे भीमकाय राक्षस की तरह अनुभव हो रहे थे, उनके शरीर पर जरूरत से ज्यादा मैल जमा हुआ था और जव वे पास से गुजरते तो दुर्गन्ध का एक भभका सा अनुभव होता, परन्तु वे इन सवसे वेखवर थे और अपनी ही धुन मे मस्त थे।

इनमे कुछ विशिष्ट वाम मार्गी तान्त्रिक भी थे जिनको यदि सामान्य जन देखले, तो वेहोश हो जाय। उनका शरीर अपने आप मे भयकर था, लाल आखें, डरावना

चेहरा, और भीमकाय शरीर, ऐसा लग रहा था जैसे वे राक्षस हो। उनको देखकर मन मे भय का सा सचार होता था और रोगटे खडे हो जाते थे।

स्वामी अभयानन्द जरूरत से ज्यादा व्यस्त थे और प्रत्येक को यथोचित स्वागत दे रहे थे, भूर्भुआ बाबा बराबर इस बात पर नजर रखे हुए थे कि किसी भी साधक के मन को ठेस न पहुचे और वे उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लें।

इसमे आशा से अधिक तान्त्रिको और मान्त्रिको ने भाग लिया और जिनके बारे मे हम आश्चर्य के साथ सुनते रहते थे। उनको प्रत्यक्ष देखकर एक भयमिश्रित आश्चर्य हो रहा था। वास्तव मे यह भूर्भुआ बाबा का ही कमाल था कि वे इस प्रकार के विशिष्ट साधको को एक स्थान पर एकत्र कर पाए।

सम्मेलन मे मा कृपाली भैरवी, आनन्दा भैरवी, पिशाच सिद्धियो की स्वामिनी देवुल भैरवी आदि के भाग लेने से सम्मेलन मे विशेष प्रसन्नता अनुभव हो रही थी। इसके साथ-ही-साथ पगला बाबा, स्वामी देवहुर बाबा, कृपालुस्वामी, बाबा भैरवनाथ, खर्परानन्द भारती, स्वामी गिरजानन्द, अघोरी, विरघा स्वामी, त्रिजटा अघोरी, आदि ऐसी बिभूतिया थी, जो कि अपने आप मे अन्यतम थी, जिनका नाम विश्वविख्यात है और तान्त्रिक लोगो के लिए ये व्यक्तित्व स्मरणीय है। इन्होने इस क्षेत्र मे अद्भुत सिद्धिया प्राप्त की हैं, हमारी पीढी का यह सौभाग्य है कि हम लोगो के बीच इस प्रकार के विशिष्ट व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपने ज्ञान से इस पीढी को ऊची उठाने मे सहायता दी है, विशेष रूप से मैं रोमाचित था कि अपने जीवन मे मैं इन सारी विभूतियो को एक स्थान पर देख सका अन्यथा यदि मेरा पूरा जीवन भी बीत जाता तब भी मैं इन सारी विभूतियो के दर्शन नही कर सकता था। मैं ही नही मेरे जैसे अधिकाश तान्त्रिक रोमाचित थे, आह्लादित थे, आश्चर्यचकित थे।

सम्मेलन के प्रारम्भ मे भूर्भुआ बाबा ने विशिष्ट वाणी मे इस सम्मेलन के बारे मे बताया और अत्यधिक प्रसन्नता अनुभव की कि उनके कहने से सभी साधक एक स्थान पर एकत्र हुए। उन्होंने बताया कि पिछले पाच हजार वर्षों मे यह पहला अवसर है जबकि इस प्रकार का सम्मेलन हो सका है। कुछ साधक सिद्धाश्रम से भी आये हैं यह मेरे लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण उपलब्धि है।

उन्होंने आगन्तुक तान्त्रिको, मान्त्रिको, योगियो, साधको, हठयोगियो और अघोरियो से विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि वे शान्त चित्त से इस सम्मेलन को सफल बनाने मे योगदान दें। सभी साधक अपने आप मे अन्यतम हैं इसलिए परस्पर वादविवाद हो जाना स्वाभाविक है, पर इस प्रकार वादविवाद से व्यर्थ मे समस्याए पैदा होगी, एक दूसरे पर तान्त्रिक-प्रहार होगे और व्यर्थ मे ही शक्ति का अपव्यय होगा, अत जहा तक हो सके वे अपने क्रोध को सीमित रखें और एक दूसरे को ज्ञान देने मे उदारता बरतें।

उन्होंने देश की परिस्थिति पर भी सक्षिप्त प्रकाश डाला, साथ ही उन्होंने दुख

प्रकट किया कि पिछले ३०० वर्षों का समय तन्त्र के क्षेत्र मे अन्धकार-युग ही कहा जाएगा, जबकि इस विद्या पर भीषण प्रहार हुए हैं और इस साधना को केवल मात्र मारक-विद्या मान ली गई है। तन्त्र का नाम लेते ही जन साधारण भयभीत हो जाता है, उनके मानस मे यह धारणा बन गई है कि तान्त्रिक केवल किसी को मार सकता है या दुख पहुचा सकता है। उनकी धारणा के अनुसार मोहन वशीकरण, उच्चाटन आदि क्रियाए ही तन्त्र हैं, जबकि तन्त्र इससे कही ऊचे स्थान पर स्थित है और इससे पूरे विश्व का कल्याण हो सकता है।

यह विद्या हमारे पूर्वजो की थाती है तथा इस क्षेत्र मे पूरा विश्व भारत की तरफ ताक रहा है। उनको इस क्षेत्र मे जब भी ज्ञान मिलेगा तो वह भारत की तरफ से ही मिल सकता है, पर धीरे-धीरे नकली तान्त्रिक समाज मे घुस गए हैं जिन्होंने चमत्कार दिखाने को ही तन्त्र मान लिया है और इस प्रकार वे जहा तन्त्र का अहित कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर जन साधारण को गुमराह भी कर रहे हैं।

ऐसी स्थिति मे तान्त्रिक यदि अन्तर्मुखी बन कर रह जाता है तो यह बहुत बडी भूल है। वे देश के निर्माण मे रचनात्मक योगदान दे सकते हैं, इस क्षेत्र की जो विशिष्ट क्रियाए हैं ये धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं, जल-गमन, वायु गमन, परकाय प्रवेश, आदि क्रियाए कुछ साधको के पास ही रह गई हैं और ये साधक जनमानस से इतने दूर हो गए हैं कि उनसे ये विद्याए प्राप्त करना संभव ही नही रहा है, उनकी काया के साथ-ही-साथ इस प्रकार की विद्याए भी समाप्त हो जाएँगी और हमारा देश एक बहुत बडी निधि से वचित हो जाएगा।

देश की सेवा केवल राजनीति के माध्यम से ही सभव नही है, अपितु कई ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनके माध्यम से देश सेवा और जन सेवा हो सकती है, इस प्रकार के क्षेत्रो मे तन्त्र और मन्त्र सर्वोपरि हैं, जब तक इन विद्याओ के प्रति जो भ्रामक धारणाए जनमानस मे फैली हुई हैं वे दूर नही होगी तब तक इन साधनाओ के प्रति आस्था जनमानस मे नही हो सकेगी।

उन्होंने तान्त्रिको, मान्त्रिको और साधको को आह्वान किया कि वे जनसाधारण से अपने आपको सम्पर्कित करें और अपने ज्ञान को इस प्रकार से समाज मे वितरित करें जिससे कि सामान्य साधक भी लाभ उठा सकें।

भूर्भुआ बाबा के बारे मे सभी लोग श्रद्धानत हैं क्योकि उनका व्यक्तित्व अपने आप मे विशिष्ट रहा है और उन्होंने अपने जीवन मे इस क्षेत्र मे अद्वितीय कार्य किया है। बाबा के भाषण को सभी लोग शान्त चित्त से सुन रहे थे। एक-दो अघोरियो ने इसका प्रतिवाद भी किया और बीच मे कुछ कहने के लिए व्यग्र भी दिखाई दिए, पर पास के साधको द्वारा उनको जबर्दस्ती बिठा दिया गया जिससे वे और ज्यादा बिफर गये और भाषण में क्रोध प्रदर्शन हेतु खड़े रहे।

भाषण की समाप्ति के साथ बाबा ने कहा कि सम्मेलन के लिए सभापति चुना जाय और ऐसे व्यक्ति को सभापति बनाया जाय जो कि किसी एक ही क्षेत्र मे

निष्णात न हो अपितु उसकी गति सभी प्रकार की विद्याओं में समान रूप से हो। तांत्रिक और मांत्रिक समाज में वह वृद्ध नहीं कहलाता जो कि आयु से वृद्ध होता है अपितु वह वृद्ध कहलाता है जो कि ज्ञान वृद्ध होता है।

एक साधक ने भूर्भुआ बाबा से ही निवेदन किया कि आप अध्यक्ष पद को सम्भाल लें पर अब तक जो दो अघोरी सम्मेलन में घटे थे उन्होंने इसका डटकर विरोध किया। उन्होंने कहा कि भूर्भुआ केवल तांत्रिक हैं मांत्रिक नहीं हैं, अत मांत्रिकों की जिज्ञासाओ का समाधान वह नही कर सकेंगे।

भूर्भुआ बाबा ने स्वय इस बात का अनुमोदन किया और वे एक तरफ बैठ गए। स्वामी कृपाचार्य ने मा कृपालु भैरवी का नाम अध्यक्ष पद के लिए रखा पर त्रिजटा अघोरी ने इसका विरोध किया, क्योंकि वह केवल भैरवी है और अन्य कसौटियों पर खरी नही उतर सकती, उन्होंने चैलेंज भी दिया कि यदि भैरवी मेरी साधना का सामना कर लें तो मैं उन्हे अध्यक्ष मान सकता हू, पर मा भैरवी ने इस चैलेंज को स्वीकार नही किया।

कुछ साधको ने पगला बाबा से निवेदन किया, पर उन्होंने स्वय इस तथ्य को स्वीकार किया कि मैं तांत्रिक अवश्य हू पर वाममार्गी साधना का अभ्यास मैंने नहीं किया है अत. मैं अध्यक्ष पद के लिए उपयुक्त नही हो सकता। इसके बाद कुछ अन्य नामो पर भी चर्चा हुई, पर अन्य लोगो ने उनका भी विरोध किया और सभा में एक घटे भर की इस बहस मे कोई निर्णय नही हो सका कि कौन व्यक्ति इस सभा का सचालन करे।

कुछ अघोरियो ने हठ योगी स्वामी प्रेत बाबा का नाम सुझाया तो एक तांत्रिक ने खडे होकर प्रेत बाबा को चुनौती दे दी कि यदि वह मेरी कृत्या का सामना कर लें तो मैं उनको सभापति स्वीकार कर सकता हू, साथ-ही-साथ उन्होंने यह भी बता दिया कि मैंने सहारिणी कृत्या सिद्ध कर रखी है।

कृत्या अपने आप मे पूर्णत मारक प्रयोग है और कहते हैं कि जब शकर ने दक्ष का यज्ञ विध्वस किया था तो उन्होंने कृत्या का ही सहारा लिया था। ऊचे-से-ऊचा तांत्रिक भी कृत्या के प्रयोग से घबराता है और उसका सामना नही करता, क्योंकि कृत्या प्रयोग के बाद सामने वाला साधक एक क्षण भी जीवित नही रह सकता। कृत्या स्वय उस साधक को समाप्त कर देती है, दक्ष अपने आप मे विशिष्ट ऋषि एव अन्यतम तांत्रिक थे, परन्तु वे भी कृत्या का सामना नहीं कर पाये थे, यद्यपि उन्होंने यज्ञ को बचाने मे अपनी सारी सिद्धियो का प्रयोग कर लिया था पर वे सिद्धिया कृत्या के सामने निरुपाय हो गई थी।

मैंने सुन रखा था कि ससार मे कुछ तांत्रिक ही ऐसे जीवित हैं जो कृत्या सिद्ध करना जानते हैं या सिद्ध करके उसका प्रयोग कर सकते हैं। जब उन तांत्रिक ने कृत्या का नाम लिया तो मैं चौकन्ना हो गया। वास्तव मे ही उस समय उनका चेहरा लाल भभूका हो रहा था और वे किसी भी समय प्रयोग करने मे आमादा थे,

उनके चेहरे पर कठोरता और दृढता स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

यदि कृत्या का प्रयोग होता तो सामने वाला व्यक्ति ही नही आसपास के लोग भी हताहत होते, फिर भले ही वे कितने ही बडे तान्त्रिक या साधक हो। भूर्भुआ बाबा ने इस खतरे को एक क्षण मे भाप लिया और उन्होंने उस साधक से शान्त रहने की प्रार्थना की और कृत्या का प्रयोग न करने की याचना की।

कृत्या प्रयोग मे भी सहारिणी कृत्या सर्वाधिक उग्र और विनाशकारी होती है। इसके बारे मे काफी कुछ पढ रखा था, परन्तु ऐसा व्यक्तित्व नही मिला था जो कि इस साधना को जानता हो। आज जब उन्हे देखा तो मन मे सुखद आश्चर्य भी हुआ कि अभी तक विश्व मे कृत्या प्रयोग करने वाले साधक जीवित हैं।

कृत्या का समाधान कृत्या से ही सम्भव है। साधक यदि सहारिणी कृत्या का प्रयोग करे तो सामने वाले का बचाव तभी सम्भव है जबकि वह सहारिणी कृत्या का प्रयोग जानता हो और इस प्रयोग को खेचरी कृत्या के माध्यम से नष्ट कर सकता हो। जैसा कि मैंने सुन रखा था इस प्रकार के साधक बहुत कम रहे हैं।

पगला बाबा ने क्षमा याचना की और उन्होंने अध्यक्ष प्रद स्वीकार करने मे असमर्थता प्रकट की, साथ ही उन्होंने निवेदन भी किया कि कृत्या का प्रयोग इस सम्मेलन मे न करें, अन्यथा काफी विध्वस और सहार हो जाएगा। पगला बाबा ने कृत्या प्रयोग के बारे मे अनभिज्ञता भी स्वीकार की।

बाद मे मुझे मालूम हुआ कि पगला बाबा को चैलेंज देने वाले धूर्जटा अघोरी थे। धूर्जटा अघोरी के बारे मे बहुत कुछ सुन रखा था। यह भी सुन रखा था कि वे नई सृष्टि रचना विधि भी जानते हैं। पुराणो मे पढा था कि विश्वामित्र ने ब्रह्मा के कार्य से असन्तुष्ट होकर नई सृष्टि-रचना आरम्भ कर दी थी, इससे पूरे देव समाज मे खलबली मच गई थी और जब देवताओ और ऋषियो ने विश्वामित्र से प्रार्थना की, तभी उन्होंने नवीन सृष्टि रचना कार्य बन्द किया था।

मैंने धूर्जटा अघोरी के बारे मे बहुत पहले सुन रखा था। तब मन मे यह साध थी कि शायद कभी इस विराटकाय व्यक्तित्व के दर्शन होंगे, पर आज जब मैंने उन को देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। यद्यपि कृत्या के प्रयोग को जानने वाले उस सम्मेलन मे और भी साधक थे जिनमे त्रिजटा अघोरी, देवहुर बाबा, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, पर वे शान्त रूप मे बैठे रहे।

कुछ-कुछ ऐसा अनुभव होने लगा था कि यह सम्मेलन शायद ही पार पड़े, जबकि इसके श्रीगणेश मे ही बाधाए आ रही हैं। यह तो मेढको को एक तराजू पर रखकर तोलना था। वास्तव मे ही इन साधको को और उनके अह को सन्तुष्ट करना अत्यन्त कठिन था। क्योकि सभी साधक अपने आप मे विशिष्ट व्यक्तित्व साधनाओ से सपन्न थे और प्रत्येक का अह अपने आप मे प्रबल था। कोई भी किसी से दबने वाला नही था, कोई भी किसी को अपने से उच्च मानने के लिए तैयार नही था।

इस हो-हल्ले मे दो-तीन नाम और सुझाये गए, परन्तु कुछ लोगो ने उनका

प्रबल विरोध किया और चैलेंज भी दिया, फलस्वरूप उनके नामो पर पूरी तरह से विचार नही हो सका।

एक राय यह भी बनी कि इस सम्मेलन मे कोई भी सभापति न बने और सभी अपने आपको सभापति ही मानकर कार्य आगे बढावें। परन्तु कुछ साधको ने इसका प्रबल प्रतिरोध किया। उनका आग्रह था कि बिना सभापति के सचालन सही रूप मे नही हो सकेगा और सभी अपने तरीके से बोलेंगे जिससे एक बात दूसरा नही सुन सकेगा और इस प्रकार उन पर सही प्रकार से नियत्रण नही हो सकेगा।

व्यवस्था और मर्यादा बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि सभापति का

डॉ० श्रीमाली तांत्रिक सम्मेलन के समय

चुनाव हो। उनका तर्क यह भी था कि यदि हम सभापति के नाम पर एकमत नही हो मकते तो अन्य विषयो पर एकमत कैसे हो सकेंगे ?

इस सारे वाद-विवाद मे दोपहर का एक बज गया तव मध्याह्न-साधना का समय अनुभव कर भूर्भुआ वावा ने सुझाव रखा कि कुछ साधक नियमित रूप से मध्याह्न-साधना करते है, अत यह वैठक इस समय स्थगित की जाती है और चार वजे जव हम सब एकत्र हो तब इस विषय पर पुन विचार कर लें और सभापति का चयन हो जाय।

उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि यदि सभापति के नाम पर सभी एकमत न हो सकें तो प्रतियोगिता हो जाय और जो अपने आपको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करे वह सामने आवे और अन्य साधको के चैलेंज को स्वीकार कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करे जिससे कि उसे सभापति पद दिया जा सके।

भूर्भुआ वावा के इस सुझाव के साथ ही प्रात कालीन वैठक हो-हल्ले के साथ स्थगित हो गई। मैं आश्चर्यचकित भी था और दु खी भी था। आश्चर्यचकित इसलिए था कि इस सम्मेलन मे विभिन्न साधनाओ से सम्पन्न साधक हैं, किसी एक ही विषय का सम्मेलन हो तो श्रेष्ठता ज्ञात की जा सकती है पर जव विभिन्न साधनाओ से सम्पन्न साधक हो तो सर्वोपरि व्यक्ति का चयन कठिन हो जाता है। क्योकि जो तान्त्रिक क्षेत्र मे सर्वोपरि हो वह मत्र के क्षेत्र मे भी श्रेष्ठ हो यह आवश्यक नही है, य्रा यदि कोई व्यक्ति तत्र और मत्र के क्षेत्र मे सर्वोपरि हो तो वह गोरक्ष साधना या अघोर साधना मे भी निष्णात हो यह सम्भव नही है। ये सभी साधनाए एक-दूसरे से सर्वथा विपरीत हैं और अपने आप मे कष्टकर है, अत इन सभी क्षेत्रो मे एक ही व्यक्ति निष्णात हो ऐसा कम देखने मे आया है। यद्यपि इस पृथ्वी पर असम्भव नाम की कोई वस्तु नहीं है, फिर भी प्रात कालीन बैठक मे जिस प्रकार से चैलेंज दिये जा रहे थे और चैलेंज आते ही सामने वाला व्यक्ति जिस प्रकार से निस्तेज हो जाता था उसको देखते हुए सभी क्षेत्रो मे निष्णात या विशिष्ट व्यक्तित्व सामने आ जाय ऐसा असम्भव नही तो कठिन अवश्य लग रहा था।

गोष्ठी के वाद भी सभी साधक उग्र थे और कुछ तान्त्रिक और वाममार्गी साधक तो अत्यन्त ही क्रोध की मुद्रा मे थे कि उनके रहते हुए अन्य साधना मे निष्णात व्यक्ति सभापति वन जाय ऐसा कैसे सम्भव है ? उन्होने यह भी मत स्पष्ट कर दिया कि यदि हम पर किसी व्यक्ति को सभापति के रूप मे थोपा गया तो हम किसी भी प्रकार का प्रयोग उसके विरुद्ध करने मे हिचकिचाएगे नही, या तो वह उस प्रयोग से अपने आपको वचाए या समाप्त हो, दो मे से एक ही रास्ता हो सकता है, इस प्रश्न पर क़ाफी गरमागरमी थी और लोग काफी क्रोध की मुद्रा मे थे।

इस मध्याह्न-विश्राम मे मेरी पत्रकारिता प्रवृत्ति जाग गई थी और मैंने कुछ विशिष्ट साधको से जिज्ञासा भी की थी कि क्या कोई ऐसा व्यक्तित्व सामने आ जाएगा जो कि निर्विवाद रूप से श्रेष्ठ हो तो मैंने पाया कि कोई भी अपने आप में स्पष्ट नही

था, परन्तु सभी इस भावना मे अवश्य थे कि जो भी समापति वनेगा उसे कठिन परीक्षा मे से अवश्य ही गुजरना पडेगा। यह भी स्पष्ट था कि सभापति वही हो सकेगा जो सभी विषयो मे श्रेष्ठ होगा और जिसकी सभी क्षेत्रो मे गति होगी, इस वाद-विवाद मे किसी की मृत्यु हो जाए ऐसा असभव नही था।

मैंने भूर्भुआ वावा से भी यह जिज्ञासा रखी तो वे शान्तचित्त थे। उन्होंने कहा कि इस प्रकार के सम्मेलन मे ऐसा सव कुछ होना स्वाभाविक है। सभी अपने-अपने क्षेत्रो मे अद्वितीय हैं और वे किसी अन्य को अपने ऊपर सहज ही हावी नही होने देंगे, फिर भी मुझे विश्वास है कि सायकालीन वैठक मे अवश्य ही सभापति की समस्या का समाधान हो सकेगा।

मैं इस अवसर को हाथ से नही जाने देना चाहता था, अत अधिक-से-अधिक हठयोगियो और तान्त्रिको से मिलना चाहता था और उनसे जानना चाहता था। मैंने यह अनुभव किया कि वास्तव मे सभी व्यक्तित्व अपने-अपने क्षेत्र मे अद्वितीय थे और उनके पास साधनाओ का, क्रियाओ का और विशिष्ट ज्ञान का भण्डार था। उन्होंने अपना पूरा जीवन इस कार्य मे लगा दिया था। जो भी व्यक्तित्व मेरे सामने आता वह अपने आपमे अप्रतिम अनुभव होता, कोई भी किसी से किसी प्रकार से न्यून नही था।

चार वजे सायकालीन वैठक प्रारम्भ हुई। सभी के चेहरे तनावपूर्ण थे, सभी के चेहरे पर उत्सुकता थी और सभी अपनी-अपनी कलाओ को, विद्याओ को, साधनाओ को व्यक्त करने के लिए उतावले थे।

सम्मेलन के प्रारम्भ मे भूर्भुआ वावा ने दु ख प्रकट किया कि हम प्रात-कालीन वैठक मे किसी एक नाम पर सहमत नही हो सके यह स्वाभाविक था, क्योकि यह सम्मेलन केवल तान्त्रिक सम्मेलन ही नही हैं, अपितु इसमे अन्य विद्याओ के भी श्रेष्ठतम जानकार हैं, अत इस प्रकार के मतभेद स्वाभाविक हैं, फिर भी मैं आप सब लोगो से निवेदन करता हू कि वे किसी एक व्यक्ति के नाम पर सहमत हो और ऐसी प्रक्रिया अपनाई जाय जिससे कि सभापति का चयन सही रूप मे हो सके।

उन्होंने एक प्रक्रिया का सुझाव भी दिया कि सम्मेलन मे कोई विशिष्ट व्यक्ति कोई ऐसा नाम सुझावे जो सभी क्षेत्रो मे निष्णात हो। यदि उनके ध्यान मे ऐसा व्यक्तित्व हो तो उनका नाम सभा के सामने रखे और सभा उस पर विचार करे। इसके लिए सभी स्वतन्त्र हैं और वे अपने तरीके से चुनौती दे सकते है, परन्तु यदि सामने वाला व्यक्ति चुनौती स्वीकार न करे तो व्यर्थ मे उस पर प्रयोग न करें, अन्यथा कुछ भी अघटित घटना घटित हो सकती है।

भूर्भुआ वावा के वैठते ही कई लोग एक साथ उठ खडे हुए और कई नामो की ध्वनि कानो मे आई, परन्तु हो-हल्ला कुछ इतना अधिक हो रहा था कि कुछ भी सुनाई नही दे रहा था। इसी बीच त्रिजटा अघोरी अपने स्थान से उठ खडे हुए और उन्होंने जोरो से सभी को शान्त रहने की हुकार दी।

उनकी आवाज अपने आप मे भीषण थी और कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि

जैसे बम फट गया हो। उस ध्वनि मे वाकी पारी ध्वनिया दब गई और सभा मे एक प्रकार से सन्नाटा-सा छा गया।

त्रिजटा अघोरी का व्यक्तित्व अपने आप मे विशालकाय और अद्भुत था। लम्बा-चौडा डीलडौल, भयकर और लाल सुर्ख आखें और सारे शरीर पर काले वाल इस प्रकार से आच्छादित थे कि उसको देखकर ही मन मे भय का सचार होता था।

यो भी त्रिजटा अघोरी के वारे मे काफी कुछ सुन रखा था कि तान्त्रिक क्षेत्र मे वे सर्वोपरि है। उनके पास कुछ ऐसी विशिष्ट सिद्धिया हैं जो कि दूसरे तान्त्रिको के लिए दुर्लभ हैं, 'मृत सजीवनी तत्र' के वे एकमात्र साधक हैं और इसीलिए उनका नाम तत्र के क्षेत्र मे आदर के साथ लिया जाता है।

उनका व्यक्तित्व अपने आप मे विशाल और भयानक था। ऐसा लग रहा था जैसे कोई भीमकाय व्यक्तित्व उठ खडा हुआ हो। वडा सिर, उद्दीप्त उन्नत ललाट, वडी-वडी विशाल रक्तिम आखें, सिर पर लम्बे वाल और उन वालो की तीन श्रेणिया चोटी की तरह गुथी हुई थी, सम्भवत इसीलिए उनका नाम त्रिजटा पड गया हो। ललाट पर सिन्दूर का वडा-सा गोल तिलक और शरीर पर वे व्याघ्रचर्म लपेटे हुए थे।

त्रिजटा को देखने का यह पहला ही अवसर था, परन्तु कई तान्त्रिको के द्वारा इनके वारे मे सुन रखा था कि ये पूरे वकरे को एक ही झटके मे तोडकर उसका सारा खून पी लेते हैं, यह भी सुना था कि विशालकाय भैंसे को ये एक मुष्टिका प्रहा मे ही समाप्त कर देते हैं, यह भी सुना था कि ये अत्यन्त क्रोधी है और क्रोध मे कुः भी कर गुजरते है, एकान्त प्रिय हैं और किसी दुर्गम पहाडी पर सर्वथा एकान्तवास करते हैं। यह भी सुना था कि भैरव के ये श्रेष्ठ साधक हैं और तत्र के क्षेत्र मे इनका मुकावला कोई अन्य नही कर सकता।

इसलिये जव उस सभा मे खडे होकर त्रिजटा ने हुकार भरी तो वह हुकार कुछ ऐसी थी जैसे शेर ने तृप्त हुकार ली हो। उनकी आवाज से सारे लोग चुप हो गए और केवल उनकी ही आवाज सभा मे गूजती रही।

उन्होंने कहा कि इस प्रकार समय व्यर्थ मे जा रहा है और यदि समय का इसी प्रकार अपव्यय करना है तो फिर मैं पुन अपने स्थान पर जाता हू, क्योकि केवल वादविवाद से कुछ भी हल होना सभव नही है। भूर्भुआ वावा के इस कथन से मैं सहमत हू कि पृथ्वी मे असम्भव नाम का कोई शब्द नही है इसलिए सभापति का चयन एक मत से हो जाय तो ज्यादा उचित रहेगा, और यह भी वात सही है कि इस सम्मेलन मे सभी विद्याओ के साधक एकत्र है, अत उसी व्यक्ति का चयन किया जाए जो इन सभी विद्याओ मे निष्णात हो। जहा तक मैं समझता हू कि इस प्रकार के वादविवाद से समस्या का समाधान सहज ही सभव नही है, पर मेरे दिमाग मे एक नाम है और उसके पीछे ठोस कारण है, मैं सभापति पद के लिए श्रीमाली का नाम प्रस्तुत करता हू, परन्तु मेरा प्रस्ताव थोपा हुआ नही है, इसके पीछे ठोस कारण है, मैंने इस व्यक्तित्व को परखा है, इसने तत्र के क्षेत्र मे मृत सजीवनी विद्या मुझ से सीखी है। वदले मे मैंने भी उससे

कई साधनाए प्राप्त की हैं, जो सामान्य रूप से अगम्य हैं, मेरी राय मे इस सम्मेलन के सभापति के रूप मे उनका चयन सर्वसम्मत होगा, इसमे कोई सन्देह नही।

त्रिजटा की आवाज समाप्त होते ही चारो तरफ से इतना अधिक कोलाहल मचा कि कुछ भी सुनाई देना सभव नही रहा। मैं स्वय तत्र के क्षेत्र मे २० साल से काम कर रहा था और नगर, गाव आदि के अलावा हिमालय के सुदूर स्थानो पर भी भटका था, पर श्रीमाली का नाम सुना ही नही था। त्रिजटा के मुह से जब उनका नाम प्रस्तावित हुआ तो मैं स्वय आश्चर्यचकित रह गया कि यह कौनसा व्यक्तित्व है जिसकी चर्चा अभी तक मेरे कानो मे नही आई थी। यदि त्रिजटा ने किसी का नाम प्रस्तावित किया हे तो वह व्यक्तित्व जरूर अपने आप मे अन्यतम होगा।

मेरी तरह सभवत और भी कई साधक आश्चर्यचकित थे और वे श्रीमाली को देखने के लिये उत्सुक थे कि यह कैसा नाम है जिसके पीछे न तो कोई स्वामी है और न कोई बाबा आदि का विशेषण।

भूर्भुआ बाबा ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। उन्होंने कहा मैं व्यक्तिगत रूप से श्रीमाली जी से परिचित हू, यद्यपि मेरा उनका साथ ज्यादा नही रहा है, फिर भी कुभ पर्व के अवसर पर मैंने जो कुछ देखा हे उससे मेरी धारणा बलवती बनी है कि श्रीमाली जी इस पद के लिए सर्वथा योग्य हो सकते है।

भूर्भुआ बाबा के बैठते ही त्रिजटा अघोरी ने अपने पास बैठे हुए एक व्यक्ति को उसका हाथ पकडकर सभा मे खडा कर दिया। कई आखें उनकी तरफ केन्द्रित हो गई। मैं सहज ही विश्वास नही कर सका कि जो व्यक्ति खडा है वह इतना बडा साधक, तात्रिक या मात्रिक हो सकता है। मुझे किसी भी कोने से यह व्यक्तित्व असाधारण नही लगा। न तो उसकी विचित्र वेशभूषा थी, न विशालकाय डील-डौल, और न कुछ ऐसा ही लग रहा था जिससे कि मेरी आत्मा इस तथ्य को सभव मान ले कि यह व्यक्तित्व असाधारण है।

लम्बा और ऊचा कद, उन्नत ललाट, छोटी पर पैनी आंखें, और चेहरे पर पूर्ण आत्मविश्वास की झलक। शरीर पर धोती और कुर्ता तथा करीने से बाल सवारे हुए यह व्यक्तित्व जो त्रिजटा के पास खडा था वह तान्त्रिक की अपेक्षा गृहस्थ ज्यादा लग था। पहली बार मैने जब उन्हे देखा तो मैं आश्चर्यचकित था कि इस सम्मेलन मे इस गृहस्थ को कैसे प्रवेश की स्वीकृति दे दी है, परन्तु जब इस व्यक्तित्व को भूर्भुआ बाबा के द्वारा अनुमोदित सुना तो कुछ विश्वास करना पडा कि यह व्यक्तित्व अपने आप मे असाधारण हो सकता है।

परन्तु इस बीच तीन-चार अघोरी एक साथ उठ खडे हुए और उन्होंने प्रबल प्रतिवाद किया। उनमे से एक अघोरी अत्यन्त ही विशालकाय और डरावनी मुख मुद्रा से युक्त था और उसके हाथ मे खप्पर था जिसमे कुछ बोटिया भरी हुई थी। वह बीच-बीच मे उनको चबाता भी जाता था। बोलते समय उसके मुह से थूक उछलता था और आखें इतनी डरावनी थी कि सहज ही उन आखो से आखें मिलाने की हिम्मत नही

हो रही थी। वाद मे मुझे ज्ञात हुआ कि उसका नाम भैरूआ अघोरी था।

भैरूआ अघोरी ने जोरो से एक वात का प्रतिवाद किया और कहा कि मैंने श्रीमाली का नाम आज तक नही सुना। मुझे यह व्यक्ति कुछ भी अच्छा नही लग रहा है। सबसे पहले अघोर पन्थ की तरफ से मैं चैलेन्ज दे रहा हू और यदि यह मेरा चैलेन्ज स्वीकार कर आघात सहन कर लेगा तभी मैं इसको अपना सभापति स्वीकार करुगा।

अभी भैरूआ अघोरी अपनी वात समाप्त कर ही नही पाया था कि सभा के पीछे की पक्ति से एक साधु उठ खडा हुआ जिसके पूरे शरीर पर भभूत मली हुई थी और सिर की जटाए इतनी लम्वी थी कि चलने पर जमीन पर घिसटती थी, आखें भयकर और चेहरे पर क्रूरता स्पष्ट रूप से झलक रही थी, उसने छूटते ही गालियो की बौछार शुरू कर दी और कहा कि मेरे जीते जी अन्य कोई सभापति वनने का अधिकारी नही हो सकता, मैंने कृत्या सिद्ध की है और मेरी कृत्या का जो समापन कर देगा वही सभापति वन सकेगा, अन्यथा मैं उसको खडे-खडे ही राख की ढेरी बना दूगा। श्रीमाली क्या है ? किस खेत की मूली है ? यह अपने आपको समझता क्या है और इसके साथ-ही-साथ उसके मुह से गालियो की बौछार इस भीषण वेग से हो रही थी कि सारी सभा मे सन्नाटा छा गया।

मेरी आखें एक बार उस वावा को देख रही थी और दूसरी वार श्रीमाली को परख रही थी, पर मैंने देखा कि उनके चेहरे पर किसी प्रकार की कोई शिकन या भय की रेखा तक नही थी, अपितु वहा पर एक आत्मविश्वास की झलक दिखाई दे रही थी। मैंने यह भी अनुभव किया कि इन दोनो व्यक्तियो के सामने किसी अन्य तान्त्रिक को वोलने की हिम्मत नही हो रही थी, क्योकि अभी-अभी जो वाबा उठ खडे हुए थे वे कपाली वावा थे और यह सुना था कि इन्होने चौंसठ कृत्याएँ सिद्ध कर रखी है और उनका प्रयोग किसी भी क्षण करने मे समर्थ हैं, अत दूसरे तान्त्रिक स्वभावत ही कपाली वावा से घवराते थे और यदि कुछ अन्य तान्त्रिको ने कृत्या प्रयोग सीखी भी होगी तो उन्होंने एक या दो कृत्या से ज्यादा सिद्ध नही की होगी।

त्रिजटा उठ खडा हुआ। क्रोध से उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। उसने कपाली वावा तथा भैरूआ अघोरी के चैलेन्ज को स्वीकार करते हुए कहा कि कपाली वावा का चैलेन्ज मै तो स्वीकार करने मे समर्थ नही हू परन्तु श्रीमाली अवश्य ही चैलेन्ज को स्वीकार करेंगे और समुचित उत्तर देंगे। मुझे उन पर और उनके ज्ञान पर पूरा भरोसा है। मुझे यह भी ध्यान है कि उन्होंने मत्र के क्षेत्र मे सर्वोच्चता प्राप्त की है और वे विश्वविख्यात योगीराज सच्चिदानन्द के प्रिय शिष्य हैं, साथ-ही-साथ निखिलेश्वरानन्द के रूप मे उन्होने सभी प्रकार की कृत्याएं सिद्ध की हैं और इस नाम से सभी तान्त्रिक समुदाय परिचित हैं, इन्होंने अपना नाम गृहस्थ मे जाने पर वदला है।

भूर्भुआ वावा ने भी इस समस्या का निराकरण जल्दी-से-जल्दी हल करने के लिए प्रार्थना की, और उन्होंने उपाय सुझाया कि मच पर श्रीमाली जी खडे हो जाते हैं और आप मे से तीन या पाच साधक उनको चैलेन्ज देकर उनकी परीक्षा ले सकते

हैं। ऐसा कहते-कहते भूर्भुआ वावा ने श्रीमाली जी का हाथ पकडकर उन्हे मच पर लाकर खडा कर दिया ।

इस वीच अघोरियो और तान्त्रिको के वीच काफी गहमा-गहमी चल रही थी, परन्तु जव उन्हे यह ज्ञात हुआ कि श्रीमाली जी का पूर्व नाम निखिलेश्वरानन्द ही था तो कई साधक शान्त हो गये, क्योकि इस नाम से वे पूर्णत परिचित थे और उनकी सिद्धियो के वारे मे भी उन्होने काफी कुछ सुन रखा था। मा कृपाली भैरवी यह कहते हुए सुनी गई कि इस सभा मे अव इनसे वढकर और कोई साधक नही है, इनका सामना जो भी करेगा वह व्यर्थ मे अपना अपमान ही कराएगा ।

अघोरियो ने तथा तान्त्रिको ने खडे होकर एक स्वर से कहा कि हमारी तरफ से कपाली वावा नियत हैं और सभापति का चयन अव इन दोनो मे से ही होना है। वे दोनो परस्पर अपनी सिद्धियो के माध्यम से निर्णय कर लें कि कौन सर्वश्रेष्ठ है ? क्योकि हमारी राय मे कपाली वावा के समान ऊचा और श्रेष्ठ तान्त्रिक और कोई नही है।

भैरुआ अघोरी ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की कि कपाली वावा और श्रीमाली जी मे परस्पर सघर्ष हो जाय और इन दोनो मे जो जीत जाएगा वही इस सभा का सभापति वन सकेगा ।

तव तक कपाली वावा उठ खडे हुए थे और वही खडे-खडे उन्होंने चैलेन्ज दिया कि यह वच्चा है, और मेरे पहले ही प्रहार से समाप्त हो जाएगा, इसलिये इसी को अधिकार देता हू कि यह पहले अपना प्रयोग मुझ पर करे, क्योकि मेरे प्रयोग करने के वाद तो श्रीमाली नाम का अस्तित्व ही ससार से मिट जाएगा। ऐसा कहते-कहते वे जोरो से हस पडे। ऐसा लग रहा था जैसे कई फटे हुए वास एक साथ खडखडा उठे हो।

पहली वार श्रीमाली जी के मुह से ध्वनि निकली। मैंने देखा कि इतने उग्र वातावरण मे भी उनका चेहरा शान्त और सरल था। चेहरे पर किसी प्रकार की उग्रता या क्रोध की मात्रा दिखाई नही दे रही थी। उन्होने वही खडे-खडे कपाली वावा की चुनौती स्वीकार करते हुए कहा कि कपाली वावा मेरे लिए आदरणीय हैं, परन्तु उनमे जो व्यर्थ का घमण्ड है उसे यदि वे त्याग दें तो ज्यादा उचित रहेगा, क्योकि उनको मात्र अपनी कृत्याओ पर भरोसा है, पर उनको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे भी चौसठ कृत्याओ से सम्पन्न हो सकते हैं।

श्रीमाली जी ने साथ-ही-साथ मुस्कराते हुए यह भी कहा कि कपाली वावा भ्रम मे न रहे। उनके प्रहार से या प्रयोग से मेरा कुछ भी नही विगडेगा। अस्तित्व मिटने की वात तो अलग है, कपाली वावा के अलावा भी मैं अन्य सभी अघोरियो और तान्त्रिको की चुनौती स्वीकार करने के लिए तैयार हू। मुझे सभापति पद की इच्छा नही है या इस इच्छा के वशीभूत होकर यह सव कुछ नही कह रहा हू पर व्यर्थ का जो 'अह' कपाली वावा तथा अन्य तान्त्रिको और अघोरियो मे है, उस अह की चुनौती स्वीकार करने के लिए मैं इस मच पर उपस्थित हू।

इस बीच कई अघोरी उठ खडे हुए और उन्होंने कहा कि हम मे कपाली बाबा

सर्वश्रेष्ठ हैं और उनको परास्त करना हमे परास्त करना है। तान्त्रिको ने भी इसी मत को दोहराया और उन्होंने भी यही कहा कि हमारी तरफ से प्रतिस्पर्धी के रूप मे कपाली वावा हैं।

श्रीमाली जी ने मच पर भूर्भुआ वावा को एक स्थान पर विठा दिया और मच के वीच मे खडे हो गए। इधर सभा के मध्य मे कपाली वावा के रूप मे विशाल और डरावना व्यक्तित्व खडा था। दोनो की आपस मे कोई तुलना ही नही थी। मच पर एक सीधा सरल सामान्य साधक दिखाई दे रहा था, जवकि सभा के मध्य मे कपाली वावा के रूप मे विराटकाय डरावना अह का मूर्तमत रूप।

मैं अभी तक यह निश्चय नही कर पा रहा था कि मच पर जो व्यक्ति खडा है क्या वह कपाली वावा का सामना कर सकेगा ? यह सुना था कि सहारिणी कृत्या का प्रयोग यदि हिमालय पर भी कर दिया जाय तो वह भी रुई की तरह उड जाता है, तो फिर यदि कपाली वावा ने इस प्रकार की कृत्या का प्रयोग इस व्यक्ति पर किया तो यह किस प्रकार से उसका सामना कर सकेगा। यह तो एक क्षण मे ही समाप्त हो जाएगा और वास्तव मे ही इसका अस्तित्व दिखाई नही देगा।

कई तान्त्रिक मन-ही-मन प्रसन्न थे कि आज त्रिजटा अघोरी को नीचा देखना पडेगा, क्योकि श्रीमाली का नाम उन्होंने ही प्रस्तावित किया था, अत श्रीमाली की पराजय परोक्ष रूप से त्रिजटा की ही पराजय थी, उसके साथ-ही-साथ त्रिजटा ने यह भी स्वीकार कर लिया था कि वह सहारिणी कृत्या का प्रयोग नही जानता है अत त्रिजटा की विद्या भी श्रीमाली के लिए सहायक नही हो सकेगी।

पूरी सभा का माहोल एक अजीव-सा हो गया था और सभी लोग आतकित थे कि आज कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। अधिकाश लोगो की राय यही थी कि त्रिजटा ने श्रीमाली को वलि का वकरा वना दिया है और कपाली वावा इसे पहले ही प्रयोग मे समाप्त कर देंगे, क्योकि अधिकाश साधक कपाली वावा, उनकी सिद्धिया और उनके क्रोध से परिचित थे। उनका सामना करने की हिम्मत किसी मे नही थी।

तभी श्रीमाली जी ने कपाली वावा को चैलेन्ज दिया कि आपको जो अह है कि आपके पहले ही प्रयोग से मैं समाप्त हो जाऊगा, यह आपका भ्रम है, आप वृद्ध हैं अत पहला प्रयोग आप ही मुझ पर करें और यह भी मैं आपको स्पष्ट रूप से कह दू कि आपके पास ऊचे-से-ऊचा जो सहारक शस्त्र हो उसका प्रयोग कर दें जिससे कि आपके मन मे मलाल न रहे।

इतना सुनना था कि कपाली वावा क्रोध से लाल अगारे की तरह दहक उठे, और गालियों की वौछार के वीच कहा कि तेरी यह हिम्मत कि मुझे ही चैलेन्ज दे, अगर ऐसी ही वात है तो फिर तू सभल।

श्रीमाली जी मच पर खडे थे। सारी सभा मे सन्नाटा-सा छाया हुआ था। उस समय यदि सभा मे सुई भी गिरती तो उसकी आवाज भी स्पष्ट सुनाई देती।

कपाली वावा ने अपना दाहिना हाथ हवा मे लहराया। कुछ सरसो के दाने

हवा मे से ही प्राप्त किये और मुट्ठी बदकर मत्र पढना शुरू किया। मैंने अपने पास बैठे एक अघोरी से पूछा कि कपाली बाबा कौन-सा प्रयोग कर रहे हैं तो उसने कापते हुए कहा कि कपाली बाबा 'सहारिणी कृत्या' का प्रयोग कर रहे हैं, और कुछ ही क्षणो के बाद यह कृत्या श्रीमाली को और उसके मच को निश्चय ही जला देगी। इसका सामना करना ऊचे-से-ऊचे तात्रिक और साधक के लिये भी सभव नही है।

तभी जोरो से हुकार की ध्वनि सुनाई दी और ऐसा लगा जैसे भयकर गर्जना हुई हो। वह गर्जना इतनी भीषण थी कि कानो के पर्दे फटने के लिये आतुर थे। मैंने दोनो कानो मे उगलिया डाल दी और देखा कि कपाली बाबा क्रोध से लाल हो रहे थे, उनके मुह से मत्र ध्वनि आ रही थी और उनका सारा शरीर लाल सुर्ख हो गया था, तभी उन्होने अपनी मुट्ठी मे बद सरसो के दाने श्रीमाली की तरफ फेंके और कहा ले, अपनी करनी का फल भुगत।

सैंकडो आखें एक बारगी ही मच पर एकत्र हो गईं। मैंने देखा कि श्रीमाली जी कुछ डगमगाये, वे जिस स्थान पर खडे थे उससे तीन-चार कदम लडखडाकर पीछे हटे, परन्तु दूसरे ही क्षण वे सहज हो गये और वापस चार कदम भरकर उसी स्थान पर आकर खडे हो गये जहा पहले खडे थे।

मैंने कपाली बाबा के चेहरे पर देखा तो उनका चेहरा आश्चर्य के साथ कुछ बुझ-सा गया था। उनको यह उम्मीद नही थी कि यह साधारण-सा व्यक्ति सहारिणी कृत्या का सामना कर लेगा। शायद श्रीमाली जी के पास इस कृत्या को नष्ट करने की विधि है और उसी की वजह से इसने कृत्या को समाप्त कर दिया है, उनकी आखो मे किंचित भय उतर आया था।

श्रीमाली जी शान्त बने रहे। उन्होंने फिर कपाली बाबा को चैलेन्ज दिया और कहा कि मैं आपकी उम्र को देखते हुए आपका सम्मान करता हू, परन्तु सिद्धि और साधना के क्षेत्र मे अभी आप काफी कमजोर हैं, यद्यपि आपने जिस भीषण वेग से कृत्या का प्रयोग किया था, वह अपने आप मे असाधारण था और सहज ही इसके प्रहार को झेलना सभव नही था, फिर भी मैं आपके सामने उपस्थित हू, अत आपको फिर अवसर देता हू कि आप अपने मन मे किसी प्रकार की इच्छा न रखें, और यदि इससे भी बडी कोई शक्ति आपके पास हो तो आप उसका भी प्रयोग कर दें।

मा कृपाली भैरवी बीच मे उठ खडी हुईं, उन्होंने कहा कि न्याय तो हो गया है अब दूसरी बार कपाली बाबा को अवसर देने की क्या आवश्यकता है। उन्होंने जो कुछ प्रयोग किया है वह मानवता से हटकर है। इस कृत्या का प्रयोग पाच हजार मील के वेग से एक हजार मन के पत्थर का जो आघात होता है उससे भी कई गुना ज्यादा गहरा आघात इस कृत्या के प्रयोग से सामने वाले पर होता है फिर भी श्रीमाली जी की सौजन्यता है कि वे एक अवसर और दे रहे हैं।

मैं इसमे इतना और जोड रही हू कि यदि कपाली बाबा हार जायेंगे तो उन्हे श्रीमाली जी का शिष्य होना पडेगा और यदि श्रीमाली जी हार गये तो उन्हे कपाली

वावा का शिष्य होना पडेगा। इसके वाद गुरु जो भी आज्ञा देगा वह उस शिष्य को मानने के लिये बाध्य होना पडेगा, क्योकि इस साधना-परम्परा का निर्णय इसी प्रकार से ही होता है।

अधिकाश तान्त्रिको ने मा कृपाली भैरवी के कथन का अनुमोदन किया और उन्होंने कहा कि जो हारेगा उसे शिष्य वनना ही होगा।

इससे कपाली बाबा कुछ विचलित होते हुए नजर आये, परन्तु फिर भी उनके पास सभवत कई सिद्धिया थी और उनके भरोसे वे कुछ निश्चिन्त भी लग रहे थे।

श्रीमाली जी ने कहा कि सभा ने आपको मेरे विरोधी के रूप मे उपस्थित किया है। न्याय तो यही है कि आपके प्रयोग के वाद मै अपने प्रयोग को अपनाऊ, परन्तु मैं एक बार फिर आपको अवसर देता हू जिससे कि आप भीषणतम शक्ति या साधना का प्रयोग मुझ पर कर सकें। इसके वाद आपको अवसर नही मिलेगा, फिर तो मैं केवल एक वार आप पर प्रयोग करूगा और उसी से हार जीत का निर्णय हो जायगा।

कपाली बावा ने अपने पास वैठे एक तान्त्रिक से कुछ कहा, परन्तु सुनाई नहीं दिया। कपाली वावा तन कर खडे हो गये और अपनी जाघ के पास से मास उधेड कर उसमे से छोटी-सी गोली निकाली और उसे दाहिने हाथ की हथेली पर रख कर कहा श्रीमाली ! यह तुम्हारे लिये अन्तिम अवसर है, तुमने मुझे क्रोध दिलाकर उचित नहीं किया है। इस वार तेरी मृत्यु निश्चित है।

श्रीमाली जी अविचलित भाव से मच पर खडे थे और उनके दोनो हाथो की मुट्ठिया बधी हुई थी। सभवत वे होठो मे ही कुछ मत्र वुदवुदा रहे थे।

कपाली वावा ने अपने दाहिने हाथ की हथेली मुह के सामने रखी। हथेली पर एक सफेद गोली रखी हुई थी और उस गोली को लक्ष्य कर कपाली वावा मत्र पढ रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने इस वार अपनी सारी शक्ति लगा दी हो। उनका सारा शरीर तन कर ठूठ की तरह हो गया था और रक्त का प्रवाह हथेली की तरफ तेजी से होने लगा था। थोडे ही समय बाद हथेली के नीचे से रक्त की बूदें टपकने लगी, फिर भी कपाली बाबा का मत्र जप चालू था और अचानक उन्होंने जोरो से मुट्ठी को कसी और वह गोली श्रीमाली जी की तरफ फेंक दी।

मैंने अपने पास बैठे तान्त्रिक से प्रश्न किया कि इस वार कपाली वावा ने कौनसा प्रयोग किया है तो भय से उसका चेहरा पीला पड गया। उसने कहा कि यह 'विध्वस' प्रयोग है और इसके पीछे वावन भैरव शक्ति प्रयोग कार्य करता है, इसके साथ-ही-साथ इस प्रयोग में चौसठ योगिनियो का भी प्रभाव कार्य करता है, यह प्रयोग सर्वाधिक सहारक और विध्वसक होता है।

मेरी दृष्टि स्वभावत ही श्रीमाली जी के चेहरे पर जम गई। ऐसा लगा कि जैसे वे लडखडा गये हो। अचानक उन्हे एक सेकण्ड के लिये मच पर वैठते हुए भी देखा, पर दूसरे ही क्षण वे उठकर खडे हो गये और उन्होंने अपनी आखें खोल दी।

पूरी सभा मे हर्ष की लहर दौड गई और त्रिजटा अघोरी ने दौड कर श्रीमाली

जी को अपने कधे पर उठा लिया। हर्ष मे उन्होंने किलकारी की और पुन मच पर उन्हे खडा कर अपने स्थान पर जा खडा हुआ।

सारी सभा हतप्रभ थी कि यह साधारण-सा दिखने वाला व्यक्तित्व क्या इतना असाधारण हो सकता है? निश्चय ही श्रीमाली जी उच्च कोटि के ज्ञाता हैं जो कपाली बाबा से सामना ले सकता है उसकी सिद्धियो की थाह सभव नही है।

इधर कपाली बाबा थक से गये थे। उनका चेहरा सफेद पड गया था और आखो मे क्रोध की जगह याचना झलकने लगी थी। उनके सहयोगी जो अघोरी थे वे अपने आप मे कमजोरी अनुभव करने लगे थे, और एक प्रकार से परास्त से प्रतीत हो रहे थे।

श्रीमाली जी ने कहा, कपाली बाबा क्या आपके मन मे कुछ और है, इस विध्वसक प्रयोग को झेलने से श्रीमाली जी के चेहरे पर क्रोध की मात्रा जरूरत से ज्यादा आ गई थी, आखो मे ललाई-सी दिखाई दे रही थी और पूरा शरीर अगारे की तरह लाल अनुभव हो रहा था।

श्रीमाली जी ने कहा कपाली बाबा! प्रत्येक साधना के कुछ नियम होते है, कोई भी साधक अपने नियमो से आगे नही जाता। भीषण-से-भीषण शत्रु भी इस प्रकार का योग सामने वाले पर नही करता, क्योकि इस प्रकार का प्रयोग तात्रिक मान्यताओ के विपरीत है, साथ-ही-साथ मानवता के भी विरुद्ध है, आपने मानवता को भी स्पर्श नही किया और जिस प्रकार का प्रयोग मुझ पर किया है, यदि ऐसा ही प्रयोग किसी पहाड पर भी करते तो उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जाता, यह ज्ञात ही नही रहता कि वहा किसी समय पहाड था भी।

कपाली बाबा! अब मैं तुमको छोडूगा भी नही, पर मानवता के साथ। तुमने दो प्रयोग मुझ पर किए हैं अब मैं एक प्रयोग तुम पर करता हू, यदि इस प्रयोग से तुम बच गए या इस प्रयोग को झेल लिया तो मैं अपने आपको परास्त मान लूगा, चाहता तो मैं यह था तुम्हे समाप्त कर दू परन्तु अभी तक मैंने मानवता छोडी नही है।

मैं सावधान कर रहा हू कि तीन मिनट के भीतर-भीतर प्रयोग करूगा और तुम्हे सभलना है तो सभल जाना—और कहते-कहते श्रीमाली जी की मुख मुद्रा कठोर हो गई, उनका चेहरा लाल सुर्ख हो गया, आखो से ज्वाला-सी निकलने लगी और उनका हाथ हवा मे लहराया। दूसरे ही क्षण नीचे आया और फिर तन कर सामने की तरफ मुट्ठी खुली, जैसी कि कोई वस्तु सामने की तरफ उछाली हो।

एक ही क्षण मे धडाम से कपाली बाबा नीचे गिर गए, और उनके मुह से खून निकलने लगा, आखो मे भय छा गया और उन्हें एक ही क्षण मे ऐसा लगने लगा था जैसे मृत्यु बहुत दूर नही रह गई हो।

कई तान्त्रिक एक साथ उठ खडे हुए और कपाली बाबा के चारो तरफ घेरा डाल दिया, उनकी आखें बुझने लगी, उनका चेहरा सफेद पड रहा था, उनके मुह से खून निकल रहा था और ऐसा लग रहा था कि यदि तीन-चार मिनट कोई उपाय नही किया

गया या खून निकलना बद नही हुआ तो कपाली वावा जीवित नही वच सकेंगे ।

तभी श्रीमाली जी की आवाज गूजी कि सभी वीच मे से हट जाय, अन्यथा उनको भी इसी प्रकार के प्रयोग का सामना करना पडेगा । यदि कपाली वावा क्षमा माग लेते हैं तो मैं उन्हे दया करके जीवन दान दे सकता हू ।

आवाज के साथ ही सभी तात्रिक और अघोरी अपने-अपने स्थान पर वैठ गए, कपाली वावा के मुह से अभी तक खून निकल रहा था और वह वह कर पास की जमीन को लाल कर रहा था, फिर भी उनमे चेतना वाकी थी, उनके दोनो हाथ परस्पर जुडे—यह इस वात की साक्षी थे कि वे अपने आपको परास्त अनुभव करते हैं ।

श्रीमाली जी और भूर्भुआ वावा मच से उनके निकट आये और श्रीमाली जी ने हवा मे से लहरा कर कोई वस्तु अपने हाथ मे ली और उस वारीक-सी वस्तु को कपाली वावा पर डाल दिया । दूसरे ही क्षण उनके मुह से खून निकलना वन्द हो गया ।

श्रीमाली जी ने वावा के हाथ को पकड कर उठाया और उन्हे उसी स्थान पर विठाया जहाँ पर वे वैठे हुए थे, दो क्षणो के वाद वे चेतन्य हुए और उन्होंने उठ कर अपना सिर श्रीमाली जी के चरणो मे रख दिया ।

मा कृपाली भैरवी ने कहा कि मेरी वात रखी जाए । इसका निर्णय हो ही चुका है, अत कृपाली वावा शिष्यत्व स्वीकार करें ।

भूर्भुआ वावा कपाली वावा को अपने साथ लेकर मच पर आए, पास मे ही श्री-माली जी खडे हुए थे । सारी सभा हतप्रभ और स्तव्ध थी । उनकी आखो मे आश्चर्य-मिश्रित भय विद्यमान था ।

क्षीण स्वर मे कपाली वावा ने अपनी पराजय स्वीकार की और कहा मैं हार गया हू । मेरी सारी सिद्धिया और कृत्याए आपके प्रयोग के सामने निष्फल सिद्ध हुई हैं अत मैं शिष्यत्व स्वीकार करता हू ।

श्रीमाली जी ने कहा, कपाली वावा आयु मे मुझसे बडे हैं और वयोवृद्ध होने के कारण मै उनका सम्मान करता हू । फिर भी वे पराजित हैं और उन्होंने शिष्यत्व स्वीकार करने की प्रार्थना की है, मैं इस प्रकार के कार्यो मे विश्वास नही रखता, फिर भी मैं मा कृपाली भैरवी की आज्ञा का उल्लघन भी करना नही चाहूगा, अत मैं कपाली वावा को शिष्य के रूप मे स्वीकार करता हू ·और कहते-कहते प्रतीक रूप मे श्रीमाली जी ने कपाली वावा के सिर के सामने वाले कुछ वाल उखाड लिए ।

सारी सभा प्रसन्नता और हर्ष से गूज उठी, सभी अपने-अपने स्थान से उठ खडे हुए, उनकी आखो मे एक आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता लहरा रही थी और उन्होंने श्रीमाली जी के चारों तरफ घेरा सा डाल दिया । भूर्भुआ वावा ने वृद्ध होते हुए भी श्रीमाली जी को अपनी बाहो मे भर लिया, उनकी आँखो मे प्रसन्नता के कण छलछला आये थे । सारी सभा एक स्वर से प्रसन्नता व्यक्त कर रही थी ।

पन्द्रह मिनट तक लगभग इसी प्रकार की प्रसन्नता मिश्रित ध्वनिया गूजती रही । सभी ने एक स्वर से यह स्वीकार किया कि नि सन्देह सिद्धियो के क्षेत्र मे श्रीमाली

जी सर्वोपरि हैं और उनके पास जो अक्षय भण्डार है वह अपने आप मे अद्वितीय है।

भूर्भुआ वावा के वार-बार के अनुरोध से सभा शान्त हुई, और सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे, सभा के वयोवृद्ध देवहूर वावा अपने स्थान से उठे और अपने दाहिने हाथ के अगूठे को चीर कर रक्त से श्रीमाली जी का सभापति के रूप में अभिनन्दन किया।
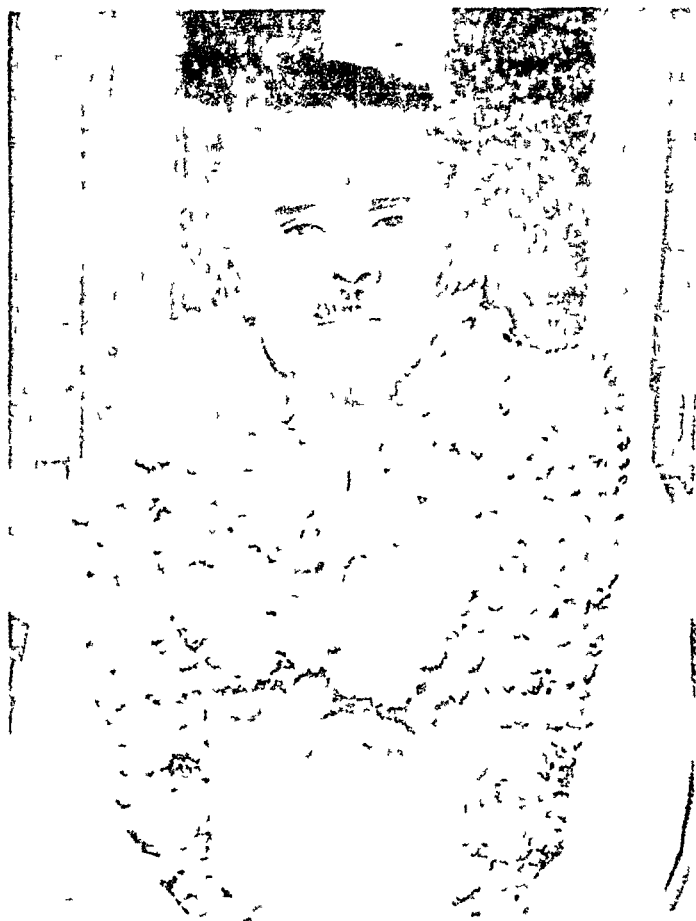
तांत्रिक सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ० श्रीमाली

भूर्भुआ बाबा ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं आज अत्यन्त प्रसन्न हू, क्योंकि हमने एक जटिल समस्या का समाधान ढूढ़ निकाला है। मैं श्रीमाली जी से और उनकी साधनाओ से परिचित रहा हू, तन्त्र-मन्त्र और अन्य सभी प्रकार की

साधनाओ मे वे निष्णात हैं, निष्णात ही नही उन्होंने सर्वोपरि सिद्धियो को हस्तगत किया हैं, इसका प्रमाण अभी आप देख चुके है ।

मेरी ही नही पूरी सभा की आखें श्रीमाली जी के चेहरे टिकी हुई थी। कुछ क्षणो पूर्व उनके चेहरे पर क्रोध की जो लालिमा थी वह समाप्त हो गई थी और उनका चेहरा पुन सामान्य-सा दिखाई देने लग गया था, पूरी सभा के हर्ष और प्रसन्नता का उन पर कोई प्रभाव दिखाई नही दे रहा था। इस अद्भुत और श्रेष्ठतम तांत्रिक सम्मेलन के सभापति पद को प्राप्त करके भी उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार की अह की रेखा दिखाई नही दे रही थी, इसके स्थान पर मुझे उनकी आखो मे स्नेह और करुणा का मिला-जुला रूप दिखाई दे रहा था।

श्रीमाली जी ने प्रारम्भिक भाषण मे अपने गुरु श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी का स्मरण करते हुए आगन्तुक सभी साधको और तांत्रिको की अभ्यर्थना की और बताया कि युग परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्ति को भी परिवर्तन के लिए तैयार रहना चाहिए। हम पूरे विश्व मे तन्त्र-मन्त्र के क्षेत्र मे सर्वोपरि हैं और विश्व की आदिम सभ्यता से अब तक इस भारत को विश्व के अन्य देश चैलेन्ज नही दे सके हैं, इस क्षेत्र मे हम अब भी अग्रगण्य और सर्वोपरि हैं, परन्तु धीरे-धीरे हम मे सकुचितता आ रही है। हम अपने ज्ञान को अपनी ही बपौती समझ बैठे है और दूसरो को देने मे कृपणता बरत रहे हैं, यह हमारी स्वार्थ प्रवृत्ति है जो हमारे स्वय के लिए और इस विद्या के विकास के लिए पूर्णत घातक है।

समाज मे हम अपना सम्मान उस रूप मे कायम नही रख सके हैं, जिस रूप मे रहना चाहिए, क्योकि हमने तन्त्र का प्रयोग केवल मारक कार्यों के लिए ही किया है, तन्त्र का तो सबसे बडा उपयोग रचनात्मक कार्यों मे है। यदि हम इस तन्त्र का रचनात्मक कार्यों मे उपयोग लें तो निश्चय ही सीमित समय मे इस देश का काया पलट कर सकते है। हम इस क्षेत्र मे सर्वोपरि होते हुए भी नगण्य हैं, क्योकि हमने इस विद्या का प्रयोग या तो चमत्कार प्रदर्शन के लिए या व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए ही किया। समाज के रचनात्मक उपयोग के लिए भी इस विद्या का उपयोग हो सकता है, ऐसा हमने सोचना ही छोड दिया।

हमने तन्त्र को एक अजीब रूप दे दिया है, विचित्र वेषभूषा को इसका प्रतीक बना दिया है, यह एक घातक प्रवृत्ति है। हमे चाहिए कि हम इस सकुचितता से बाहर आए और अपने ज्ञान को पुस्तको के माध्यम से, प्रयोगो के माध्यम से तथा समाज के रचनात्मक कार्यों के माध्यम से व्यक्त करें, जिससे कि यह विद्या जीवित रह सके, अन्यथा एक समय ऐसा भी आ सकता है जब यह विद्या हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी।

आज 'परदेह प्रवेश' या 'परकाया प्रवेश' विद्या को जानने वाले कितने बचे हैं ? 'आकाश गमन' और 'मनोनुकूल गमन' साधना इने-गिने लोगो के पास रह गई है, यदि हम इस विद्या को भावी पीढियो के लिए सुरक्षित नही रख सके तो यह विद्या

इस विश्व से हमेशा-हमेशा के लिए लोप हो जाएगी ।

यह सम्मेलन एक आश्चर्यजनक और ऐतिहासिक सम्मेलन है । जिसकी गरिमा और महत्ता को हमे अनुभव करना चाहिए । इस सम्मेलन मे आपसी वाद-विवाद या अपनी अहम्मन्यता को ही बढावा नही देना है अपितु मिल-जुल कर एक-दूसरे की भावनाओ से, एक-दूसरे की कलाओ से और एक-दूसरे की साधनाओ से परिचित होना है, जिससे कि हम आने वाली पीढियो के लिए निश्चित रूपरेखा बना सकें और धरोहर के रूप मे उनको कुछ दे सकें ।

श्रीमाली जी का भाषण नपा-तुला सयत और स्पष्ट था । उनके भाषण मे लुप्त हो रही विद्या को जीवित रखने की ओर सकेत था, इसके साथ-ही-साथ उनकी यह चेतावनी भी थी कि यह विद्या केवल एक ही स्थान पर केन्द्रित होकर समाप्त न हो जाए, बल्कि इसे समाज के आधुनिक परिवेश मे स्थान देना होगा और समाज के मन-मस्तिष्क से जो इसके प्रति भ्रान्त धारणाए हैं उसे दूर करना होगा ।

मैं श्रीमाली जी के भाषण से भी ज्यादा उनकी सादगी और विनम्रता से प्रभावित हो रहा था । मैं देख रहा था कि उन्होंने प्रायोगिक रूप से अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की है फिर भी उनके मन मे किसी भी प्रकार का अह नही है, दूसरो के प्रति आदर, सम्मान और स्नेह मे किसी प्रकार की न्यूनता नही है, जितना ही मैं उनको देख रहा था उतना ही ज्यादा उनके प्रति एक अजीब-सा अपनत्व महसूस कर रहा था । अपने आपको उनके व्यक्तित्व के प्रति सम्मोहित-सा अनुभव कर रहा था । मैंने यह निश्चय कर लिया कि इस अज्ञात व्यक्तित्व के बारे मे ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी प्राप्त करनी है जिससे कि मैं इनसे लाभ उठा सकू ।

मैं उठ कर त्रिजटा अघोरी के पास जाकर बैठ गया और अपना परिचय देते हुए श्रीमाली जी के बारे मे चर्चा छेडी तो मैंने देखा कि उनके चेहरे पर एक अपूर्व-सी चमक आ गई थी । उन्होंने बताया कि तत्र के क्षेत्र मे यह व्यक्ति सागर के समान है, जिसकी थाह पाना सम्भव नही है । मैं अपने आपको तत्र के क्षेत्र मे बहुत कुछ मानता था और श्रीमाली जी मेरे साथ कुछ समय तक पहाडी पर रहे भी थे और मुझसे दो-चार विद्याए सीखी भी थी परन्तु हकीकत यह है कि मैंने जितनी विद्याए उन्हे सिखाई हैं उससे ज्यादा उनसे सीखी हैं । मैंने यह देखा कि यह व्यक्ति जितना दक्षिण मार्गी साधना मे निष्णात है उससे भी ज्यादा वाम मार्गी साधना मे सम्पन्न है । हमारे लिए यह गौरव की बात है कि यह व्यक्तित्व सिद्धाश्रम के सर्वोपरि योगीराज श्री सच्चिदानन्द जी का परम प्रिय शिष्य है, जो कि अपने आप मे एक विशिष्ट गौरव है । योगीराज जी से बहुत कुछ प्राप्त किया है, मत्र साधना के क्षेत्र मे योगीराज विश्ववन्द्य हैं और उनका शिष्य होना ही अपने आप मे विशिष्ट गौरव माना जाता है, अलभ्य दुर्लभ और आश्चर्यजनक साधनाए उनके द्वारा श्रीमाली जी ने प्राप्त की है, इसके अलावा यह व्यक्ति कई वर्षों तक अघोरियो के साथ रहा है, गौरक्ष साधना मे आज के युग मे यह सर्वोपरि है, ऐसा कहने मे मुझे कोई सकोच नही ।

त्रिजटा अपने आप मे एक प्रामाणिक व्यक्तित्व है। सभा मे उपस्थित कई श्रेष्ठ तात्रिक किसी-न-किसी रूप मे त्रिजटा के शिष्य रहे हैं, अत त्रिजटा के शब्द अपने आप मे प्रामाणिक हैं, इसमे सन्देह करने की कोई गुजाइश ही नही थी, जहा त्रिजटा ने श्रीमाली जी के वारे मे इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग किया है तो निश्चय ही श्रीमाली जी तत्र के और मत्र के क्षेत्र मे सर्वोपरि होंगे।

मेरे कान त्रिजटा के शब्द सुन रहे थे और मेरी आखें श्रीमाली जी के व्यक्तित्व पर अटकी हुई थी। मैं आश्चर्यचकित था कि इतना श्रेष्ठ साधक किस प्रकार से बिना हो हल्ले के, विना प्रचार प्रसार के, अपने कार्य मे रत है, इससे भी बडी वात मैंने यह देखी कि यह व्यक्ति बहुत अधिक उदार और नम्र है, यदि इसके स्थान पर कोई दूसरा होता और इस प्रकार मृत्यु के सघर्ष मे विजयी होकर सभापति बनता तो उसका अहकार इस समय आसमान को छू रहा होता, इसकी अपेक्षा यह अपने आप मे सकोच शील है और मृत्यु का फाग खेलने पर भी अपने प्रबल शत्रु कपाली बाबा को आदर-पूर्वक अपने पास बिठा रखा है।

मैंने निश्चय किया कि आज की सभा समाप्त होने पर मैं श्रीमाली जी से अलग से मिलूगा और उनके विचारो को जानने का प्रयत्न करूगा।

अगले दिन की, और आगे के सम्मेलन समाप्त तक की रूप रेखा और कार्य-प्रणाली स्पष्ट करने के वाद आज सायकालीन सभा समाप्त हो गई, क्योकि कई साधक सूर्यास्त के समय की जाने वाली साधना मे भाग लेने के इच्छुक थे, अत सूर्यास्त से कुछ पूर्व ही सभा समाप्त कर दी गई।

सभा समाप्त होते ही अधिकाश तात्रिको और मात्रिको ने श्रीमाली जी को चारो तरफ से घेर लिया। सभी अपना-अपना परिचय देने की उतावली कर रहे थे, सभी तात्रिक उनकी नजरो मे आना चाहते थे और सभी साधक इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि उनकी कृपा का प्रसाद प्राप्त हो सके जिससे कि वे अपनी अपूर्णता को पूर्णता मे परिवर्तित कर सकें।

सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये, जहा पर कि सभी को ठहराने की व्य-वस्था की गई थी और जाते ही अधिकाश साधक अपनी साधनाओ मे व्यस्त हो गए। मेरा मन अन्य किसी कार्य मे नही लग रहा था। एक ही इच्छा हो रही थी कि किसी प्रकार श्रीमाली जी से समय प्राप्त कर सकू जिससे कि मैं अपनी बात को उनके सामने रख सकूं और उनके विचारो को जान सकूं।

पर उनके एक पुराने तात्रिक शिष्य से ज्ञात हुआ कि रात्रि मे उनसे मिलना सभव नही हो सकेगा, क्योकि एक वार अपनी साधना मे जाने के वाद सूर्योदय से कुछ पूर्व ही वे साधना पूर्ण कर वाहर आते हैं, अत इस समय मिलना सभव नही हो सकेगा, यह शिष्य किसी समय श्रीमाली जी के साथ रहा था और उनसे काफी कुछ प्राप्त किया था। आज भी जब वह अपने होठो से श्रीमाली जी का नाम उच्चारित करता तो उसके चेहरे पर एक अपूर्व चमक आ जाती थी और प्रसन्नता से सीना फूल जाता

था। वह इस वात मे गौरव अनुभव कर रहा, कि वह किसी समय श्रीमाली जी का शिष्य रहा है और आज भी उस पर उनकी पूर्ण कृपा है।

उससे मुझे श्रीमाली जी के वारे मे काफी कुछ सुनने को मिला। मुझे ज्ञात हुआ कि लगभग २० वर्षों तक श्रीमाली जी घर गृहस्थी छोडकर केवल तत्र और मत्र की पूर्णता को जानने के लिए जगलो मे भटकते फिरे थे, और इस अवधि मे उन्होंने जो कुछ कष्ट उठाया उसकी अपने आप मे एक अलग कहानी है।

भारत के ऊचे-से-ऊचे साधको के सम्पर्क मे रहने का उन्हे अवसर मिला है और स्वामी सच्चिदानन्द जी के वे परमप्रिय शिष्य हैं और योगीराज ने इनको ही अपना उत्तराधिकारी माना है, इसके अलावा अत्यन्त दुर्लभ सिद्धाश्रम के वे सदस्य हैं और 'आकाश गमन' साधना के माध्यम से वे यदा-कदा सिद्धाश्रम आते जाते रहते हैं।

उन्होने अपने जीवन मे जहा तत्र की सर्वोच्चता प्राप्त की है, वही दूसरी ओर मत्र के क्षेत्र मे भी सर्वोपरिता प्राप्त करने मे सफल हो सके हैं, वाम मार्गी साधना के वे सर्वश्रेष्ठ साधक हैं, चौसठ कृत्याओ को उन्होंने पूर्णत सिद्ध किया है, और उन्होने ऐसी कई साधनाए सिद्ध की हैं जो दूसरो के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो सकती है, अघोर साधना के क्षेत्र मे उनकी अग्रगण्यता आज भी सभी लोग मानते हैं।

परन्तु इतना होते हुए भी वे जरूरत से ज्यादा नम्र हैं और कभी भी चमत्कार प्रदर्शन या अपने अह का प्रदर्शन करने मे विश्वास नही रखते, उनका पूरा जीवन सरल, सात्विक और गौरवपूर्ण रहा है।

इससे भी आश्चर्यजनक वात मुझे यह सुनने को मिली कि श्रीमाली जी इन विद्याओ मे सर्वश्रेष्ठ होने के साथ-साथ एक सफल गृहस्थी भी हैं, पूर्णत भारतीय वातावरण मे ढली हुई उनकी पत्नी है, पुत्र है, पुत्रिया हैं और अपने गृहस्थ को ठीक उसी प्रकार से निभाते हैं जिस प्रकार से साधारण गृहस्थ अपने गृहस्थ जीवन को निभाता है।

इतना होने पर भी उनकी साधना पर कभी भी गृहस्थ हावी नही हो सका है और न गृहस्थ पर उनकी साधना हावी रहती है। दोनो मे उचित समन्वय उनके जीवन की विशेषता है और दोनो ही क्षेत्रो मे उन्होंने पूर्णता प्राप्त की है।

जिस समय वे अपनी साधना मे रत होते हैं तो उनका रूप ही वदल जाता है, उस समय वे पूर्णत साधक दिखाई देते है, गृहस्थ का किसी भी प्रकार से कोई प्रभाव उस समय उन पर नही रहता। इसके विपरीत जब हम उनको गृहस्थ रूप मे देखते हैं तो यह विश्वास ही नही होता कि यह व्यक्ति साधक है या इस व्यक्ति ने साधना के क्षेत्र मे सर्वोच्चता प्राप्त की है।

जितना ही मैं श्रीमाली जी के बारे मे सुनता जा रहा था उतनी ही ज्यादा मेरी उत्सुकता उनसे मिलने की हो रही थी। ऐसा अवसर मुझे सम्मेलन प्रारम्भ होने के पाचवे दिन मिला जबकि वे दोपहर मे विश्राम कर रहे थे। उस शिष्य के माध्यम से मैंने श्रीमाली जी से निवेदन किया था कि मैं एक साधारण साधक हू और इस क्षेत्र

मे पिछले १५ वर्षों से भटक रहा हू, यद्यपि मुझे कुछ प्राप्त हुआ है परन्तु वह समुद्र मे वूद के समान है। मैं पिछले चार दिनो से आपसे मिलने के लिये प्रयत्न कर रहा हू परन्तु चौवीसो घटे आप इस प्रकार से व्यस्त हैं कि मैं एक क्षण भी आपका ले नही पाया हू। मैं कुछ क्षण आपसे लेना चाहता हू, जिससे कि मैं आपसे कुछ मार्ग दर्शन पा सकू और अपने जीवन की साध को सफल वना सकू।

तव दोपहर के विश्राम के समय श्रीमाली जी ने कुछ समय मुझे एकान्त भेंट के लिए दिया। यह भेंट मेरे लिए आज भी स्मरणीय है जवकि मैं पहली वार इस महा-पुरुष के सामने वैठकर अपनी वात को उनके सामने रख सका था और मार्गदर्शन पा सका था।

मैंने यह पाया कि निश्चय ही श्रीमाली जी अपने क्षेत्र में सार्वोपार हैं और उनके पास जो सिद्धिया हैं वे अपने आप मे अन्यतम हैं, उनको चुनौती देने वाला या उनसे स्पर्धा करने वाला आज कोई भी अन्य नही है, फिर भी यह व्यक्ति अत्यधिक नम्र है और अपनी प्रशसा सुन कर इसको जरूरत से ज्यादा सकोच अनुभव होता है, ज्योही प्रशसा की चर्चा छिडती है, तो वे विषय को वदल देते हैं, उनके मन मे सभी तान्त्रिक, मान्त्रिक, भैरवियो, अघोरियो आदि के वारे मे स्नेह है, और सभी को वे मार्गदर्शन देने मे सफल हैं।

मैंने उनसे वातचीत मे निवेदन किया कि मैं जीवन मे कानून का सफल विद्यार्थी और न्यायपालिका का श्रेष्ठ सदस्य रहा हू, इसके वाद मैंने पत्रकारिता के क्षेत्र मे पूर्णता प्राप्त की थी, परन्तु इस क्षेत्र मे मेरी रुचि नही रही और मैंने अपने शेष जीवन को तान्त्रिक साधना सीखने मे ही व्यतीत करने का निश्चय किया है।

मैं पिछले पन्द्रह वर्षों से इस क्षेत्र मे सीखने का प्रयत्न कर रहा हू, पर इस सम्मेलन मे आने के वाद मुझे ज्ञात हुआ है कि मेरा अस्तित्व तो नही के वरावर है। यदि मैं सौ वर्ष भी जीवित रह जाऊ फिर भी मैं कुछ भी प्राप्त नही कर पाऊगा जितना कि चारो तरफ ज्ञान फैला हुआ है।

मैंने उनसे तन्त्र के वारे मे मन्त्र और वाम मार्गी साधना के वारे मे कई प्रश्न किये और उन्होंने जितने स्नेह और प्रामाणिकता के साथ मुझे समझाया वह आज भी स्मरणीय है, जितना मैं सुन रहा था उतना ही ज्यादा मुझे उनकी गहराई का एहसास हो रहा था। मैं देख रहा था कि यह व्यक्ति अपने आप मे कितना महान है, परन्तु साथ-ही-साथ कितना नम्र भी। ऐसा ही व्यक्ति आने वाली पीढियो के लिए मार्ग-दर्शक वन सकता है।

मेरी आत्मा मुझे कह रही थी कि तू जिस मजिल को पाना चाहता है जो गुरु की धारणा तेरे मन मस्तिष्क मे है, वह सामने है, तेरी जिज्ञासाओ का समाधान इसी व्यक्ति से हो सकता है, क्योकि इस व्यक्ति मे देने की क्षमता जरूरत से ज्यादा है।

डरते-डरते मैंने इच्छा प्रकट की कि मैं कुछ समय आपके साथ रहना चाहता हू और यदि मुझ मे पात्रता हो और आप उचित समझें तो मैं शिष्य रूप मे आपके चरणो

मे जीवन विताना चाहता हू ।

*श्रीमाली जी ने उत्तर दिया कि इतनी जल्दी शिष्य वनना सभव नही है क्योकि* केवल होठो से ही गुरु या शिष्य शब्द उच्चारित करना ही सव कुछ नहीं है, जव तक पूर्ण मानसिक और हार्दिक रूप से समर्पण की भावना उजागर नही होती तव तक शिष्यत्त्व की पूर्ण भावना जागृत नही हो पाती, और जब तक ऐसी भावना जागृत नही होती तव तक शिष्य वनना व्यर्थ है, क्योकि 'गुरु' शब्द एक सामान्य शब्द नही है इसके पीछे वहुत वडी जिम्मेदारी है, वहुत वडा उत्तरदायित्व है, और जव तक वह गुरु उस शिष्य के प्रति पूर्ण क्षमता के साथ उत्तरदायित्व का निर्वाह नही कर सके तव तक उसका गुरु वनना या गुरु वनने की प्रक्रिया अपनाना व्यर्थ है ।

मैं गुरुवाद मे विश्वास नही करता । मैं नही चाहता कि मेरे पीछे शिष्यो की लम्वी कतार या उनकी फौज हो । मैं तो जीवन मे सकुचितता इस रूप मे चाहता हू कि चाहे कम ही शिष्य हो परन्तु वे अपने आप मे पूर्ण हो । मुझे शिष्य रूप मे तुम्हे स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही है, पर तुम्हारे होठो की अपेक्षा जव तुम्हारा हृदय इस वात की याचना करेगा तो मैं तुम्हे अवश्य शिष्य वना लूगा ।

होठो के शब्दो की अपेक्षा हृदय से जो शब्द उच्चरित होते हैं वे ज्यादा सही, प्रामाणिक और पवित्र होते हैं । मैं होठो से निकले हुए शब्दो की अपेक्षा हृदय से निकलने वाले शब्दो पर ज्यादा विश्वास करता हू । जव भी तुम्हारी ऐसी स्थिति हो जाय तव मेरा द्वार तुम्हे खुला मिलेगा और तुम मेरे पास आ सकोगे ।

उनकी वात अपने स्थान पर सही थी, अभी तक मैं अपने आप को पूर्ण क्षमता के साथ शिष्य का रूप नही दे सका था, शिष्य का मूल समर्पण होता है और जव तक व्यक्ति मे समर्पण की पूर्ण भावना स्पष्ट नही होती, तव तक 'शिष्य' शब्द सार्थक नही हो पाता । मैं अपने आपको पूर्णता के साथ शिष्य स्पष्ट करना चाहता था, और मैंने उसी क्षण निश्चय कर लिया था कि मैं एक दिन अवश्य ही श्रीमाली जी का शिष्य वनने का गौरव प्राप्त कर सकूगा ।

मैंने उनसे याचना की कि निश्चय ही मैं अभी आपका शिष्य वनने के योग्य नही हू । अभी मुझ मे उस पात्रता का अभाव है जो आपका शिष्य वनने के लिये आवश्यक है, परन्तु फिर भी इस सम्मेलन के वाद कुछ समय आपके साथ रहना चाहता हू, और मुझे विश्वास है, आप मेरे इस अनुरोध को ठुकरायेंगे नही, अपितु स्वीकृति देंगे जिससे कि मैं अपने आपको धन्य समझूगा ।

श्रीमाली जी ने तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी आखो मे झाका और एक ही क्षण मे उन्होंने मुझे अपनी कसौटी पर तोल लिया । मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे कि वे मेरे पूर्ण अन्तर को देख चुके है और मेरे अन्तर मे गहराई के साथ प्रवेश कर वह सव-कुछ जान चुके हैं, जिनको मै गोपनीय रख रहा था । एक क्षण के लिये मे पीपल के पत्ते की तरह काप गया । वह क्षण आशका और प्रतिशका के वीच इसलिये झूल रहा था कि श्रीमाली जी स्वीकृति देंगे या नही । यदि उन्होने मना कर दिया तो आगे के सारे

रास्ते मेरे लिये अवरुद्ध हो जायेंगे। यदि उनकी स्वीकृति मिल गई तो मैं कुछ दिन उनके साथ रह सकूगा और उसके जीवन की सुवास से अपने आपको सुवासित कर सकूगा, और अपने कार्यो से यह स्थापित करने का सफल-असफल प्रयास कर सकूगा कि मैं शिष्य वनने की योग्यता रखता हू, और आने वाले समय मे मै इस कसौटी पर खरा उतर सकूगा।

श्रीमाली जी मेरे चेहरे पर नजर डालते हुए मुस्कराये और कुछ दिन साथ रहने की स्वीकृति दे दी। यह स्वीकृति मेरे लिये किसी श्रेष्ठ साधना की सफलता से कम नही थी। मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे मैं कुछ-कुछ पा गया हू, मुझे अपनी मजिल मिल गई हो, मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि जिस कार्य के लिये मैं भटक रहा था उस की पूर्णता अव निकट भविष्य मे हो सकेगी, हो सकता है मैं अपने जीवन में पूर्णता पा सकू। मैंने अपने मन मे जो लक्ष्य निश्चित किया था वह लक्ष्य अव मुझे निकट आता अनुभव हो रहा था।

सम्मेलन मे जाने का समय हो गया था। मैं उनसे विदा लेकर वाहर आया। उस समय मैं अपने आपको ससार का सवसे अधिक सौभाग्यशाली अनुभव कर रहा था, मेरा हृदय प्रसन्नता के कारण जोरो से धडक रहा था। खुशी के मारे मेरे पाव जमीन पर नही पड रहे थे, पूरा शरीर रोमाचित हो गया था, और मेरी आखों मे प्रसन्नता के आसू छलछला रहे थे।

आज पहली वार मैंने अनुभव किया था कि सिद्धि पुरुष के समीप वैठने से हीं कितना कुछ लाभ हो जाता है। उनके शरीर से निसृत गध से जो मादक वातावरण वनता है वह कितना अनुपम होता है।

सम्मेलन के दस दिन हगामापूर्ण ही रहे, परन्तु ये दस दिन अपने आप मे अन्यतम थे, क्योकि इन दस दिनो मे श्रेष्ठतम साधको ने श्रेष्ठतम प्रक्रिया से अपनी साधनाओ को स्पष्ट किया और उन साधनाओ मे नवीनतम रहस्यो की ओज को भी सवके सामने स्पष्ट किया।

अभी तक 'श्यामा-साधना' अपने आप मे अत्यन्त जटिल और कठोर समझी जाती थी, परन्तु वैचाक्षी वावा ने इस प्रक्रिया को एक नवीन पद्धति से सिद्ध किया और उन्होने उसके परिणाम भी सवके सामने रक्खे। इसी प्रकार ऊर्ध्वगमन प्रक्रिया की सरलतम विधि भी जिज्ञासुओ के सामने स्पष्ट हुई, त्रिजटा अघोरी ने व्यावहारिक रूप मे 'सजीवनी-विद्या' को सबके सामने स्पष्ट किया। रामायण मे मैंने पढा था कि जव राम-रावण का युद्ध समाप्त हुआ तो राम ने इन्द्र से प्रार्थना की कि आप मेरी सेना के जितने भी मृत वानर हैं या इस युद्ध मे मारे गए हैं उन्हे आप सजीवनी विद्या से जीवित कर दें, । इन्द्र ने प्रसन्न होकर उन सभी वानरो को पुन जीवित कर दिया था, साथ ही वे रोग मुक्त भी हो गये थे।

इन्द्र ने यह विद्या वृहस्पति से सीखी थी और मैंने यह पढा था कि वृहस्पति और शुक्र दोनो ही इस विद्या के पारगत ऋषि थे। मैंने इसको पढकर केवल अनुमान

लगाया था कि किसी समय हमारे देश मे यह विद्या जीवित रही होगी, परन्तु काल-व्यवधान के कारण यह विद्या इस देश मे लुप्त हो गई होगी, परन्तु त्रिजटा ने सबके सामने इस प्रक्रिया को सिद्ध करके दिखाया। उन्होंने मृत व्यक्ति को जोकि पास के गाव मे एक दिन पहले ही मरा था उसे प्राप्त कर सम्मेलन मे सबके सामने उसे जीवित कर दिखाया, यह मेरे लिए और अन्य साधको के लिये आश्चर्यजनक था, परन्तु जो कुछ था हमारे सामने था और प्रत्यक्ष था। वास्तव मे अभी तक भारत इस प्रकार की विद्याओ से सम्पन्न है। त्रिजटा ने वाम मार्गी साधना से 'सजीवनी प्रक्रिया' सम्पन्न की थी, बाद मे मुझे ज्ञात हुआ कि इसकी एक और विधि मान्त्रिक भी है और उसके माध्यम से भी यह क्रिया सम्पन्न की जाती है। त्रिजटा से ही मुझे ज्ञात हुआ कि श्रीमाली जी को दोनो ही प्रकार की विधिया ज्ञात हैं और उन्होंने इसका प्रयोग कई बार किया भी है।

'आकाश-गमन-प्रक्रिया' भी मैंने पहली बार इस सम्मेलन मे देखी, जबकि साधक इस प्रक्रिया के माध्यम से हवा से भी हल्का होकर आकाश मे विचरण कर सकता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर सहज मे ही आ जा सकता है। भूर्भुआ बाबा ने इस प्रक्रिया को सबके सामने करके बताया और उन्होंने उन प्रश्नो के उत्तर भी दिये जो कि इस प्रक्रिया के पेचीदा अग हैं। इस साधना के माध्यम से साधक हवा मे पक्षी की तरह उड सकता है और उसका वेग वायुयान से भी कई गुना तेज होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये और अगम्य पर्वतो को पार करने के लिये यह विधि सर्वाधिक उपयुक्त है।

पुराणो मे नारद के बारे मे विख्यात है, कि वे निरन्तर घूमते रहते थे और कुछ ही क्षणो मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन कर सकते थे। उन्हे यही विधि ज्ञात थी, जिसके माध्यम से वे ब्रह्माण्ड के किसी भी स्थान पर सशरीर कुछ ही क्षणो मे पहुच जाते थे। यह मान्त्रिक प्रक्रिया है और इसकी एक वाम मार्गी तान्त्रिक प्रक्रिया भी है जिसे मच्छिन्दरनाथ ने विकसित किया था, वे सशरीर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने मे सक्षम थे, भूर्भुआ बाबा ने मान्त्रिक प्रक्रिया को सबके सामने स्पष्ट किया और प्राणायाम प्रक्रिया से अपने शरीर को वायु से भी हल्का कर पृथ्वी से १० फीट तक ऊपर उठ कर सब को बताया, साथ ही उन्होंने आकाश मे विचरण करके भी इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया। मा कृपाली भैरवी इस प्रक्रिया के वाम मार्गी साधना की निष्णात साधिका हैं, उन्होने भी कृपा कर इसकी तान्त्रिक प्रक्रिया को सबके सामने स्पष्ट किया और सशरीर उन्होने भूर्भुआ बाबा के समक्ष वायु और आकाश मे विचरण कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने इस प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से समझा करके भी स्पष्ट किया। मूलत श्मशान साधना है और इसके माध्यम से यह तुरन्त सिद्ध होती है। मा कृपाली भैरवी को मनोनुकूल विचरण प्रक्रिया भी ज्ञात है और उन्होंने इस प्रकार की प्रक्रिया को सबके सामने स्पष्ट करके भी दिखाया था।

शाम को मैं मा कृपाली भैरवी के साथ काफी समय तक रहा और उन्हे इन

रहस्यो को जानने के लिये साधुवाद दिया । बातचीत मे उन्होंने बताया कि वे बचपन से ही सन्यासी हो गई थी और तात्रिक क्षेत्र मे उन्होंने अपने जीवन को व्यतीत करने की भावना मन मे धारण कर ली थी । कुछ समय तक वे हिमालय के 'सिद्धाश्रम' मे भी रही थी जो कि अपने आप मे श्रेष्ठतम उपलब्धि मानी जाती है ।

बातचीत मे मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि जब श्रीमाली जी निखलेश्वरानन्द जी के रूप मे हिमालय स्थित थे तब मा कृपाली भैरवी उनके साथ काफी समय तक रही थी और इस प्रकार की साधनाए उनसे ही प्राप्त की थी । आज भी जब वे गुरु का नाम लेती है तो उनकी आखें छलछला आती हैं । मा कृपाली भैरवी से ही मैंने अनुभव किया कि शिष्य का मुख्य गुण समर्पण होता है और उसके रोम-रोम से गुरु की ही ध्वनि निकलती है ।

इस सम्मेलन की एक और उपलब्धि 'परकाय-प्रवेश' का दिग्दर्शन था । मैंने इस सबध मे कई स्थानो पर पढा था कि साधक अपने शरीर को छोडकर दूसरे मृत शरीर मे प्रवेश कर लेता है और उस दूसरे शरीर से भी जीवन के क्रिया-कलाप सम्पन्न कर लेता है, यह साधना भारत की सर्वश्रेष्ठ साधनाओ मे से एक रही है, कुछ समय पूर्व शकराचार्य इस विद्या के निष्णात साधक थे ।

जब मण्डन मिश्र और शकराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ तो निश्चय यह हुआ कि इन दोनो मे से जो हारेगा वह जीते हुए व्यक्ति का शिष्य बन जायेगा । मण्डन मिश्र भारत के विख्यात विद्वान् और गृहस्थ थे । उनकी विदुषी पत्नी सरस्वती भी साक्षात सरस्वती का अवतार थी और दोनो पति-पत्नी भारत के श्रेष्ठतम विद्वान् थे ।

शकराचार्य मूलत सन्यासी थे और उन्होंने शास्त्रार्थ के माध्यम से भारत विजय करने के उद्देश्य से यात्राए की थी । मगर वे सर्वश्रेष्ठ तभी माने जा सकते थे जबकि वे मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ मे पराजित कर सकते ।

इन दोनो के शास्त्रार्थ का निर्णय कौन करे यह एक पेचीदा प्रश्न था, क्योकि कोई सामान्य विद्वान् तो निर्णय करने मे सक्षम था नही, अत शकराचार्य जी के अनुरोध से इस शास्त्रार्थ के निर्णायक के रूप मे मण्डन मिश्र की पत्नी का चयन किया गया । शास्त्रार्थ इक्कीस दिन चला और आखिर मे मण्डन मिश्र शकराचार्य से हार गये । यह देखकर मण्डन मिश्र की पत्नी ने निर्णय दिया कि मण्डन मिश्र हार गये हैं, अत वे शकराचार्य का शिष्यत्व स्वीकार करें और सन्यास दीक्षा लें ।

यह कहकर वह विदुषी पत्नी निर्णायक पद से नीचे उतरी, और शकराचार्य से कहा कि मैं मण्डन मिश्र की अर्द्धांगिनी हू अत अभी तक आधा अग ही पराजित हुआ है, जब आप मुझे भी पराजित करेंगे तभी मण्डन मिश्र पराजित माने जायेंगे, युक्ति के अनुसार बात सही थी । मण्डन मिश्र निर्णायक बने और सरस्वती तथा शकराचार्य मे शास्त्रार्थ प्रारभ हुआ ।

इक्कीस वें दिन जब मण्डन मिश्र की पत्नी ने यह भली भाति अनुभव कर लिया कि मेरा पराजित होना निश्चित है तब उसने शकराचार्य से कहा कि मैं एक

अन्तिम प्रश्न पूछती हू, और यदि इस प्रश्न का भी उत्तर आपने भली प्रकार से दे दिया तो हम दोनो अपने आपको पराजित अनुभव करेंगे और आपका शिष्यत्व स्वीकार कर लेंगे ।

शकराचार्य की स्वीकृति प्राप्त होने पर सरस्वती ने प्रश्न किया कि सम्भोग क्या है ? यह कैसे किया जाता है ? और इससे सन्तान का निर्माण किस प्रकार से हो जाता है ?

प्रश्न सुनते ही उसकी गहराई शकराचार्य समझ गये । यदि वे इसका उत्तर देते हैं तो उनका सन्यास धर्म खण्डित होता है, क्योकि सन्यासी को सम्भोग का ज्ञान सभव ही नही है और जिसका ज्ञान व्यावहारिक रूप मे ज्ञात नही है, उसका उत्तर देना कैसे सभव है ? अत सन्यास धर्म की रक्षा के लिए उत्तर देना सभव नही था और यदि उत्तर नही देते हैं तो पराजित माने जाते है, दोनो ही दृष्टियो से वे पराजित होते हैं ।

शकराचार्य ने प्रश्न किया कि क्या इस प्रश्न का उत्तर पढे हुए ज्ञान के आधार पर दे सकता हू या इसका उत्तर तभी आप प्रामाणिक मानेंगी जबकि उत्तर-कर्त्ता इस प्रक्रिया से गुजर चुका हो ।

सरस्वती ने उत्तर दिया कि व्यावहारिक ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान होता है, यदि आपने इसका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया है तो आप उत्तर देने मे स्वतत्र हैं ।

शकराचार्य जन्म से ही सन्यासी रहे थे अत उनके जीवन मे सम्भोग का व्यावहारिक ज्ञान धर्म और सन्यास के सर्वथा विपरीत था, अत उन्होने पराजय स्वीकार करते हुए कहा कि मैं इसका उत्तर छ महीने बाद दूगा ।

इसके बाद शकराचार्य किसी अज्ञात स्थान पर चले गये । सयोगवश उस शहर के राजा की मृत्यु हो गई, तब शकराचार्य अपने शरीर को छोड राजा के शरीर मे प्रवेश कर गये, फलस्वरूप राजा कुछ समय बाद ही पुन जीवित हो गया, सबधियो ने राजा को पुन जीवित देख हर्ष ध्वनि की । राजा के माध्यम से रानियो के साथ जो सम्भोग हुआ, उसका व्यावहारिक ज्ञान शकराचार्य लेकर पुन अपनी काया मे प्रवेश कर गये, इस प्रकार व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया और जिस शरीर से सन्यास धर्म स्वीकार किया था उसको भी खण्डित नही होने दिया ।

इसके बाद वे पुन मण्डन मिश्र की पत्नी को उसके प्रश्न का व्यावहारिक ज्ञान देकर विजय प्राप्त की और उन दोनो पति-पत्नी को शिष्यता प्रदान की, इस प्रकार उन्होंने अपने आपको भारत का शास्त्रार्थ विजेता सिद्ध किया ।

मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि यह विद्या हमारे भारत मे शकराचार्य के समय तक रही है पर उसके बाद यह विद्या धीरे-धीरे लुप्त होती गई । मेरे जैसे अधिकाश साधको को यह विश्वास था कि इस साधना पर भी सम्मेलन मे चर्चा होगी और सभवत इस साधना को व्यावहारिक रूप मे देख सकेंगे ।

सम्मेलन के आठवें दिन श्रीमाली जी ने इस साधना को सबके सामने व्याव-

हारिक रूप मे करके दिखाया। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि इस समय भारत मे मात्र चार या छ साधको को ही इस विधि का ज्ञान है, और इनमे से भी अधिकाश सिद्धाश्रम के स्थायी साधक हैं जो कि वहा से नीचे आते ही नही, सैंकडो साधको के प्रवल अनुरोध और आग्रह को रखने के उद्देश्य से वडी ही अनिच्छा से श्रीमाली जी ने इस साधना को सवके सामने व्यावहारिक रूप मे करके दिखाया। यह अनुभव मेरे लिये आश्चर्यजनक था, सुखदायक था और मन सतुष्टिदायक था।

सम्मेलन मे इसके अलावा कई साधनाए सवके सामने स्पष्ट की गई। इन साधनाओ मे जो वाधाए आती है उनको भी सवके सामने रखा गया, साथ ही इन वाधाओ का निराकरण किस प्रकार से हो सकता हे या क्या कोई अन्य सरल विधि है जिसके माध्यम से इस प्रकार की विधिया प्राप्त की जाए, इस पर भी विचार-विमर्श हुआ।

सम्मेलन के अन्त मे भूर्मुआ वावा के अनुरोध से श्रीमाली जी ने 'कात्यायनी-प्रयोग' करके वताया। यह प्रयोग अत्याधिक जटिल और कठिन माना जाता है। इसके द्वारा एक ही क्षण में कई व्यक्तियो से अलग-अलग रूपो मे एक साथ मिलना हो सकता है, अर्थात् जो साधक इस साधना मे निष्णात होता है, वह किसी एक निश्चित समय मे दस अलग-अलग स्थानो मे दस अलग-अलग व्यक्तियो से सशरीर भेंट कर सकता है अर्थात् वह अपने शरीर के कई शरीर बना सकता है। मैने सुना था कि स्वामी विशुद्धानन्दजी और उडिया वावा को यह साधना ज्ञात थी, जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क मे रहे हैं उन्होंने इसका अनुभव भी किया है।

यह विद्या पूर्णत 'लोप-विद्या' मानी जाती थी और सभी का लगभग ऐसा अनुमान था कि यह विद्या भारत से अव लुप्त हो चुकी है क्योकि पिछले १०० वर्षो मे इस प्रकार की विद्या जानने वाले के वारे मे ज्ञात नही हो सका था, परन्तु जव इस सम्मेलन मे सभापति के द्वारा इस प्रकार की साधना को सफलतापूर्वक सम्पन्न करके दिखाया गया तो पूरी सभा मे आश्चर्यमिश्रित हर्ष ध्वनि की गई।

दस दिन का यह सम्मेलन अपने आप मे अन्यतम था। जहा तक मेरी धारणा है पिछले पाच हजार वर्षों मे भी इस प्रकार का सम्मेलन नही हो सका था।

यह सभापति की प्रवन्धदक्षता का एक ज्वलन्त उदाहरण था कि उन्होंने अपने ज्ञान से, अपनी प्रतिभा से, और अपने व्यक्तित्व से इन सभी साधको को वाधे रखा, अन्यथा विभिन्न साधनाओ से सम्पन्न साधक एक स्थान पर एकत्र हो और परस्पर मतभेद और समस्याए पैदा न हो यह आश्चर्यजनक वात थी, इसकी ध्वनि भूर्भुआ वावा के समापन भाषण मे भी सुनाई दी, उन्होने कहा कि मैं अत्याधिक परेशान था कि यह सम्मेलन किस प्रकार से सम्पन्न हो सकेगा जव कि सभी साधक एक दूसरे से वढ चढ कर हैं और सभी साधक एक दूसरे पर हावी होने की प्रक्रिया मे रत हैं। इसलिये भी चिन्तित था कि कही कोई किसी पर मारक प्रयोग न कर दे और समस्या पैदा न हो जाय, पर इस सम्मेलन का पूर्ण श्रेय साधक श्रीमाली जी की प्रवन्धदक्षता

को है जिनके प्रवन्ध से यह सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका ।

इस सम्मेलन की सबसे बडी उपलब्धि यह रही है कि हम एक दूसरे के सम्पर्क मे आ सके हैं, एक दूसरे के बारे मे भली प्रकार से जान सके हैं और एक-दूसरे के विचारो से, उनकी साधनाओ से उनके ज्ञान और उनकी भावनाओ से परिचित हो सके हैं, यह आदान-प्रदान इस सम्मेलन के द्वारा ही सम्भव हो सका, जो कि अपने आप मे अन्यतम उपलब्धि है ।

इसके साथ-ही-साथ हन उन सर्वश्रेष्ठ साधनाओ के सम्पर्क मे आ मके हैं, जो लुप्त साधनाए कही जाती हैं, उन साधनाओ का हमने व्यावहारिक पक्ष इस मत्र पर देखा और आज हम यह कहने मे समर्थ हैं कि हमारी प्राचीन धरोहर आज भी योग्य साधको के हाथो मे सुरक्षित है, आज भी हम उतने ही सम्पन्न है जितने कि प्राचीन समय मे थे, हम कई वर्षो तक विश्व को ज्ञान देने मे समर्थ हैं, हम इस क्षेत्र मे अग्रगण्य है और हमारे पास जो कुछ भी पूर्वजो का ज्ञान है, वह आज भी सुरक्षित रूप मे है ।

श्रीमाली जी ने समापन भाषण मे सभी साधको के प्रति आभार प्रकट किया, जिनकी वजह से यह सम्मेलन पूर्णत सफल हो सका, विशेष रूप से सिद्धाश्रम मे आने वाले साधको के प्रति उन्होने विशेष आभार प्रकट किया ।

उन्होने भाषण के अन्त मे चेतावनी भी दी कि हम अपने ही घेरे मे आवद्ध न रहे, हमारे पास जो ज्ञान है उस पर सभी का अधिकार है इस ज्ञान को ज्यादा-से-ज्यादा वितरित किया जाए तभी हमारे जीवन की सार्थकता है ।

उन्होने साधको का आह्वान किया कि उन्हे अपना जीवन साधना मे समर्पित भाव से लगा देना चाहिए, उनको चाहिए कि वे योग्य शिष्यो की खोज करें और उन्हें अपना सम्पूर्ण ज्ञान साधना दें, जिससे कि यह विद्या आगे के जीवन मे वनी रह सके और गतिशील वनी रहे ।

उन्होंने उच्चतम साधको से भी प्रार्थना की कि समय गतिशील है और यदि इसी गति के साथ अपने आपको परिवर्तित नही कर सके तो हम सामाजिक धारा से कट जाएगे और हमारी सारी साधना एक प्रकार मे निष्फल हो जाएगी ।

उन्होंने वताया कि प्राचीन काल मे जगलो मे जो गुरुकल होते थे उनके मचालक जगलो मे रहते हुए भी समाज से पूरी तरह सवधित रहते थे, अत उनके ज्ञान की गगा समाज मे प्रवाहशील रहती थी, परन्तु धीरे-धीरे साधको ने अपने आपको समाज से परे कर दिया और जगलो मे रहने को ही साधना की पूर्णता मान ली, जवकि यह अनुचित है, क्योकि इससे हम समाज से कट गए हैं, ममाज विश्वाम नही करता कि साधना अपने आप मे इतनी उच्च होती है जो कि आज के इस वैज्ञानिक युग मे भी अपनी श्रेष्ठता और उच्चता सिद्ध कर सकती है । जिन स्थानो पर विज्ञान निष्फल है निरुपाय है, पराजित है वहा पर साधना मफलता दे मकती है, इमीलिए विज्ञान मे कई गुना ज्यादा वढ चढ़ कर यह साधना का महत्त्व है ।

हमको चाहिए कि हम इस प्रकार के साधक तैयार करें जो समाज से जुडे हुए हो। उन साधको को हम अपने ज्ञान की गगा से आप्लावित करें जिससे कि उसकी सुखद फुहार से जनमानस आनन्द प्राप्त कर सकें। यदि रामकृष्ण अपने शिष्य विवेकानन्द को तैयार नही करता तो ससार एक बहुत बडे ज्ञान से वचित रह जाता, अत आज इस प्रकार के कई विवेकानन्दो की जरूरत है, जो अपने आपको समाज से जोड सकें।

अन्त मे उन्होंने कहा, मेरी यह धारणा है कि आपमे से अधिकाश मेरी भावनाओ को समझेंगे और आपके पास जो साधनाए है जो सिद्धिया है, उन्हे जनमानस से जोडेंगे, जिससे कि समाज इससे लाभ उठा सके।

श्रीमाली जी ने कहा कि मेरा द्वार प्रत्येक साधक के लिए खुला है फिर वह चाहे सन्यासी हो, या गृहस्थी, मेरा प्रत्येक क्षण उनके लिए समर्पित है। वे जिस रूप मे भी मुझसे साधना का ज्ञान जानना चाहे, मै उनके लिए तैयार हू। मै चाहता हू कि इस प्रकार जीवट वाले युवक आगे आये, जिनके हृदय मे कुछ सीखने की प्रबल चाह हो, जिनकी आखो मे लपट हो, जिनके हृदय मे कुछ कर गुजरने की क्षमता हो, जो विपरीत परिस्थितियो मे भी अपने आपको सन्तुलित और सयमित रख सके, उनका स्वागत है। उनके लिए मेरा प्रत्येक क्षण और यह जीवन समर्पित है।

समापन दिवस अपने आप मे ऐतिहासिक था, जबकि प्रत्येक साधक एक-दूसरे से मिल रहा था, एक-दूसरे को ज्ञान का आदान-प्रदान कर रहा था। पहले दिन जो फूट या अह का दिग्दर्शन हुआ था वह समाप्त हो गया था और इन १० दिनो मे सभी साधक एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ चुके थे। प्रत्येक की आखो मे आसू छलछला रहे थे, प्रत्येक की आखें नम थी और प्रत्येक बिछुडते समय ऐसा अनुभव कर रहा था जैसे उनके शरीर से प्राण बिछुड रहे हो।

इन दस दिनो मे श्रीमाली जी ने जितना अथक श्रम किया, वह मेरे लिए आश्चर्यचकित था। मैंने उन्हे एक क्षण भी सोते हुए नही देखा, चौबीसो घण्टे निरन्तर कार्य मे व्यस्त होते हुए भी उनके चेहरे पर थकावट की कोई रेखा नही देखी, उनका चेहरा प्रत्येक क्षण प्रफुल्लित था, उनकी आखें हर क्षण मार्ग दर्शन देती थी, उनके मन मे ऐसा कोई अह नही था कि छोटे साधक से बातचीत न की जाए या व्यस्तता का लबादा ओढे रहे, जो भी उनसे मिलता वह अपने आपको धन्य समझता और अपने मन मे पूर्णत तुष्टि अनुभव करता।

अन्तिम दिन सभी साधक, योगी, तान्त्रिक, हठ योगी, अघोरी, मान्त्रिक, और भैरवी—साधिकाए श्रीमाली जी से मिलने के लिए व्यग्र थी। सभी उनसे मिल रहे थे और सभी उनसे विदा लेते समय सिसक रहे थे, ऐसा लग रहा था जैसे वे अपने प्राणो को छोड रहे हो। सबसे ज्यादा आसू कपाली बाबा की आखो मे थे, पश्चात्ताप से उनका सारा शरीर थरथरा रहा था और जब श्रीमाली जी विदा हुए तो वह वृद्ध-साधक भीड को चीरता हुआ आकर श्रीमाली जी के चरणो मे गिर पडा, उसकी आखो से

आसू की अजस्र धारा वह रही थी और सारा शरीर थरथरा रहा था। श्रीमाली जी ने उसे उठाकर अपने सीने से लगाया, उनकी आखो मे भी आसू छलछला आये थे।

यह सारा दृश्य अपने आप मे अद्‌भुत था, इस प्रकार के दृश्य को शब्दो मे कैद किया ही नही जा सकता। वास्तव मे ही एक ऐसा वातावरण वन गया था कि कोई आख विना भीगे न रही थी। कोई भी चेहरा विना गमगीन हुए नही रहा था, सभी अश्रुपूरित थे, सभी सिसक रहे थे, सभी के चेहरे उदास थे और सभी ऐसा अनुभव कर रहे थे जैसे वे अपने प्राणो को देह से जाते हुए देख रहे हो।

यह मेरा सौभाग्य था कि श्रीमाली जी ने मुझे साथ चलने की स्वीकृति दे दी थी, हम उन विलखते हुए साधको से आगे वढे परन्तु जितना ही हम आगे वढते उतने ही साधक आ-आकर वापिस घेर लेते। आगे वढना दुष्कर-सा हो गया था।

मैं सोच रहा था साधको के वारे मे तो यह प्रचलित है कि वे वडे निर्मम होते है, असामाजिक होते हैं, उनके हृदय पर कोई प्रभाव ही नही होता, उनका हृदय मास-पिण्ड न रह कर पत्थर हो जाता है, परन्तु आज मेरी धारणा खण्डित हो रही थी। मैं उन साधको को सिसकते हुए, विलखते हुए, रोते हुए और सिसकारिया भरते हुए देख रहा था।

राक्षस की तरह विशालकाय त्रिजटा अघोरी वच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था, भूर्भुआ वावा की आखो मे आसू छलछला रहे थे, देवहुर वावा आसुओ के वेग को रोक नही पा रहे थे और पूरा वातावरण ऐसा हो गया था कि सभी श्रीमाली जी से विछुडते हुए अपने आपको निरुपाय अनुभव कर रहे थे।

मैंने पहली वार श्रीमाली जी की आखो मे आसू देखे। वे स्वय गमगीन थे, परन्तु फिर भी उनकी आखो मे सान्त्वना थी, स्नेह था, अपनत्व और प्रेम था, और इसी भीगे हुए वातावरण से श्रीमाली जी आगे वढ गए।

श्रीमाली जी के साथ दो शिष्य और थे जो सम्मेलन से ही उनके साथ हो गए थे। ये दोनो ही शिष्य उच्च कोटि की साधना से सम्पन्न थे और किसी समय श्रीमाली जी के चरणो मे वैठकर उन्होंने उच्च मात्रिक और तात्रिक साधनाए सम्पन्न की थी, उनके साथ तीसरा मैं था जिन्हे कुछ दिन साथ रहने की स्वीकृति मिली थी। इस यात्रा मे मैंने अनुभव किया कि महापुरुष के साथ यात्रा करने मे यात्रा का अर्थ ही वदल जाता है, जो यात्रा हमे नीरस और निष्फल लगती है वही यात्रा किसी साधक के सानिध्य मे प्राणवन्त और जीवन्त हो जाती है, यह यात्रा मेरे लिए अन्यतम थी, अद्‌भुत थी।

मार्ग मे कई स्थानो पर श्रीमाली जी रुके थे और सभवत ग्यारहवें रोज वे जोधपुर पहुचे थे।

जोधपुर मे उनके साथ मुझे लगभग तीन महीने रहने का सौभाग्य मिला। जोधपुर आकर मैंने उनके एक अलग रूप मे ही दर्शन किए। यहा आकर वे पुन एक सामान्य गृहस्थ व्यक्ति वन गए थे और ऐसा प्रतीत ही नही हो रहा था कि यह

वही व्यक्तित्व है जिसने विश्व के सर्वश्रेष्ठ साधको के सम्मेलन का सभापतित्व किया था ।

जिन्होने श्रीमाली जी का वह रूप देखा है, उन्हे इस रूप मे श्रीमालीजी को देख कर विश्वास ही नही होगा कि यह व्यक्ति साधना के क्षेत्र मे सर्वोपरि है, विशिष्ट सिद्धियो का स्वामी है । जिसने श्रीमाली जी के गृहस्थ रूप को देखा है, वह उस रूप की कल्पना ही नही कर सकता, इन दोनो ही रूमो मे जमीन आसमान का अन्तर है और दोनो ही रूप अपने आप मे सर्वथा अलग हैं ।

गृहस्थ रूप मे श्रीमाली जी पूर्णत सामान्य गृहस्थ के रूप मे मुझे दिखाई दिए जो प्रसन्नता की वात सुनकर खिलखिला पडते हैं, किसी के कष्ट और दु ख की बात सुनकर उदास हो जाते हैं, वे सामान्य आगन्तुक को भी उतना ही महत्त्व देते हैं जितना एक विशिष्टि व्यक्ति को दिया जाता है । उनके साथ विना किसी औपचारिकता के वैठ जाते हैं, उनकी बात को ध्यानपूर्वक सुनते हैं, उनकी समस्याओ का समाधान करते है और वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं जैसे पूर्णत सामान्य गृहस्थ व्यक्ति हो ।

मैं उनके इस रूप को देख कर आश्चर्यचकित रह गया था और आज भी आश्चर्यचकित हू कि अगर इतनी सिद्धियो की अपेक्षा एक आध सिद्धि भी किसी के पास होती तो वह जमीन पर पाव तक नही रखता, घमण्ड से वह साधारण जन की ओर देखता तक नही और अपने अह मे चौबीसो घण्टे डूवा रहता, जवकि इसके सर्वथा विपरीत श्रीमाली जी अत्यन्त साधारण रूप मे सवके सामने प्रस्तुत होते है, उनसे वातचीत करते है और जहा तक हो सकता है, अपने विचारो से उन्हे सन्तुष्ट करते हैं। मेरा ऐसा अनुभव है कि उनके द्वार से कभी कोई खाली नही लौटता, जो भी व्यक्ति जिस भावना से आता है, उसी भावना से सन्तुष्ट होकर लौटता है ।

मैंने श्रीमाली जी के कई रूप देखे हैं, उनका ज्योतिष रूप अलग है, साठ से ज्यादा ग्रन्थो के वे रचयिता हैं और पूरे भारत मे ज्योतिष को लोकप्रिय और जन-साधारण के लिए उपलब्ध वनाने मे उनका सार्वधिक योगदान रहा है । आज भी वे निरन्तर ज्योतिप से सवधित शोध करते रहते है और अपने ज्ञान को पुस्तको के माध्यम से समाज को भेंट करते रहते हैं ।

मुझे लगभग तीन महीने श्रीमाली जी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मैं तो अपना पूरा जीवन उनके चरणो मे विता देना चाहता था । यह मेरे जीवन का सौभाग्य ही होता कि मेरा आगे का पूरा जीवन उनके चरणो मे वीतता परन्तु कुछ विशेष कारणो से और उनकी आज्ञा से मुझे नए कार्य क्षेत्र को सम्भालना पडा । पर आज भी मैं मानसिक रूप से श्रीमाली जी से अपने आपको जुडा हुआ अनुभव करता हू ।

मैं उन तीन महीनो का जव स्मरण करता हू तो कई घटनाए मेरी आखो के सामने घूम जाती है, एक प्रकार से देखा जाए तो उनके साथ रह कर जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

मैंने उन्हें निरन्तर श्रम करते हुए देखा है । यदि इस आयु का कोई दूसरा

व्यक्ति होता तो निश्चय ही वह थक कर चूर हो जाता। परन्तु मैंने उन्हे बीस-बीस घण्टे निरन्तर श्रम करते हुए देखा है, और जब तक मैं वहा रहा हू उनको इसी रूप मे काम करते देखा है।

प्रात चार बजे ही उनका शैया-त्याग हो जाता है और लगभग पाच बजे वे पूजा कक्ष मे चले जाते हैं, सात बजे से ग्यारह बजे तक वे आगन्तुको से घिरे रहते हैं, इन आगन्तुको मे साधारण जन से लेकर उच्च कोटि के नेता और अभिनेता होते है, वे न तो किसी से प्रभावित होते हैं और न किसी के प्रति उनके मन मे दुर्भावना होती है, सभी को समान रूप से आतिथ्य देना और उनकी समस्याओ का समाधान करना उन्होने अपना कर्त्तव्य समझ रखा है, जहा तक मैं समझता हू उनके द्वार से आज तक कोई खाली हाथ नही लौटा। लोग अपनी समस्याओ से ग्रस्त होकर उनके पास जाते हैं और प्रसन्नता के साथ हँसते हुए वापिस लौटते हैं, उस समय उनके चेहरे पर सन्तोष की पूर्ण छाप होती है, क्योकि उनको जो समाधान मिलता है वह अपने आप मे पूर्ण होता है।

ग्यारह बजे से दो बजे तक वे भारतीय ज्योतिष अध्ययन अनुसधान केन्द्र का कार्य देखते हैं, इस सबध मे निर्देश देते है तथा व्यक्तिगत पत्रो के जवाब भिजवाते है, इसके बाद उनकी मध्यान्ह-सध्या होती है फिर भोजन होता है, इस समय उनके घर मे जो मेहमान होते हैं उनसे बातचीत होती है और उनकी समस्या का समाधान इसी समय होता है।

इसके बाद वे मध्यान्ह साधना के लिए भूगर्भ गृह मे चले जाते हैं, शाम को पाच बजे से आठ बजे तक पुन आगन्तुको से भेंट करते हैं और उनकी इच्छाओ की पूर्ति इसी समय होती है, सध्या मे अधिकतर बाहर से आने वाले उनके शिष्य, सन्यासी साधु और साधक होते हैं, जो उनसे प्रेरणा ग्रहण करने आते हैं या उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यह पूरा समय उनका प्रेरणा रूप ही रहता है, उनके द्वार प्रत्येक साधक, साधु और सन्यासी के लिए खुले हैं, बिना हिचकिचाहट के साधक अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखते हैं और बिना हिचकिचाहट के उनको समाधान मिलता है, इस समय उनका गुरु का रूप न होकर एक मित्र का सा रूप बन जाता है।

आठ बजे से ग्यारह बजे तक वे दिन भर की डाक देखते हैं जो कि उनकी व्यक्तिगत डाक होती है, यो तो केन्द्र मे नित्य सैकडो पत्र आते हैं परन्तु नीति सबधी पत्र या उनके व्यक्तिगत पत्र इसी समय वे पढते हैं और सचिव को निर्देश देते रहते हैं।

साढे ग्यारह बजे के लगभग पुन भोजन होता है और इस समय घर के सारे सदस्य और आगन्तुक मेहमान एक स्थान पर बैठ कर भोजन करते हैं, इस समय किसी प्रकार का भेदभाव नही रहता है, वास्तव मे ही इस समय का वातावरण और माहौल एक अलग-सा हो जाता है, क्योकि इस समय घर के सदस्य होते हैं और भोजन मे केवल वे आगन्तुक मेहमान होते हैं जो कि उनके परिवार से सबधित होते है या उनके [illegible] शिष्य या कोई [illegible] आदि होते हैं, इस समय का वर्णन अपने आपमे

अन्यतम है, यह सौभाग्य वहुत ही कम लोगो को प्राप्त होता है और जिसने भी इस वातावरण मे इनके साथ भोजन किया होगा वह कभी भी उन क्षणो को भुला नही पायेगा ।

भोजन के वाद वे सीधे साधना कक्ष मे चले जाते हैं और अपनी साधना मे रत हो जाते हैं, सुवह चार वजे उनके मुह से निसृत वेद ध्वनि पुन सुनाई देती है जव वे उठ जाते हैं, इस अवधि मे अर्थात् साढे ग्यारह से चार वजे तक उन्हे साधना कक्ष मे ही देखा जा सकता है, पना नही वे कव सोते हैं, कव नीद लेते हैं, कव वापस उठ जाते हैं इसके वारे मे कुछ भी नही कहा जा सकता, वास्तव मे ही योगियो की माया योगी ही जान सकते हैं ।

परन्तु इतने श्रेष्ठ योगी होते हुए भी वे घर मे अत्यन्त सामान्य गृहस्थ दिखाई देते हैं, धोती और कुरता उनका परिधान है, वे हर क्षण व्यस्त रहते हैं दिन भर सैंकडो लोगो से मिलना, उनका आतिथ्य सत्कार करना, उनका मार्गदर्शन करना, ज्योतिष से सवधित कार्य करना, अपनी साधना मे और पूजा मे रत रहना, तथा शिष्यो को वरावर मार्गदर्शन देते रहना आदि कार्यों के साथ वे अपने गृहस्थ स्वरूप को भी वरावर वनाए रखते हैं । उनको गृहस्थ रूप मे देखकर विश्वास ही नही किया जा सकता कि यह व्यक्ति तत्र और मत्र के क्षेत्र मे अद्वितीय है इस व्यक्तित्व के पास जो सिद्धिया हैं वे अन्यतम हैं या यह भारत के श्रेष्ठतम मान्त्रिको और तान्त्रिको मे से एक है ।

उनकी वाणी मे पूर्णत नम्रता रहती है । मैंने तीन महीने की अवधि मे एक वार भी उन्हे उदास या चिन्तित नही देखा, हर समय उनका चेहरा प्रफुल्लित रहता है और सामने वाले व्यक्ति को भी अपने आनन्द मे भागीदार वनाए रखता है, सामने वाला व्यक्ति अपनी परेशानियो को वढा-चढा कर कहता है पर श्रीमाली जी [illegible] नही, अपितु धैर्यपूर्वक उसकी वात सुनते है, सुनने के वाद वे अपनी सामर्थ्य [illegible] कुछ भी सहायता कर सकते है करते है, साथ ही उसे मार्गदर्शन भी देते हैं [illegible] उसकी समस्या का निराकरण हो सके और वह अपने जीवन मे [illegible] सके ।

इसके अतिरिक्त मने उन्हे इन तीन महीनो मे एक क्षण [illegible] करते हुए नही देखा । हर समय वे अपने रचनात्मक कार्यों [illegible] जीवन के प्रत्येक क्षण का महत्त्व है और वे उस महत्त्व को [illegible]

मैंने सुना था कि उनके गुरु स्वामी सच्चिदानन्द [illegible] जीवन मे भेजा तो उन्होंने आग्रह किया कि मैं पुन गृहस्थ [illegible] नही हू, मेरा विवाह हो चुका है पर मैं अपनी [illegible] और वह भी मेरी ही तरह साधना पथ अपना [illegible] कोई लाभ नही है, मैं आपके ही चरणो में [illegible] चाहता हू जो कि अगम्य और अप्रत्यक्ष है ।

परन्तु सच्चिदानन्द जी के सामने [illegible]

कि इस साधना को और ज्योतिष को पुन विश्व मे स्थापित करना है और भारत की खोई हुई इस सम्पदा से पुन भारतीय जनजीवन को अवगत कराना है। अत इसी कार्य की पूर्णता के लिए उनका आग्रह वापिस उन्हे गृहस्थ जीवन मे भेजना था।

परन्तु उन्होने एक अवधि दे दी थी कि इस अवधि तक ही तुम्हे गृहस्थ जीवन मे रहना है और तब तक जो कार्य तुम्हे सौंपा गया है, उसे पूर्णता प्रदान करना है, इसके बाद तुम्हे पुन गृहस्थ जीवन छोडकर सन्यास जीवन धारण कर लेना है और शेष जीवन 'सिद्धाश्रम' मे ही व्यतीत करना है।

सिद्धाश्रम एक अगम्य और दुर्गम स्थान है जो कि हिमालय मे कही अत्यन्त ऊचे स्थान पर स्थित है जहा पर सामान्य मानव का पहुचना सभव नही है, सिद्धाश्रम के बारे मे कई भारतीय योगियो ने विवरण दिया है और अग्रेज लेखको ने भी इस बारे मे काफी कुछ लिखा है, तिब्बत के लामा ग्रन्थो मे भी इस बारे मे काफी कुछ पढने को मिलता है।

कहा जाता है कि साधना की उच्चतम स्थिति आने के बाद ही वह साधक सिद्धाश्रम मे जाने के लिये योग्य माना जाता है जिसका सहस्रार कमल खुल चुका होता है और जो तन्त्र या मन्त्र अथवा अध्यात्म के क्षेत्र मे सर्वोच्च स्थिति को पहुच चुका होता है, इसके साथ ही कुण्डलिनी जागरण का वह पूर्ण अध्येता होता है, इसके बाद उसके सबध मे ज्ञात किया जाता है और फिर उसे सिद्धाश्रम मे प्रवेश की अनुमति मिलती है। बहुत ही कम साधक ऐसे होते हैं जो सिद्धाश्रम मे जाने के बाद पुन जनजीवन मे आ पाते हैं।

सिद्धाश्रम मे अत्यन्त उच्चकोटि के योगी और साधक अपनी साधना मे रत हैं और यह सुना गया है कि कुछ योगी तो २००० वर्षों से निरन्तर साधना मे रत हैं, कुछ योगियो की उम्र ५००० वर्ष से भी ज्यादा बताई जाती है।

उन योगियो के लिये भूत, भविष्य कुछ भी अगम्य नही, वे आकाश गमन प्रक्रिया के सिद्धहस्त साधक होते है और मन के वेग से वे किसी भी स्थान पर आ-जा सकते है, उच्च कोटि की साधना उनके जीवन का अभिष्ट होती है, परन्तु इस सिद्धाश्रम मे प्रवेश की कसौटी अत्यन्त कठोर और कठिन होती है। वह साधक निश्चय ही ससार के सौभाग्यशाली साधको मे गिना जाता है, जिनको सिद्धाश्रम मे प्रवेश की अनुमति मिल जाती है।

ऐसे तो विरले ही साधक होते है जिन्हे सिद्धाश्रम मे जाकर पुन जनजीवन मे आने की अनुमति मिलती है। त्रिजटा अघोरी और भूर्भुआ बाबा से मुझे ज्ञात हुआ था कि श्रीमाली कई बार वहा जा चुके है और अब भी रात्रिकालीन साधना मे वे वहा जाते रहते हैं।

मैंने जब यह जिज्ञासा श्रीमाली जी के सामने रखी तो वे हसकर टाल गये। उनकी यह प्रवृत्ति है कि जिस प्रश्न का उत्तर नही देना चाहते उस प्रश्न को सुनकर सहज मे ही टाल देते हैं और बातचीत को किसी और मोड पर बदल देते है, पर

जिन्होंने श्रीमाली जी के प्रात कालीन दर्शन किये हो तो वह उस समय उनके चेहरे की दिव्यता देखकर प्रभावित हो जाते हैं और मन यह मानने के लिये वाध्य होता है कि निश्चय ही श्रीमाली जी रात्रि साधना मे किसी ऐसे स्थान पर सशरीर रूप से अवश्य जाते हैं जो कि दिव्य होता है और उसी दिव्यता की छाप उनके प्रात कालीन क्षणो मे देखी जा सकती है।

एक बार मैंने उनसे यह प्रश्न किया था कि आप अद्वितीय साधनाओ के सफल साधक हैं फिर भी आप अत्यन्त सामान्य तरीके से रहते है, साधारण गृहस्थी के रूप मे आचरण और व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। आपके इस रूप को देखकर आभास ही नही होता कि आप इतनी सिद्धियो के स्वामी हैं, इससे कई वार साधारण आगन्तुक भ्रम मे पड जाता है वह पुस्तको के माध्यम मे आपके बारे मे जब पढता है तो उसके मानस मे एक अलग ही विम्ब उभरता है, वह विम्व एक असाधारण व्यक्ति का होता है—लम्बा चौडा शरीर, गौर वर्ण, लम्बी सफेद दाढी, उम्र लगभग ८०-९० के आस-पास, और एक अद्वितीय व्यक्तित्व, इस विम्व को लेकर साधारण मानव आपसे मिलने के लिये इतनी दूर की यात्रा करके आता है तो वह मन-ही-मन आशकित रहता है कि श्रीमालीजी के दर्शन होंगे भी या नही ? उनसे मिलना सभव हो सकेगा या नही ? वे वातचीत करेंगे भी या नही ? या कई दिनो तक प्रतीक्षा करनी पडेगी तव जाकर उनके दर्शन हो सकेंगे ? आदि कई कल्पनाए उनके मानस मे इस प्रकार की रहती हैं।

परन्तु जब वह आपके द्वार पर आता है, तो उसे भीड-भाड दिखाई नही देती, आडम्बर और छल अनुभव नही होता, कोई नौकर द्वार नहीं खोलता, दरवाजे पर कोई पहरेदार नही मिलता और सीधे आपसे ही भेंट हो जाती है, द्वार आप स्वय खोलते हैं और आपका व्यक्तित्व एक सामान्य गृहस्थ व्यक्ति के समान दिखाई देता है, तव वह आगन्तुक हतप्रभ हो जाता है, उसका विम्ब खण्ड-खण्ड हो जाता है, वह सहज ही विश्वास नही कर पाता कि जो कल्पना श्रीमाली जी के बारे मे उसके मानस मे थी उसके स्थान पर जो साधारण व्यक्ति उसके सामने खडा है, वही आज के युग का सर्व-श्रेष्ठ साधक और ज्योतिर्विद श्रीमाली है।

प्रश्न सुनकर श्रीमाली जी जोरो से हस पडे, उन्होने कहा तो क्या मैं आडम्बर से रहना प्रारभ कर दू ? अपने चारो ओर एक ऐसी दीवार खडी कर दू जो कि मेरे और जनमानस के वीच मे हो। मैं ऐसा नही कर सकता, लोगो का विम्ब यदि खण्डित होता है तो होने दिया जाय, मेरे स्वरूप या मेरी आकृति से व्यक्ति प्रभावित होता है या नही इसकी मुझे चिन्ता नही है, जो व्यक्ति मेरे कपडो और मेरे शरीर को देखने के लिये आयेगा उसको अवश्य ही निराशा मिल सकती है परन्तु जो मूल रूप से श्रीमाली जी से मिलने के लिये आयेगा वह मेरे कपडो की तरफ नही झाकेगा अपितु वह मेरे मानस से साक्षात्कार करेगा। तव अवश्य ही उसको वह सव कुछ प्राप्त हो मकेगा जिसके लिये वह आया है।

एक अन्य चर्चा के दौरान उन्होंने वताया कि मैं चमत्कार मे विश्वास नही

करता। चमत्कार वे बताते है जो अन्दर से खोखले होते है जो समाज मे अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं जो इस प्रकार का चमत्कार दिखाकर धनवान बनना चाहते हैं या अपना सम्मान चाहते हैं क्योंकि उनके पास चमत्कार के अलावा ठोस रूप मे और कुछ नही होता, जो घडा भरा हुआ होता है, वह छलकता नही, वही घडा छलकता है, जो पूरी तरह से भरा हुआ नही होता।

मुझे न तो सम्मान की भूख है, और न मैं अपना सम्मान चाहता हू, मैं मानव हू और केवल मानव बना रहना चाहता हू। न मुझे धन सम्पदा की लालसा है, और न मै धनवान कहलाना चाहता हू, इसलिये न तो मैं चमत्कार दिखाता हू और न चमत्कार दिखाना पसन्द करता हू।

यह अवश्य है कि लोग जब मेरे सामने आते हैं तो उनके दिमाग मे कल्पना सृजित कुछ और बिम्ब रहता होगा और उसकी हार्दिक इच्छा यही रहती होगी कि श्रीमाली जी के सामने जाते ही कुछ अद्‌भुत अलौकिक चमत्कार देखने को मिलेगा, परन्तु बातचीत के दौरान जब उन्हे ऐसा कुछ भी चमत्कार देखने को नही मिलता तो वे अवश्य ही निराश हो जाते होंगे। इतना होने पर भी मै अपने असूलो से हटना नही चाहता। मेरे जीवन का यह निश्चित ध्येय है कि मुझे न तो चमत्कार दिखाना है और न मैं इस प्रकार के कार्य को पसन्द करता हू फिर भले ही सामने वाला व्यक्ति मुझमे आस्था रखे या न रखे, मुझ पर विश्वास करे या न करे, मैं इस बात की कतई चिन्ता नही करता।

उनका जीवन दर्शन अपने आप मे विशिष्ट है, और मैं समझता हू कि इसी विशिष्टता के कारण वे आज उस स्तर तक पहुँच सके हैं जो कि अपने आप मे अन्यतम है, यदि वे प्रारभ से ही चमत्कार दिखाने के फेर मे पड जाते तो उनका अधिकाश समय इसी प्रकार के कार्यों मे व्यतीत हो जाता और जो कुछ वे ठोस रूप मे कार्य कर सके है वे नही कर पाते, आज उन्होने साधना के क्षेत्र मे जो उपलब्धिया प्राप्त की है, वे तभी सभव हो सकी है जब उन्होने सस्ती लोकप्रियता नही चाही और अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को ठोस कार्य मे परिणत करने मे विश्वास रखा।

यह अवश्य है कि यदि वे चमत्कार दिखाते तो आज बहुत अधिक सम्पन्न और धनी हो सकते थे, उनके पीछे हजारो शिष्यो की फौज हो सकती थी और अखबारो के माध्यम से विज्ञापित कर अपने आपको दूसरा भगवान सिद्ध कर सकते थे, परन्तु यह उनके जीवन की मान्यता नही है। वे इस प्रकार की धारणा के सर्वथा विपरीत है, उनका जीवन दर्शन मानव बने रहना है और मानवता को ही उन्होंने अपने जीवन मे सबसे अधिक स्थान दिया है।

सामान्यत, सहजता, सुगमता, सरलता आदि मानवता के गुण हैं और इन गुणो से श्रीमाली जी पूर्ण है, उनके द्वार पर कोई भी व्यक्ति किसी भी समय आ सकता है और अपनी जिज्ञासा को शान्त कर सकता है, उनके मन मे न तो किसी के प्रति प्रशसा का भाव है, और न नफरत, वे विरोधी को भी उतने ही प्रेम के साथ अपने

साथ बिठाकर बात करते हैं, जितनी अपने परम प्रिय शिष्य से करते हैं, यह उनकी महानता है, और मैं जितना ही गहराई मे जाता हू उतना ही उनके प्रति मेरा सिर नमन हो जाता है ।

उनके सानिध्य मे कई शिष्य साधना रत हैं, सुना है कि जोधपुर के पास किसी पहाडी मे कई गुफाए बनी हुई हैं जो कि श्रीमाली जी की व्यक्तिगत हैं और उन गुफाओ मे साधक, साधना रत है, उन साधको मे कुछ साधक तो अत्यन्त उच्च साधना से भी सम्पन्न हो सके हैं और आज उनका नाम श्रेष्ठ साधको मे गिना जाने लगा है, मैंने एक दो बार उन गुफाओ को खोजने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु मैं उसमे सफल नही हो सका, साथ ही मैं यह काम चोरी से कर रहा था क्योकि श्रीमाली जी से यदि मैं इस प्रकार की अनुमति लेता भी, तो वे सभवत अनुमति नही देते, उन गुफाओ मे वही साधक प्रवेश करने का अधिकारी होता है जो श्रीमाली जी का शिष्य होता है और शिष्यता के मापदण्ड पर खरा उतरता है ।

जहा तक शिष्यता का प्रश्न है, श्रीमाली जी इस मामले मे अत्यन्त कठोर हैं, वे तो स्पष्ट कहते है कि मुझे शिष्यो की फौज खडी नही करनी है, मैं चुनकर शिष्य बनाता हू और शिष्य बनाने से पूर्व उनकी कडी परीक्षा लेता हू । हल्का-फुल्का व्यक्ति सहज मे ही उड जाता है, आधे मन का व्यक्ति महीने दो महीने मे भाग खडा होता है, कुछ ही ऐसे सौभाग्यशाली होते हैं जो उनकी कसौटी पर खरे उतरते है, और जो शिष्य उनकी कसौटी पर खरा उतर जाता है वह अपने आप मे अद्वितीय हो जाता है क्योकि उसके आगे के सारे रास्ते खुल जाते हैं और वह अपने पथ पर तीव्रता से बढने मे सक्षम हो जाता है ।

मैंने इन तीन महीनो मे देखा कि बाहर से जितने व्यक्ति मिलने के लिए आते हैं उनमे से कई व्यक्ति या नवयुवक उनके शिष्य बनने के लिए आते हैं, उनके मन मे एक ही भाव होता है कि उसे श्रीमाली जी तुरन्त शिष्य बना लेंगे और कुछ ही दिनो मे वह सिद्धियो का स्वामी हो सकेगा । आते ही उनके मुह से यही भाव निकलता है कि मैं तो पिछले पाच या सात या दस वर्षों से मन-ही-मन आपका शिष्य रहा हू और एकलव्य की तरह आपको गुरु मानकर साधना के लिए प्रयत्न करता हू, परन्तु मुझे सफलता नही मिल पाई है इसीलिये आपके चरणो मे उपस्थित हुआ हू ।

श्रीमाली जी उसकी बात सुनकर हस पडते हैं और साधना के बारे मे कुछ ऐसा डरावना माहौल उसके सामने उपस्थित करते हैं कि वह अज्ञात भय से घबरा जाता है, साधना का जो भूत उसके सिर पर होता है, वह उतर जाता है और अपने घर के लिए प्रस्थान कर लेता है । इस प्रकार के नवयुवको को वे एक ही नजर मे परख लेते हैं कि यह युवक ज्यादा समय तक सघर्ष नही कर पायेगा, यह केवल दिवा-स्वप्न लेकर आया है, अत उसे समझा-बुझाकर वापस घर भेज देते हैं और उसे यही सलाह दी जाती है कि तुम दो या तीन वर्ष बाद वापस आना । यदि उस समय भी

तुम्हारे मन मे साधना की आग सुलगती हुई देखी तो मै अवश्य ही तुम्हे इस पथ पर वढा दूगा ।

कुछ ही नवयुवक या साधक जीवट वाले होते हैं जो हर प्रकार की परीक्षा और कठिनाई झेलने के लिए तैयार होते हैं। उनकी आखो मे एक विशेष प्रकार की चमक होती है, उनके हृदय मे एक कठोर और दृढ निश्चय होता है और वे किसी भी प्रकार की वाधाओ का सामना करने के लिए तैयार दिखाई देते हैं। ऐसे साधकों को देखते ही श्रीमाली जी पहचान लेते हैं कि यह हीरा वन सकता है अभी उस पर काफी गर्द जमी हुई है, यदि यह गर्द दूर की गई और पालिश की गई तो आगे चलकर यह अमूल्य हीरा वन सकता है ।

पर इतना होते ही उसको शिष्य नही वना लिया जाता, अपितु उसे घर के काम-काज के लिए रख लिया जाता है, यदि वह युवक होता है, तो उसे यह आज्ञा होती है कि वह अपने माता-पिता की स्वीकृति लेकर आवे ।

इसके वाद उसे आज्ञा होती है कि तुम यही पर कही ठहरने का प्रवन्ध करो और कुछ ऐसा भी प्रवन्ध करो जिससे कि तुम्हारे भोजन का निर्वाह हो सके, इसके वाद जो समय वचे वह समय मेरे साथ व्यतीत कर सकते हो, यदि तुम विना किसी से याचना किए इस शहर मे रहने और अपने भोजन की व्यवस्था कर लोगे तो आगे रास्ता तुम्हे मिल जाएगा ।

वहुत ही कम ऐसे सौभाग्यशाली होते हैं जिनको श्रीमाली जी के घर मे रहने का सौभाग्य मिलता है, पर उसे पहले ही दिन काफी वढा-चढा कर परेशानियो और कष्टो का जिक्र किया जाता है कि यदि तुझे मेरे घर मे रहना है तो घर का वहुत सा काम करना होगा और कभी-कभी तो वीस-वीस घण्टे भी काम करना पडेगा, इस प्रकार के कामो मे घर का फूस निकालने से लेकर वाथरूम साफ करने तक का काम भी हो सकता है, इस प्रकार के कामो मे थकावट या निराशा मैं नही देखना चाहूगा। सालभर तक न तो मैं तुम्हे किसी प्रकार की साधना सिखाऊगा और न किसी प्रकार की धनराशि काम के वदले मे दे सकूगा ।

पर, जो जीवट के धनी होते हैं, वे इस प्रकार की शर्तो से घवराते नही हैं अपितु सहर्ष इस प्रकार की चुनौती स्वीकार कर लेते हैं, जान-वूझकर पण्डितजी उनकी परीक्षा लेने के लिए प्रारम्भ मे जरूरत से ज्यादा काम सौप देते है या जान-वूझकर वातचीत नही करते या जान-वूझकर जरूरत से ज्यादा उसे फटकार देते हैं जिससे कि वह यदि कमजोर होता है, तो भाग खडा होता है। परन्तु मैंने देखा कि जो एक वार उनके घर मे प्रवेश पा लेता है, वह न घवराता है, न परेशान होता है और न किसी प्रकार की तकलीफ उसके सामने आती है ।

क्योकि उस घर मे मात्र पण्डित जी ही नही हैं, अपितु एक वात्सल्यमयी मा भी है, जो कि पण्डितजी की पत्नी हैं, उनका स्वरूप पूर्ण गृहस्थ रूप है। सुवह चार बजे से रात बारह बजे तक वे निरन्तर घर के कार्यों मे लगी रहती हैं, घर मे मेह-

मानों सा ताता लगा ही रहता है, उन सबका स्वागत-सत्कार करना, उनके लिए भोजन-पेय आदि की व्यवस्था करना आदि सारा कार्य उनके जिम्मे रहता है और किसी को भी आज तक किसी प्रकार की शिकायत करने का मौका नहीं मिल पाया है।

उनका स्नेह-अमृत-वर्षण बराबर शिष्यों पर बना रहता है, उनकी छत्रच्छाया में न तो किसी प्रकार का अभाव महसूस होता है और न किसी प्रकार की कठिनाई आती है, वे स्वयं अधिक काम होने पर शिष्य से काम न लेकर खुद कर लेती है, समय पर उनके भोजन की व्यवस्था करती है और ठीक उसी प्रकार से भोजन कराती है जिस प्रकार से एक मा अपने अबोध बच्चे को कराती है, जबर्दस्ती से ज्यादा भोजन कराना या उसे सौगन्ध दिलाकर ज्यादा ही खाने के लिए प्रेरित करना उनका स्वभाव है। उनको यह आशंका बराबर बनी रहती है कि कहीं यह बच्चा सकोच के मारे भूखा न रह जाए या किसी प्रकार की इसको तकलीफ न हो जाय।

थोडी-सी भी लापरवाही श्रीमाली जी को सहन नहीं होती और यदि कभी लापरवाही बरतने पर किसी को डाट मिल जाती है तो तुरन्त दूसरे ही क्षण उसको मा का स्नेह मिल जाता है, वह उसको पुचकारती है और उसके लिए खुद श्रीमाली जी को उपालम्भ दे देती हैं, कि इस बालक पर इतना क्रुद्ध करना कहा तक उचित है।

उनके घर में जो शिष्य रहते हैं वे उस वात्सल्यमयी मा का स्नेह निरन्तर प्राप्त करते रहते हैं और उन्हें कुछ ऐसा अनुभव होता है जैसे वे स्वर्ग मे हो और जीवन के मधुरतम क्षण वही पर उनको प्राप्त होते हैं।

मैंने इस ममतामयी मा का स्नेह देखा है, उनके प्रेम मे मैं आप्लावित रहा हू और आज जब मैं उनसे काफी दूर हू फिर भी जब उस मा का स्मरण होता है तो मेरी आखो मे आसू छलछला आते हैं। काश ! मुझे एक बार फिर उनके घर में रहने का अवसर मिले और मैं उस मा का स्नेह प्राप्त कर सकू। काश ! मैं उस मा की कोख मे पैदा हुआ होता।

श्रीमाली जी का एक गृहस्थ रूप भी है जिसे बहुत ही कम लोगो ने देखा होगा, वे अपने आप मे पूर्ण गृहस्थ हैं और शास्त्रो मे सद्गृहस्थ की जो व्याख्या है उस कसौटी पर वे खरे उतरते है। लोगो ने उनके योगी रूप या ज्योतिषी का रूप देखा होगा परन्तु जिस किसी ने भी उनके गृहस्थ रूप को देखा है वह आश्चर्यचकित रह जाता है क्योंकि इस रूप में वे उन सारी समस्याओ को और कठिनाइयो को ध्यान पूर्वक सुनते हैं जिस प्रकार से एक गृहस्थ अपनी पारिवारिक समस्याओ को सुनता है।

छोटे बच्चों के साथ बात करते समय ऐसा लगता ही नही कि यह व्यक्ति प्रौढ है या इसने जिन्दगी के बहुत अधिक उतार चढाव देखे है। उस समय उनका स्वभाव बिल्कुल छोटे शिशु की तरह हो जाता है, उनके साथ वे खेलते हैं और खेल-खेल में स्वयं हार जाते हैं। ऐसा वातावरण बन जाता है कि बच्चे उनको एक क्षण के लिए भी छोडना पसन्द नहीं करते, पर पूरे चौबीस घण्टों मे ऐसा समय आधा घटा

ही होता होगा जव वे उन वालको के वीच खो जाते है, मैंने उन्हे इस रूप मे देखा है और मै सोचता हू कि यह कितना सरल और सात्विक हृदय है जो वच्चो के वीच ठीक उसी प्रकार से वच्चा वन जाता है जैसे कि कोई अन्य वालक हो। उस समय उनके पास पौत्र आकर अपनी मा की शिकायत करता हे, वडे भाई की शिकायत की जाती हे और वे उन सारी शिकायतो को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और उसी समय सम्वन्धित व्यक्ति को वुलाकर फटकार भी दे दी जाती है और ऐसा होते समय उस वालक का सीना फूल जाता है कि मैंने वावा से फटकार दिला दी है, वालको की सुप्रीम अदालत यही हे और यहा पर वे पूर्णत सन्तुष्ट होते है, दिनभर का जो कुछ गुबार होता है वह इस समय निकलता हे और वे हमेशा वालको का ही पक्ष लेते हैं।

ज्योतिष के क्षेत्र मे इस अकेले व्यक्तित्व ने इतना अधिक कार्य किया है जितना एक पूरी सस्था भी नही कर पाती। जिस समय इन्होने निश्चय किया था उस समय भारत मे ज्योतिष मात्र पण्डितो की धरोहर वन गई थी और वे जो कुछ भी उलटा-सीधा कह देते थे वही आख मूदकर मान लिया जाता था, परन्तु उन पण्डितो की ज्योतिष मे गहराई न होने के कारण फलादेश अप्रामाणिक होता था, फलस्वरूप लोगो की आस्था ज्योतिष से हटने लग गई थी, एक प्रकार से ज्योतिष जन-समाज से कट गई थी, ऐसी स्थिति मे श्रीमाली जी ने ज्योतिष को जन-साधारण मे सुलभ करने के लिए अल्पमोली पुस्तकें लिखी और समाज मे वितरित की, कम मूल्य की होने के कारण आम आदमी इस प्रकार की पुस्तको मे रुचि ले सका, पुस्तको की भाषा इतनी सरल है कि व ज्योतिष मे कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकें, इस वजह से देश मे पुन ज्योतिष की धारणा और इसके प्रनि चेतना वनी और आज भारत मे जिस प्रकार से ज्योतिष पुन लोकप्रिय हो रही है, उसका वहुत वडा श्रेय इस व्यक्तित्व को जाता है।

छोटी-छोटी पुस्तको के अलावा इन्होंने ग्रन्थो की भी रचना की है और उसमे ज्योतिष के मूल सिद्धान्तो को स्पष्ट किया है उन खोई हुई कडियो को पुन इन पुस्तको के माध्यम से पडितो को सुलभ किया है जिससे कि ज्योतिष अपने आप मे पूर्णत प्रामाणिक वन सके, आज पूरे भारत मे ज्योतिष को पुन वही स्थान प्राप्त हो सका हे जो कि प्राचीन समय मे था।

ज्योतिषियो और विद्वानो ने श्रीमाली जी को आधुनिक 'वराह मिहिर' की सज्ञा से विभूषित किया है, वास्तव मे ही आधुनिक ज्योतिष—को जिस प्रकार से इन्होंने लोकप्रिय वनाया है, और ज्योतिष के लुप्त रहस्यो को उजागर किया है, उस दृष्टि से यदि इन्हे 'वराह मिहिर' कहा जाता है तो वह उचित ही है।

पण्डितजी को मैंने कई रूपो मे देखा है और प्रत्येक रूप अपने आप मे वढ-चढकर है। ज्योतिष के क्षेत्र मे उन्होंने अद्वितीय कार्य किया है और जो कुछ ठोस कार्य हुआ है, उससे आने वाली पीढिया मार्गदर्शन प्राप्त कर सकेंगी, इसके अलावा ज्योतिष के गणित और फलित विषयो मे समन्वय स्थापित किया है, पचागो मे जो विविधता और त्रुटिया थी उन्हे सशोधित कर सही ग्रह पथ को स्पष्ट किया है, तान्त्रिक क्षेत्र मे

यह व्यक्तित्व अद्वितीय है, मत्र शास्त्र के क्षेत्र मे इन्होंने उसकी मूल ध्वनि को स्पष्ट किया है क्योंकि मत्र का मुख्य आधार उसकी ध्वनि और सबधित आरोह-अवरोह है, जब तक मत्र के इस मूल रहस्य को प्राप्त नही किया जाता तब तक मत्र का प्रभाव नही हो पाता। इन्होने मत्र की मूल आत्मा, उसका कीलन, उत्कीलन तथा उसकी मूल ध्वनि को स्पष्ट किया है, जिससे कि मत्र मूल रूप से पुन साधको को प्राप्त हो सके। मत्र के क्षेत्र मे जो कुछ योगदान श्रीमाली जी का रहा है, वह अपने आप मे अद्वितीय है और इसका मूल्याकन मत्र शास्त्री तथा तत्र मर्मज्ञ ही कर सकते है। आज भी मत्र अध्येता श्रीमालीजी को मत्र के सबध मे पूर्णता मानते है और उनकी राय मे श्रीमालीजी का कथन अन्तिम निर्णित होता है।

वाम मार्गी साधना अत्यन्त दुष्कर और कठिन होती है, क्योकि इसका अधिकाश भाग 'श्मशान-साधना' से प्रभावित होता है, इस साधना मे भी इन्होने सर्वोच्चता प्राप्त की है जो कि बहुत ही कम साधक प्राप्त कर सकते है। 'अघोर-सिद्धान्त' मे जो उन्होने नवीनता दी है वह अपने आप मे अन्यतम है क्योकि इसके माध्यम से यह साधना सहज और सुगम हो सकी है।

पण्डितजी का एक और रूप मैंने आयुर्वेद विज्ञान मे देखा है, बहुत ही कम लोगो को यह ज्ञात होगा कि आयुर्वेद के क्षेत्र मे भी इन्होने बहुत कुछ प्राप्त किया है जो कि अन्यतम है। किसी पुस्तक मे मैंने पढा था कि सीताराम स्वामी जो कि आयुर्वेद के क्षेत्र मे पूरे विश्व मे सम्मान के साथ स्मरण किये जाते है, उनसे इन्होने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था और कुछ विशेष बीमारियो की चिकित्सा मे तो ये सिद्धहस्त माने जाते है। दमा, क्षय, आदि रोग और उनकी चिकित्सा के बारे मे इन्हे अन्यतम ज्ञान है, कई साधुओ, सन्यासियो, नागाओ और अघोरियो के साथ रहने और उनके साथ काफी समय व्यतीत करने के कारण उनसे इस सबध मे जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हो सका वह अद्भुत और आश्चर्यचकित है, क्योकि कई जडी बूटिया ऐसी हैं जिनका प्रभाव तुरन्त और निश्चित होता है, इन जडी बूटियो का श्रीमाली जी को पूर्ण ज्ञान है, और इनके माध्यम से इन्होने कई दुष्कर रोगो का निदान किया है तथा उसमे उन्हे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है।

परन्तु इन्होंने अपने आयुर्वेद रूप को कभी भी ज्यादा प्रकट नही किया, जिन लोगो को ज्ञात है वे जानते है कि ऐसे कई रोगी निरन्तर आते रहते हैं जो सभी वैद्यो और डाक्टरो से थक जाते हैं। इस प्रकार के रोगियो को स्वस्थ करने मे इन्हे विशेष आनन्द प्राप्त होता है, इतना होने पर भी उनसे किसी भी प्रकार का व्यय नही लिया जाता है, अपितु कई बार तो अपने पास से व्यय करके भी उन्हे स्वस्थ होता देख आनन्द अनुभव करते है।

मैंने श्रीमाली जी के बारे मे जो कुछ लिखा है, वह किसी भावना के वशीभूत होकर नही लिखा है, अपितु जो कुछ मैंने देखा है, जो कुछ मैंने अनुभव किया है, उसे ही कागजो पर उतारा है, मैं मूलत पत्रकार हू और आलोचना मेरा प्रथम धर्म है,

थोडी-सी भी त्रुटि या कमजोरी को बढा-चढाकर उजागर करने का प्रवृत्ति पत्रकार मे सवसे पहले होती है, मैंने श्रीमाली जी के व्यक्तित्व को आलोचक की दृष्टि से देखा है उसमे न्यूनता और कमजोरी ढूढने का प्रयत्न किया है, परन्तु मैंने जो कुछ देखा है वह अपने आप मे पूर्ण रूप मे अनुभव हुआ है, उसमे कही पर भी छिद्र या न्यूनता दिखाई नही दी ।

इतना होने पर भी श्रीमाली जी मे आज के युग को देखते हुए कई कमिया है—वे भावुक प्रकृति के है और किसी के भी दुख को देख कर वे तुरन्त दयार्द्र हो जाते है और प्रत्येक प्रकार से उनकी सहायता करने के लिये तैयार हो जाते हैं, इस भावुकता के कारण कई लोग अपना झूठा दुख व्यक्त करके माग कर धन आदि ले जाते हैं और वापस उनसे प्राप्त होने का तो प्रश्न ही नही है । आज के इस स्वार्थमय युग मे उनकी इस प्रवृत्ति से कुछ कुटिल लोग लाभ उठा लेते हैं, झूठी सहानुभूति प्राप्त कर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं और उनको दुखमय देखकर श्रीमाली जी प्रत्येक प्रकार से प्रत्येक समय सहायता करने के लिये तैयार हो जाते हैं ।

माताजी ने एक दो बार सकेत भी किया कि इस प्रकार लोग झूठी बातें कह कर के या काल्पनिक दुख की कहानी सुनाकर आपसे लाभ उठा ले जाते हैं, यह तो आपके साथ एक प्रकार से धोखा ही है तो श्रीमाली जी सुनकर मुस्करा दिये और कहा, वह झूठ बोलता है तो मै सब कुछ समझ जाता हू परन्तु फिर भी मैं सोचता हू कि यह जो कुछ कर रहा है, इसका फल यह भविष्य मे भुगतेगा ही, मैं अपनी मानवता क्यो छोडू ? और इस प्रकार यदि वह मुझ से कुछ प्राप्त कर लेता है उसके मन को शान्ति मिलती है तो अच्छी बात है ।

श्रीमाली जी मे दूसरी कमी यह है कि वे सहज ही दूसरो पर विश्वास कर लेते है । इसके कारण कई बार उनके साथ विश्वासघात भी होता है, वे ठगे भी जाते है परन्तु ठगे जाने पर भी वे प्रसन्न होते है, जब उनको यह बताया जाता है कि उसने आपके साथ विश्वासघात किया है तो वह कहते हैं कि यह उसकी धारणा है वह जिस प्रकृति का होगा वैसा ही तो वह आचरण करेगा, पर उसकी वजह से मैं अपने आचरण को क्यो बदल दू ? एक बार मेरे द्वारा इस प्रकार का प्रश्न करने पर उन्होने एक लघु घटना सुनाई थी ।

एक साधु नदी मे स्नान कर रहा था, उसने देखा कि एक बिच्छू डूब रहा है । उस साधु ने उस बिच्छू को हाथ मे ले लिया जिससे कि वह डूबने से बच जाये, परन्तु बिच्छू ज्यो ही हथेली पर आया उसने डक मार दिया, जोरो से वेदना होते ही साधु के हाथ से बिच्छू छिटक कर पुन पानी मे गिर गया, उसे पुन डूबते देखकर साधु को फिर दया आ गई और उसे फिर अपनी हथेली मे ले लिया, बिच्छू ने दूसरी बार भी हथेली मे डक मार दिया, इस प्रकार पाच-छ बार साधु ने बिच्छू को डूबने से बचाने का प्रयत्न किया और हर बार बिच्छू डक मारता रहा ।

पास खडे उनके शिष्य ने कहा स्वामीजी ! इससे तो आपके शरीर मे जहर

फैल जायेगा, आप यह क्या कर रहे है ? साधु ने हसते हुए उत्तर दिया कि वह अपने धर्म का और मैं अपने धर्म का पालन कर रहा हू । उसका धर्म डक मारना है, और मेरा धर्म उसे डूबने से बचाना है, उसकी दुर्जनता से अपने धर्म को मैं क्यो छोड दू ।

घटना का तात्पर्य यह, कि सामने वाला विश्वासघात करता है, झूठ बोलता है या धोखा देने का प्रयास करता है, तो यह उसका धर्म होगा, पर उसकी वजह से अपना धर्म या मानवता क्यो छोड दू ?

श्रीमाली जी की तीसरी कमी उनकी उदारता है, उनके शरीर पर कीमती शाल होगी और यदि उन्होने किसी साधु को ठिठुरते हुए देख लिया तो वह शाल उसे ओढा देंगे और स्वय खाली हाथ घर लौट आयेंगे, इस प्रकार उनके द्वारा कई वार आवश्यक वस्तुए दे दी जाती है और ऐसा करके उन्हे प्रसन्नता ही अनुभव होती है ।

आज के छल-प्रपचमय युग मे इतना सरल और सात्विक होना भी अपने आप मे कठिन है और इतना सघर्ष होने के वावजूद भी इन्होंने अपने मानवीय मूल्यो को नही छोडा है, क्योकि दुखी आदमी का दुख वही पहचान सकता है जिसने अपने जीवन मे कष्ट उठाये हो ।

उनका एक कठोर रूप गुरु रूप है, मै समझता हू अन्य रूपो मे वे कितने ही उदार और नम्र हो, अपने शिष्यो के प्रति वे उतने ही निर्मम और कठोर भी है, थोडी-भी कमजोरी या असावधानी उन्हे सह्य नही होती । उनकी धारणा यह है कि सोना मूल्यवान तभी होता है जवकि उसे वार-वार आच मे जलाया जाता है, एक वार चर्चा के दौरान उन्होने बताया था कि ये शिष्य मेरे पुत्रवत् हैं एक प्रकार से ये मेरे हृदय के टुकडे है, इन पर कठोरता करने से मुझे अन्दर-ही-अन्दर जरूरत से ज्यादा दुख होता है और वुरा भला कहने पर हृदय मे वेदना भी, परन्तु मैं उस वेदना को दवा कर ऊपर से कठोर और निर्मम रहता हू जिससे कि वे जिस पथ पर खडे हुए हैं उस पथ पर आगे वढ सकें और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें ।

किसी और का शिष्य मात्र शिष्य कहलाएगा, परन्तु यदि कोई मेरा शिष्य होगा तो उसके पीछे मेरा पूरा व्यक्तित्व जुडा हुआ होगा, यदि उसमे न्यूनता होगी तो वह उसकी न होकर मेरी ही कहलायेगी, मै इस प्रकार का कलक या धब्बा अपने ऊपर नही लगने देना चाहता ।

पिता को उस समय प्रसन्नता होती है जव वह जीवन के क्षेत्र मे अपने पुत्र से पीछे रह जाता है या हार जाता है, यदि व्यापार मे पुत्र, पिता से भी वढ-चढ कर होता है तो यह अप्रत्यक्ष रूप से पिता को ही गौरव मिलता है, इसी प्रकार गुरु अपने शिष्य से हारने मे ज्यादा खुशी अनुभव करता है, यदि गुरू से ही शिष्य आगे वढ जाता है या उनसे ज्यादा सफलता अथवा लोकप्रियता अर्जित करता है तो यह अप्रत्यक्ष रूप से उस गुरु का ही सम्मान और गौरव होता है ।

इसीलिये मैं अपने शिष्यो के प्रति कठोर रहता हू जिससे कि वे अपने जीवन को सयमित रख सकें, नैतिक मूल्यो मे उनकी आस्था वनी रह सके और मानवता के

गुणो से वे परिपूर्ण हो सकें। ऐसा होने पर ही वे आने वाली पीढियो के लिए ज्योति-स्तम्भ का कार्य कर सकेंगे।

मैं अपूर्णता मे विश्वास नही करता, मैं यह भी नही चाहता कि मेरा शिष्य अपूर्ण हो, अपितु मैं उसमे पूर्णता चाहता हू और इसीलिये कम-से-कम समय मे उसको ज्यादा-से-ज्यादा ज्ञान और साधना देने मे तत्पर रहता हू, ऐमी स्थिति मे उसको ज्यादा परिश्रम करना ही पडता है। जो परिश्रम से घवरा जायगा वह मेरा शिष्य वनने के योग्य ही नही है।

कठोर होते हुए भी उनके हृदय मे स्नेह की गगा वहती रहती है और शिष्य इस गगा से आप्लावित रहते हैं, उन्हे गुरु की कठोरता मे भी आनन्द आता है, क्योकि वे यह समझते है कि हम सामान्य योगी या माधक के शिष्य नही है अपितु श्रीमाली जी के शिष्य है और ऐसी स्थिति मे जरूरत से ज्यादा श्रम करना स्वाभाविक है।

मैं उनके कई शिष्यो से मिला और मैंने पाया कि उनके मन मे श्रीमाली जी के प्रति अत्यधिक उच्च आदर की भावना है। जव भी श्रीमाली जी की चर्चा छिडती है, तो उनकी आखो मे प्रेम के आसू छलछला पडते है, उनके मन की साध यही होती है कि वे ज्यादा-से-ज्यादा-गुरु-चरणो मे रह सकें और उनसे ज्ञान प्राप्त कर सकें, मैंने यह देखा है कि न तो गुरु देने मे सकोच कर रहा है और न शिष्य प्राप्त करने मे न्यूनता अनुभव कर रहा है।

श्रीमाली जी का साधक रूप अपने आप मे विलक्षण है, उनके भूगर्भ गृह मे एक अलग ही साधना कक्ष है जिसमे अन्य किसी का भी प्रवेश पूर्णत वर्जित है, मुझे केवल दो मिनट के लिए श्रीमाली जी के साथ उस साधना कक्ष मे जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और मैंने एक विचित्र विद्युत-तरगें उस कक्ष मे अनुभव की थी, उनके तेजस्वी रूप से या मत्रात्मक ध्वनि रूप के कारण वह कक्ष अपने आप मे विद्युतमय है और सामान्य मानव तो अन्दर जा ही नही सकता, क्योकि अन्दर कदम रखते ही उसे ऐसा झटका लगता है जैसे कि उसने विजली के नगे तार को छू लिया हो।

विशिष्ट साधना से सम्पन्न व्यक्ति ही उस कक्ष मे जाने का अधिकारी माना जाता है, या उनके वे शिष्य जो विशिष्ट साधना मे प्रवेश करते है, वह कक्ष अपने आप मे पूर्णत मत्रमय, चेतन्य और विद्युत ऊर्जा से स्फुलिगित है। वास्तव मे ही वह साधक धन्य है, जिसने उस कक्ष मे प्रवेश किया है, या वहा पर वैठकर कुछ प्राप्त किया है, मैंने यह देखा है कि कोई भी साधक जव उस कक्ष मे वैठता है तो स्वत ही उसकी कुण्डलिनी जागृत हो जाती है और पूर्ण समाधि लग जाती है जो कि अपने आप मे अनिवर्चनीय होती है।

मुझे लगभग तीन महीने पण्डितजी के घर मे रहने का सौभाग्य मिला और वे तीन महीने मेरे पूरे जीवन की निधि है जिसमें मैंने व्यावहारिक रूप से वहुत कुछ सीखा है, उस घर मे मंने पण्डितजी से श्रेष्ठ साधना का अभ्यास किया है, उनके गुरु रूप को और स्नेह को अनुभव किया है, मा का वात्सल्यमय स्नेह मेरी झोली मे है,

बच्चो की सरलता और सहजता मेरे जीवन मे अनुप्राणित रही है और घर के शान्त और स्वर्गिक वातावरण से मेरा जीवन आप्लावित हुआ है, वास्तव मे ही वे तीन महीने मेरे जीवन की सर्वोच्च साधना और उपलब्धि है।

श्रीमाली जी के मकान के भूगर्भ गृह मे एक विशाल पुस्तकालय है जिसमे कई हस्तलिखित ग्रन्थ है जो कि तत्र, मत्र और आयुर्वेद से सम्बन्धित है, ज्योतिष से सम्बन्धित और साधना से सम्बन्धित भी सैकडो पुस्तकें हैं, इतना बडा पुस्तकालय मैंने अन्यत्र कही नही देखा। वास्तव मे ही साधना से सम्बन्धित ग्रन्थो का जो खजाना इस गर्भगृह मे है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

मैंने श्रीमाली जी से विशेष अनुरोध कर इन पुस्तको को क्रम से जमाने की प्रार्थना की थी और उनसे निवेदन किया था कि वे आज्ञा दें जिससे कि इन ग्रन्थो की सूची बनाई जा सके और प्रत्येक विषय से सम्बन्धित ग्रन्थ अलग-अलग आलमारियो मे रखे जा सकें, जिससे कि सम्बन्धित साधक उसका लाभ उठा सके।

मेरे अनुरोध को स्वीकार करते हुए उन्होने इस सम्बन्ध मे आज्ञा दे दी थी और पूरे महीने भर मैं इस कार्य मे लगभग उन सारी पुस्तको को क्रमबद्ध कर सका था।

इस दौरान मे मुझे कुछ फाइलें मिली जिनमे प्राचीन पत्रो का सग्रह था। इन पत्रो मे कुछ सस्कृत मे थे, कुछ हिन्दी और कुछ बगला भाषा मे, सौभाग्य से मुझे इन तीनो भाषाओ की जानकारी है और तीनो ही भाषाओ मे भली प्रकार बोल-पढ लिख सकता हू। अत मैंने उन पत्रो को पढा तो मुझे ज्ञात हुआ कि वास्तव मे ही ये पत्र अपने आप मे दुर्लभ हैं।

इसमे से वे पत्र भी मुझे पढने को मिले जो कि श्रीमाली जी ने अपने साधना-काल मे माताजी को लिखे थे। माताजी ने वे पत्र सहेज कर रख दिये थे, जो कि फाइल मे बन्द थे, वे पत्र वास्तव मे ही अन्यतम और दुर्लभ है क्योकि इन पत्रो से श्रीमाली जी के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश पडता है और उस समय उनकी मन-स्थिति का ज्ञान इन पत्रो के माध्यम से होता है।

कुछ पत्र श्रीमाली जी के गुरु योगीराज श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी के भी थे, जो कि वास्तव मे ही अन्यतम और दुर्लभ हैं, कुछ पत्र श्रीमाली जी के शिष्यो के भी थे जो उन्होंने मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए भेजे थे।

मैंने अनुभव किया कि ये पत्र हमारे साधना जीवन के अमूल्य रत्न हैं और यदि ये प्रकाश मे नही आये या ये पत्र समाप्त हो गए तो यह साहित्य एक अमूल्य निधि से वचित हो जायगा, यदि किसी कुटिल व्यक्ति की नजर मे ये पड गये तो वह इसका मूल्य समझ कर ले जायेगा।

मैंने इन पत्रो की महत्ता और दुर्लभता अनुभव की और इस सम्बन्ध मे एक दिन श्रीमाली जी को प्रसन्न चित्त देखकर याचना की कि इस प्रकार के पत्रो का सम्पादन कर यदि प्रकाशित किया जाये तो यह अपने आप मे अन्यतम कार्य होगा

और हम जैसे युवको को इससे प्रेरणा और मार्गदर्शन मिल सकेगा ।

प्रश्न सुनते ही श्रीमाली जी ने तुरन्त मना कर दिया, उन्होने कहा, मैं इस प्रकार के पत्रो का प्रकाशन उचित नही समझता हू, क्योकि इनमे मेरी प्रशसा हो सकती है और मैं ऐसा नही चाहता । वे पत्र कहा पडे है, मेरी राय मे इन पत्रो को नष्ट कर देना ही उचित है ।

मैं हतप्रभ रह गया कि यह व्यक्तित्व अपनी प्रशसा से कितना अधिक कतराता है । मेरे मन ने कहा कि पण्डितजी अपनी प्रशसा को प्रकाशित करना नही चाहेगे और यदि उन्हे ज्ञात हो गया तो अवश्य इन पत्रो को वे फाड देंगे और इस प्रकार तात्रिक समुदाय एक बहुत वडी निधि से वचित हो जायेगा । मैंने उस समय तो श्रीमाली जी को कुछ नही कहा और उसी समय माताजी के आ जाने से विषय परिवर्तित हो गया और बात आई-गई हो गई ।

परन्तु मैंने पुस्तको को क्रमबद्ध करने के साथ-साथ उन पत्रो की प्रतिलिपिया भी तैयार कर ली और उन प्रतिलिपियो को अपने पास रख लिया, कई पत्र थे, उनमे से वे पत्र जो वास्तव मे ही मुझे अमूल्य लगे, उनकी प्रतिलिपिया मैंने तैयार कर ली, मैं चाहता था कि ये पत्र प्रकाश मे आवें जिससे कि हम जैसे युवको का इससे मार्गदर्शन हो सके और हम इनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकें ।

तीन महीनो मे मैंने श्रीमाली जी से जो कुछ सीखा वह मेरे जीवन की श्रेष्ठतम निधि है, उसके बाद समय आने पर उन्होने मुझे शिष्य रूप मे भी स्वीकार किया और दीक्षा दी, मैं उनका चिर ऋणी हू और यह पूरा जीवन उनका ऋणी रहेगा ।

मैं ये पत्र प्रकाशित करवा रहा हू, मेरा उद्देश्य मात्र हम शिष्यो को इन पत्रो से प्रेरणा प्राप्त करना है, श्री सच्चिदानन्द जी के पत्र अन्यतम है, यह श्रीमाली जी का ही गौरव है कि उन्हे उनके हाथ के लिखे पत्र प्राप्त हो सके, श्रीमालीजी ने भी कुछ पत्र लिखे थे उनकी प्रतिलिपिया भी मुझे कुछ शिष्यो से प्राप्त हुई । उन शिष्यो ने मुझे वे पत्र तो नही दिए क्योकि गुरुजी के हाथ के लिखे वे पत्र उनके लिए सौभाग्यदायक हैं परन्तु उन्होंने मुझे प्रतिलिपि करने की स्वीकृति अवश्य दे दी ।

इस प्रकार मैं कुछ पत्र प्रकाशित कर रहा हू जो कि अन्यतम और दुर्लभ हैं, यद्यपि मैंने गुरुजी से स्वीकृति प्राप्त नही की है और अनजाने ही उन मूल पत्रो की प्रतिलिपिया प्राप्त की हैं यह एक प्रकार का चौर्य कार्य है, परन्तु यह चोरी भी मेरे लिए गौरव की बात है, मैं गुरुजी के प्रति इस कार्य के लिए अपराधी हू और इस चोरी के लिए वे जीवन मे मुझे जो भी सजा देंगे मैं सहर्ष उसको भोगूगा । मुझे उनकी उदारता पर भरोसा है और उस महान व्यक्तित्व के प्रति मेरा सिर श्रद्धा से नत है ।

इस पुस्तक मे जो पत्र प्रकाशित हो रहे हैं वे मूल पत्र भले ही मेरे पास नही हैं, हो सकता है कि इस पुस्तक को देखने के बाद श्रीमाली जी मूल पत्रो को फाड दें या समाप्त कर दें, परन्तु मेरे पास जो भी प्रतिलिपिया हैं वे मेरे स्वय के द्वारा तैयार

हैं, मैंने उन मूल पत्रो को देखा है, पढा है वे प्रामाणिक हैं और उनकी प्रामाणिकता पर मुझे विश्वास है ।

आज मैं उन पत्रो को प्रकाशित कर गौरव अनुभव कर रहा हू कि ये पत्र हम जैसे साधको के लिए मार्गदर्शक के रूप मे कार्य करेंगे ।

मैं इस सक्षिप्त भूमिका के माध्यम से गुरुजी से क्षमा प्रार्थी हू । मेरा उद्देश्य जन-कल्याण है, हम साधको का मार्गदर्शन है और इसीलिए इस अपराध को करने की हिम्मत जुटा पाया हू । इसके लिए मैं अपने आपको गुरुजी के प्रति अपराधी और उत्तरदायी अनुभव कर रहा हू ।

मुझे विश्वास है कि इन पत्रो से जन-साधारण लाभ उठा सकेंगे और वे उस महान व्यक्तित्व के कुछ अशो से साक्षात्कार कर सकेंगे । यदि जन-साधारण इससे और उस महान व्यक्तित्व के जीवन और उनके कार्यों से प्रेरणा प्राप्त कर सका तो मैं अपना यह प्रयास सफल समझूगा ।

**योगी ज्ञानानन्द**

**वशिष्ठ आश्रम,**
**उत्तर काशी, उ० प्र०**

# डॉ० श्रीमाली के पत्र
# अपनी पत्नी के नाम

प्रेषक—डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली

स्थान—लूनी

प्राप्तकर्ता—भगवती श्रीमाली

आलोक—डॉ० श्रीमाली जी ने यह पत्र उस समय अपनी पत्नी को लिखा था जब वे साधना के लिये घर से जाना चाहते थे, परन्तु पारिवारिक बन्धन उन्हे वहा पर रहने के लिये विवश कर रहे थे, यह पत्र उस समय की मानसिक स्थिति को स्पष्ट कर रहा है कि कितनी अधिक मानसिक चिन्ता और मनोव्यथा उनके मानस मे थी और उन्हे अपने आपको साधना के लिये तैयार करने मे कितना अधिक मानसिक सघर्ष करना पडा था।

प्रियतमे!

जिसके साथ तुम्हारे भाग्य की डोर जुडी है वह एक विचित्र विचारो और अनोखी भावनाओ का व्यक्ति है। उसके विचार अपने आप मे अलग ही हैं, वह दूसरो के विचारो के साथ अपने आपका तादात्म्य नही कर पाता, क्योकि वह इस बात को अब अनुभव करने लगा है कि उसका जीवन जन्म लेकर साधारण रूप मे समाप्त होना ही नही है, अपितु उसे अपने जीवन मे कुछ ऐसे कार्य करने हैं, जो अपने आप मे विलक्षण हो, अपने आप मे अलग हटकर हो और जो कार्य साधारण व्यक्तियो से सम्पन्न होना सभव न हो।

विवाह से पूर्व मैंने कई राते इस चिन्तन मे बिता दी थी कि मुझे विवाह करना चाहिए या नही, और धीरे-धीरे मेरी यह धारणा बद्धमूल होती जा रही थी कि मेरा जीवन विवाह के लिये नही बना है, क्योकि विवाह एक ऐसा बन्धन है जिसमे बध करके व्यक्ति पूर्णत स्वतत्र नही रह पाता, यद्यपि यह बात सही है कि यह भी जीवन का एक आवश्यक धर्म है, और इस धर्म को मानना व्यक्ति का कर्त्तव्य है, परन्तु जैसा कि

मैंने तुम्हे बताया कि मैं अपने आपको साधारण स्थिति मे नही रख पाता, और मेरे मन मे एक ऐसी छटपटाहट है, एक ऐसी आग है जिसमे मैं चाह करके भी तुम्हारे सामने व्यक्त नही कर पाता।
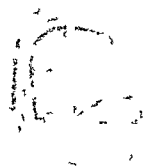
श्रीमती भगवती श्रीमाली

शायद तुम्हे ज्ञात नही होगा कि जब मेरे सामने विवाह का प्रस्ताव रखा गया तो उस समय सबसे अधिक प्रतिवाद मैंने ही किया था, और अपने माता-पिता के सामने यह बात भली प्रकार से स्पष्ट कर दी थी कि शायद मेरा जीवन गृहस्थ बनने के लिये नही बना है, सभवत मैं इस गृहस्थ के दायित्वो को भली प्रकार से वहन नही कर सकूगा, मेरी उदासीनता से एक प्राणी की सारी इच्छाए जड हो जायेंगी, क्योकि मेरा चिन्तन, मेरी भावनाए और मेरे विचार अपने आप मे एक अलग धारणा को लिय हुए हैं।

मुझे स्वय कुछ-कुछ ऐसा लगने लगा था जैसे कि मैं अपने आप से खोया हुआ रहता हू और आसपास के विचारो को न तो ग्रहण कर पा रहा हू और न उनसे सम्पर्कित ही हो पाता हू।

शायद मेरे इस प्रकार के विचारो को, मेरे घर वालो ने भाप लिया होगा और उन्होने ऐसा महसूस किया होगा कि यह लडका यदि इसी प्रकार अपने खयालो मे खोया रहा तो, या तो पागल हो जायगा या सन्यासी हो जायगा, दोनो ही स्थितियो मे उन्हे नुकसान था और वे नही चाहते थे कि उनके घर का सबसे बडा लडका सन्यासी हो जाय या विबाह के नाम पर अपने आपको तटस्थ बना ले।

इसीलिये मेरी इस प्रकार की मन स्थिति को अनुभव कर उन्होंने विवाह के लिये जरूरत से ज्यादा प्रयास करने प्रारभ कर दिये। यह बात तुम स्वय समझ सकती हो कि मेरी यह उम्र विवाह करने की नही थी, परन्तु शायद इन्ही भावनाओ से प्रभावित होकर उन्होंने जल्दी-से-जल्दी विवाह करने की योजना बना ली और मुझे बिना बताये काफी कुछ तैयारिया कर ली। उनके सारे प्रयास, सारी योजनायें केवल इसी बात को लेकर के थी कि उनके घर का यह चिराग जलता रहे और आगे यह वश-परम्परा बनी रहे।

मैं मानता हू कि उनके विचार अपनी जगह सही थे। हर माता-पिता की यह आकाक्षा होती है कि उसका पुत्र गृहस्थ बने और आगे की पीढियो के निर्माण मे योगदान दे।

परन्तु मैं इस बात को जान रहा था कि यह ठीक नही हो रहा है। मेरा विवाह एक प्रकार से मेरे लिये बन्धन ही साबित होगा। मैं अपने जीवन मे जो कुछ करना चाहता हू शायद वह नही कर पाऊगा, क्योकि उस समय एक ऐसी बेडी मेरे पावो मे जड दी गई होगी, जिसे मैं चाहकर के भी छुडा नही पाऊगा। पर—पर मेरे विचारो को माता-पिता ने हवा मे उडा दिया और मेरा विवाह तुम्हारे साथ हो गया।

इसमे तुम्हारा कोई दोष नही है, तुमने विवाह किया है, तुम इस घर की वहू बन करके आई हो, तुम्हारी अपनी भावनाए हैं, अपनी इच्छाए है, अपने विचार हैं और तुम उन विचारो मे बराबर खोई हुई रही हो।

मेरे घर मे आने के बाद तुमने जहा मेरे माता-पिता से प्यार पाया होगा, देवर से चुहल अनुभव की होगी, पर साथ ही तुमने अग्नि को साक्षी बनाकर फेरे खाये हैं उसकी तरफ से तो किसी प्रकार का कोई स्नेह तुम्हे प्राप्त ही नही हो रहा है। यह उदासीनता तुम्हारे लिये एक पहेली की तरह दिमाग को उलझा रही होगी। हो सकता है मेरे बारे मे तुम्हारे मन मे कई प्रकार की भावनाए आई होगी और तुमने कई प्रकार से अपनी उन भावनाओ को शान्त किया होगा।

मैं पिछले काफी समय से तुम्हें खोई-खोई देख रहा हू और मैं यह अनुभव कर रहा हू कि आते समय तुम्हारे चेहरे पर जो ताजगी और प्रफुल्लता थी, उस पर हल्की-

सी स्याही छाई पडती जा रही हैं, इसका कारण जहा तक मैं समझ रहा हू मेरी उदासीनता है।

वास्तव मे ही तुम अपने आपमे पूर्ण नारी हो, और विवाह के उपरान्त सहेलियो के द्वारा तुम्हारे मन मे कई प्रकार के विचार भरे होंगे, कई प्रकार के सपने तुम्हारी आखो मे तैर रहे होंगे, कई प्रकार की बातें तुम अपने होठो से कहने के लिये आतुर हो रही होगी, परन्तु इतना समय बीतने के बाद भी जब मेरी तरफ से तुम्हे उदासीनता मिली होगी तो वे सपने धीरे-धीरे टूट रहे होंगे, वे कल्पनाए जो कि पूरे जीवन को गुदगुदी देती है बिखर रही होगी और एक प्रकार का झीना आवरण उस पर पड रहा होगा।

मैं जानता हू कि तुम विवाह करके आई हो, तुमने मुझसे बहुत अधिक उम्मीदें लगाई होगी, परन्तु सभवत मैं तुम्हारी उम्मीदो को पूरा नही कर सकूगा। यद्यपि यह बात कहते समय मैं अपने आपको भली प्रकार से पहचान रहा हू। मैं अपने उत्तरदायित्वो से भाग नही रहा हू। अपनी जिम्मेवारियो से विमुख नही हो रहा हू अपितु मैं पूर्णता के साथ तुम्हारे साथ समझौता कर लेना चाहता हू, जिससे कि तुम आने वाले जीवन मे परेशानिया अनुभव न करो।

हो सकता है मैं तुम्हे वर्तमान जीवन मे उतना अधिक प्यार न दे सकू जितना कि विवाह के तुरन्त बाद एक पति अपनी पत्नी को देता है, हो सकता है मैं इस प्रकार के इन्द्र धनुषी ख्वाब तुम्हारे सामने नही लहरा सकू, जो कि इस उम्र मे लहराने स्वाभाविक हैं। यह भी हो सकता है कि मैं रसिक और मधुर बातें, गुपचुप सभाषण, चुहल, हसी-मजाक, तुम्हारे सामने नही कर सकू, परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि मैं तुमसे उदासीन हू या तुम्हारी उपेक्षा कर रहा हू।

जब मैंने विवाह कर ही लिया है तो भली प्रकार से सोच-विचार लिया है। मेरा एक कर्त्तव्य जहा अपनी आत्मा की उन्नति करना है वही दूसरी ओर अपने माता-पिता की इच्छाओ की पूर्ति करना भी है। जिस कार्य से उन्हे सुख मिलता है वह कार्य करना मेरा कर्त्तव्य है। एक पुत्र का यह धर्म है कि वह अपने पिता के विचारो को मान्यता दे, माता के कथन का आदर करे और उनको अप्रसन्न करके जीवित न रहे। मैंने ऐसा ही अनुभव किया था कि उन्हे मेरा विवाह होने से ज्यादा प्रसन्नता होगी, उन्होंने भी इस बात को सबसे ज्यादा महत्त्व दिया था और एक दिन तो बातचीत मे उन्होने यहा तक कह दिया था कि यदि तुम माता-पिता का ऋण उतारने को कह रहे हो तो वह ऋण तभी उतर सकता है जब तुम हमारे कहने को मान्यता दो और विवाह कर लो। मैंने उसी दिन विवाह की स्वीकृति दे दी थी, जिसकी परिणति तुम्हारें साथ विवाह है।

इतना होने पर भी मैं तुम्हारी भावनाओ को समझ रहा हू, तुम्हारी इच्छाओ को चकनाचूर कर देने का मुझे कोई अधिकार नही है, तुम्हारी मान्यताओ को खण्डित

करना मेरा धर्म नही है, मै नही चाहता हू कि तुम अपने जीवन मे उदासीनता के साथ जीवन के क्षण व्यतीत करो, मैं तुम्हे उतना ही सम्मान देता हू जितना मैं अपने आपको सम्मान दे रहा हू।

मेरी उपेक्षा को तुम किसी और रग मे न ले लो, इसीलिये आज मैं अपने मन की वात साफ-साफ कह देना उचित समझता हू। मैंने कई वार अपने मन को दृढ किया जिससे कि मै तुम्हारे सामने सारी वात खोलकर रख दू, परन्तु जव भी मै कुछ कहने के लिये उद्यत होता हू तो तुम्हारा मासूम चेहरा देखकर मैं कुछ भी कह नही पाता और चुपचाप लेट जाता हू। मैंने कई वार अपनी भावनाओ को स्पष्टता के साथ कहने के लिये प्रयत्न किया, पर हर वार तुम्हारे चेहरे का भोलापन मुझे कहने से रोके रहा। तुमने स्वय यह देखा होगा कि मेरी सारी रात जागते हुए वीत जाती है, मैं करवटें वदलता रहता हू और उस समय मेरा पूरा दिमाग परस्पर सघर्ष कर रहा होता है, मैं विभिन्न विचारधाराओ के झझावातो मे उलझ जाता हू, इस प्रकार धीरे-धीरे अपने सीने पर एक वोझ-सा अनुभव करने लगा हू। जव तक मैं अपनी सारी वातें तुम्हारे सामने खोलकर नही रख दूगा तव तक मैं इस वोझ को अलग नही कर पाऊगा और शायद तव तक मैं शान्ति से कुछ भी नही कर पाऊगा।

जैसा कि मैंने तुम्हे वताया कि मेरा जन्म सामान्य रूप से जीवन विताने के लिये नही है, मै सामान्य रूप से रहना भी नही चाहता, मैं नही चाहता कि अपनी सुख-सुविधाओ के लिये प्रयत्न करू, जीवन मे अर्थ को ही सवसे अधिक मान्यता दू और अपनी पत्नी के साथ हसी-मजाक, राग-रग, के साथ अपने ये कीमती वर्ष बिता दू।

शायद् मेरा जन्म इस प्रकार के कार्यों के लिये हुआ ही नही है। मैं प्रारभ से ही अन्तर्मुखी व्यक्तित्व लिये हुए रहा हू, वहुत ही कम वोलकर अपनी भावनाओ को व्यक्त करता रहा हू, क्योकि मेरे मन मे छटपटाहट है, मेरे दिल मे एक ऐसी आग है जिसे दूसरा सही प्रकार से समझ नही पाता है। मैं इस आग को, इस छटपटाहट को जितना ही ज्यादा दवाने का प्रयत्न करता हू यह आग उतनी ही ज्यादा भडकती जाती है, यह छटपटाहट उतनी ही ज्यादा वढती जाती है और पिछले चार महीने मे इसी आग को दवाये हुए तुम्हारे पास आता रहा हू, परन्तु मैं अपने होठो से एक शब्द भी नही कह पाया हू, इसीलिये आज मुझे इस पत्र का सहारा लेना पडा है जिससे कि मैं अपनी वात को पूर्णता के साथ तुम्हारे सामने रख सकू और जीवन के इन प्रारम्भिक क्षणो मे एक समझौता कर सकू जिससे कि मेरे मन मे किसी प्रकार का मलाल न रहे, तुम्हारे मन मे किसी प्रकार की विपरीत भावना न बने।

मैं ब्राह्मण युवक हू और मेरे मन मे यह भावना है कि जब तक मैं इस भारत की खोई हुई विद्या को प्राप्त नही कर लूगा तब तक मेरा जीना व्यर्थ है। मेरे पूर्वज ससार के सर्वश्रेष्ठ विचारवान व्यक्ति रहे हैं, उन्होंने हमारे समाज को जो मान्यताए दी हैं, जो विचारसूत्र प्रदान किये हैं वे अपने आप मे अप्रतिम हैं, उन्ही सूत्रो के सहारे उनका

नाम आज तक भी हमारा समाज आदर के साथ ले रहा है। गौतम, कणाद, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि वे विचारवान युगपुरुष थे जिन्होने अपने जीवन को तिल-तिल करके जलाया होगा, जीवन का अधिकाश भाग अपनी साधना मे लगा दिया होगा और ससार के सारे सुखो से अपने आपको अलग हटाकर जो कुछ उपलब्धिया प्राप्त की, उन अमृत कणो से आज तक हमारा समाज जीवन-रस प्राप्त करता रहा है।

परन्तु अब मैं ऐसा अनुभव कर रहा हू कि उनका यह जीवन स्रोत सूख रहा है। यह बात नही है कि उनके स्रोत मे किसी प्रकार की न्यूनता आ गई है, अपितु आज हमारा समाज एक प्रकार से पथभ्रष्ट हो गया है, उसकी विचारधारा बदल गई है, गुलामी की जजीरो मे जकड कर वे अपने आपको भुला बैठे है। हमारा उच्चतम ज्योतिष ज्ञान आज विदेशियो द्वारा पैरो तले रोदा जा रहा है। हमारे मत्रो की खिल्ली उडाई जा रही है, हमारे तत्र-यत्र और हमारी साधना एक उपहास का पात्र बन गई है, और यदि इसी प्रकार की स्थिति बनी रही तो एक दिन हम इन अमूल्य विद्याओ से हाथ धो बैठेंगे। हमारे पूर्वजो ने, हमारे ऋषियो ने, जो कुछ ज्ञान, जो कुछ विद्याए अपने शरीर को जलाकर प्राप्त की थी वे धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। एक प्रकार से हम कृतघ्न होते जा रहे हैं और यह एक दुखद स्थिति है, जब-जब भी मैं यह सोचता हू तब मेरे हृदय मे एक सिहरन-सी पैदा हो जाती है कि हम कितने पथभ्रष्ट हो गये हैं, हमारा समाज किस प्रकार से ऐसे रास्ते पर चलने लग गया है जिसका अन्त अन्धकार की काल-कोठरी है। मैं जान-बूझकर इस प्रकार के अधेरे पथ का राही नही हो सकता। मेरे मन मे यही एक आग है जो तिल-तिल करके मुझे जला रही है और चाहते हुए भी मैं आनन्द अनुभव नही कर पा रहा हू, चाहते हुए भी मे राग-रग मे अपने आपको लिप्त नही कर पा रहा हू।

इस उम्र मे जब व्यक्ति चाद से बातें करता है, दूधिया चादनी मे अपनी प्रियतमा से सभाषण कर आनन्द अनुभव करता है, उस समय मैं अपनी ही आग से भीतर-ही-भीतर दहकता जाता हू और तिल-तिल कर अपने आपको जलता हुआ अनुभव करता रहता हू।

मेरी एक ही इच्छा है कि मैं साधारण व्यक्ति की तरह नही मरू, साधारण रूप से धन कमाकर पेट भरना मेरा अभीष्ट नही है, राग-रग मे मस्त होकर अपने जीवन को बिता देना मेरा उद्देश्य नही है, मेरा लक्ष्य, मेरा उद्देश्य केवल मात्र यही है कि मैं ज्योतिष को अत्यन्त ही उच्च स्थान पर स्थापित कर सकू और पूरे ससार को यह दिखा सकू कि भारतवर्ष की यह विद्या अपने आपमे अन्यतम है, इस विद्या के माध्यम से ही हम इस विश्व मे अग्रणी रहे हैं। इसके अलावा तत्र-मत्र आदि हमारे सामाजिक जीवन के आधार रहे हैं, भारत की चेतना या उसका स्पन्दन इस प्रकार की साधनाए ही हैं, जिसकी वजह से भारत भारत बन सका है और पूरे ससार का गौरवमय शिरमौर बन सका है।

परन्तु मै देख रहा हू कि मेरा भारत विदेशियो के द्वारा रोदा जा रहा है। हम प्राणयुक्त होते हुए भी चेतनाशून्य है। हम अपनी भाषा को भुला बैठे हैं, अपने पूर्वजो के गौरव को विस्मरण कर बैठे हैं और अपने आपको पहचानने से इन्कार करने मे गौरव अनुभव करने लगे हैं।

इसके हल के लिये दो ही उपाय है एक है राजनीति के माध्यम से इस कार्य को किया जाय और दूसरा साधना के द्वारा अपने पूर्वजो की थाती, जो लुप्त होती जा रही है उसे पुन सहेज कर प्राप्त किया जाय।

पहला रास्ता मेरे लिये उपयुक्त नही है, और मैं उस रास्ते पर नही बढ सकता, इसकी बजाय दूसरे रास्ते को अपनाना मैं श्रेयस्कर समझता हू।

जीवन मे जिनकी अलग विचारधाराए होती है जो लकीर से हट कर कुछ करना चाहते है लोग उसे पागल कहते है, और एक पागल की पत्नी बनना कितना दुखदायक होता है, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो, परन्तु मैं इस बिन्दु पर तुमसे समझौता करने के लिये ही पक्तिया लिख रहा हू। मैं चाहता हू कि तुम मेरे उद्देश्य की पूर्ति मे सहायक बनो। मुझे मेरे जीवन के लक्ष्य तक पहुचाने मे मदद करो, और मैं जो कुछ बनना चाहता हू, जो कुछ करना चाहता हू उसमे तुम भागीदार बनो, यही मेरी आकाक्षा है।

हो सकता है मेरे विचार तुम्हारे लिये अनुकूल न हो। इस समय तुम्हारे मन मे इस प्रकार की बातें अनुकूलता पैदा कर ही नही सकती। तुम्हारे जीवन का यह यौवनकाल है और इस काल की अलग ही फिलोसोफी होती है, जो समय तुम्हारे लिये राग-रग, मस्ती और मौज का है उस समय मैं तुम्हारे सामने अलगाव की बातें कर रहा हू, तुम्हारे लिए मस्ती और प्यार के जो दिन होने चाहिए उन दिनों मे मैं दूसरी विचारधारा तुम्हारे सामने रख रहा हू, परन्तु मैं यह सब कहने के लिये मजबूर हू और मैं चाहता हू कि तुम मेरी इन भावनाओ को भली प्रकार से समझो, तब तुम्हे यह महसूस होगा कि मैने जो रास्ता चुना है वह असामान्य रास्ता चुनने वाले लाखो मे दो-चार ही होते हैं। जो फूलो की राह छोडकर काटो की पगडडी पर बढ जाते हैं, आनन्द का रास्ता छोडकर अभाव के रास्ते पर चल पडते हैं, भोग विलास और ऐश-आराम का परित्याग कर वे अपने लिये परेशानिया और कष्टो को निमत्रण दे देते हैं, परन्तु इस बात मे भी सत्यता है कि इस प्रकार का रास्ता चुनने वाले बहुत ही कम होते हैं और ऐसे व्यक्ति ही आगे चलकर समाज को नेतृत्व दे सकते हैं, देश को नई राह दिखा सकते हैं और उनके द्वारा कुछ ऐसे कार्य सम्पन्न होते हैं जिनका लाभ आने वाली पीढिया उठाती हैं, उनके बताये हुए या उनके किये गये कार्यों से वे अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करने लगती हैं।

मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं इस समाज मे रहकर कुछ भी नही कर पाऊगा, इस घर मे रहकर मैं अपने लक्ष्य की पूर्ति नही कर सकूगा, आनन्द और सुख

भोग के द्वारा उस रास्ते पर या उस विन्दु पर नही पहुच सकूगा जो मेरा ध्येय है, अत उस ध्येय को प्राप्त करने के लिये मुझे इस घर को छोडना पडेगा, इस समाज से अपने आपको अलग करना पडेगा, तभी मैं कुछ विशिष्ट प्राप्त कर सकूगा और उस विशिष्टता की प्राप्ति के वाद ही मैं अपने आपको पूर्णता दे सकूंगा।

क्योकि मेरा एकमात्र ध्येय लुप्त विद्या को प्रकाशित करना है, ज्योतिष की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन स्थापित करना है, और इसके साथ-ही-साथ मत्र शास्त्र आदि के द्वारा जो आश्चर्यजनक सिद्धिया हमारे पूर्वजो के पास थी उनको वापस जन-साधारण के लिये सुलभ वनाना है। इसकी पूर्ति घर मे वैठकर नही हो सकती, समाज के वीच उदर पूर्ति करने मे इन विद्याओ को प्राप्त नही कर सकता, क्योकि जो थोडे वहुत साधक इस ससार मे वच गये है और जिनके पास इस प्रकार की अलौकिक सिद्धिया हैं, वे भीड-भाड वाले इलाके मे नही हैं। वे मखमली गद्दो पर नही वैठे हैं, वे आराम से जीवन यापन करने वालो के वीच नही हैं, अपितु वे उन कन्दराओ मे हैं जहा भौतिक सुखो का पूर्णत अभाव है, वे उन जगलो मे है जहा पग-पग पर सकट है, वे उन स्थानो पर है जहा स्वार्थ नही है, छल और कपट नही है, धोखा और अत्याचार नही है, क्योकि उन्हे इन वातो से कोई सरोकार नही है।

मैं उन लोगो के पास पहुचना चाहता हू जो वास्तव मे ही सिद्ध पुरुष हैं, जो वास्तव मे ही इन विद्याओ के विशिष्ट जानकार हैं, इसके लिये मुझे जगलो मे भटकना पडेगा, पहाडो की गुफाओ मे जीवन को विताना पडेगा, और पग-पग पर कष्टो और अभावो को झेलना पडेगा।

इस प्रकार की विद्या तभी प्राप्त हो सकती है जब मै पूर्णत वीतरागी वनू, और सारे सुखो का परित्याग कर दू, अपने जीवन का मोह छोडकर उन साधुओ, सन्यासियो और तपस्वियो की खोज करू जो कि विरले स्थानो पर ही विचरण करते है, उनका पहचानना भी आसान नही है, मैं नही जानता कि मै अपने उद्देश्य मे सफल हो सकूगा या नही, परन्तु मेरी आत्मा वार-वार इस वात को कह रही है, कि तुम्हारे लिए वही रास्ता श्रेयस्कर है, उसी रास्ते पर चलकर तुम कुछ प्राप्त कर सकोगे और आने वाली पीढियो के लिये इस प्रकार की विद्या सुरक्षित रख सकोगे।

हो सकता है इस प्रकार की खोज मे मैं समाप्त हो जाऊ। यह भी हो सकता है कि मैं किसी हिंसक पशु की भेंट चढ जाऊ और यह भी सभव है कि मेरे यौवन के अमूल्य वर्ष व्यर्थ मे ही वीत जाय और मैं कुछ भी प्राप्त न कर सकू, परन्तु इन चिन्ताओ से या इन घटनाओ से विचलित होना मैं नही चाहता, इन आशकाओ को देखते हुए मैं यदि मन मारकर घर मे वैठ जाऊगा तो मेरी आत्मा मुझे कभी भी क्षमा नही करेगी। साधारण जीवन जीने की अपेक्षा मैं हिंसक पशु का भक्ष्य वन जाना ज्यादा श्रेयस्कर समझता हू, यह मेरा निश्चय है कि या तो मैं कुछ प्राप्त करके ही घर लौटूगा या अपने आपको समाप्त कर दूगा, परन्तु यह वात निश्चित है कि मैं खाली हाथ घर नही लौटूगा।

मेरी ये सारी बातें तुम्हारे लिये कष्टदायक है, मै यह भी अनुभव कर रहा हू कि इस प्रकार तुम्हे कष्ट देना किसी भी प्रकार से उचित नही है। जो समय तुम्हारे आनन्द का समय है, उन क्षणो मे मैं तुम्हे अभाव दे दू, यह उचित नही है। यह समय तुम्हारे यौवन का है, राग-रग और मस्ती का है, इन प्रसन्नता के क्षणो को मैं उदासी और लम्बी प्रतीक्षा मे बदल दू यह मेरा धर्म नही है, परन्तु फिर भी जब दो स्थितियो की तुलना करता हू तो मुझे वह स्थिति ज्यादा प्रिय है और एक बडे कार्य के लिये यदि मै अपने आपको त्याग देता हू तो एक पत्नी के रूप मे तुमसे भी अपेक्षा करता हू कि तुम मुझे इस कार्य मे सहायता दोगी, मेरे लिये बन्धन नही बनोगी।

यह निश्चित है कि मुझसे विवाह करके तुम लाभ मे नही रही हो, यह भी निश्चित है कि मै तुम्हे सुख के स्थान पर दुख ही दे रहा हू, आनन्द और प्रसन्नता के क्षणो मे अभाव और परेशानिया प्रदान कर रहा हू, तुम्हारी उमगो और आशाओ पर मै एक प्रकार से स्याह आवरण बिछा रहा हू और इस प्रकार से तुम्हारे जीवन की सारी स्थितिया, सारी उमगें समाप्त कर रहा हू।

मै नही कह सकता कि यहा से जाने के बाद मैं वापिस कब लौटूगा ? मैं यह भी नही जानता कि मै अपने उद्देश्य मे सफल हो भी सकूगा। आज तुम यौवनवती हो, मैं जब वापिस लौटूगा तब तक तुम्हारा यौवन अक्षुण्ण रह भी सकेगा या नही ? मैं जानता हू कि मै जल्दी वापिस नही लौट पाऊगा। हो सकता है कि मुझे अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे दस साल या पन्द्रह साल लग जाए, और ये दस और पन्द्रह वर्ष तुम्हारे लिये कितने कष्टदायक होगे इसकी मै कल्पना कर सकता हू।

मैं जानता हू कि इन १५ वर्षों मे तुम्हारा यौवन चिन्ताओ मे घुल जायगा। तुम्हारे चेहरे पर जो ताजगी और प्रफुल्लता है वह दुखो के आवरण से मिट जायगी, तुम्हारा जीवन एक अभिशापित जीवन बन कर रह जायगा, परन्तु इतना होते हुए भी मै तुमसे इस प्रकार की जीवन की याचना करता हू, जिस रास्ते पर मै चल रहा हू या जिस पथ पर मैंने जाने की तैयारी की है, वह सुगम और सुखदायक रास्ता नही है, अपितु इस रास्ते पर पग-पग पर काटे बिछे हैं, हर क्षण, अभाव के साथ जन्म लेकर परेशानियो के साथ व्यतीत होगा। इस रास्ते पर मेरा सारा यौवन घुल जायगा। मेरे चेहरे की काति अभावो के कारण धूमिल पड जायगी, और एक पूरा जीवन अभावो, कष्टो और परेशानियो का केन्द्र बन जायगा, परन्तु फिर भी यह निश्चित है, कि मैं खाली हाथ नही लौटूगा और अपना तथा तुम्हारे यौवन का बलिदान देकर जो कुछ भी प्राप्त कर सकूगा वह मेरा नही होगा अपितु पूरे समाज का होगा, उस पर केवल तुम्हारा और मेरा ही अधिकार नही होगा अपितु पूरे देश का अधिकार होगा, परन्तु फिर भी मेरे लिये वह क्षण अत्यन्त ही सुखदायक होगा जब कि मै कुछ प्राप्त कर सकूगा।

यदि मै अपने जीवन मे कुछ बन सका तो इसका सारा श्रेय तुम्हारा होगा,

क्योकि इसके पीछे तुम्हारा त्याग होगा, तुम्हारा बलिदान होगा और तुम्हारे सुख और आनन्द की आहुति उसके पीछे होगी ।

आज तुम्हारे चेहरे पर जो ताजगी, प्रफुल्लता और चमक मै देख रहा हू, शायद वापिस आने पर वह मुझे दिखाई न दे । यह भी हो सकता है कि उस समय तुम्हारा शरीर एक लकडी की तरह शुष्क और ठूठ की तरह हो जाय, हो सकता है कि तुम्हारे चेहरे पर जरूरत से ज्यादा झुरिया देखू, परन्तु फिर भी मैं अपने सकल्प पर दृढ हू, हो सकता है मै वापस तुम्हे नही देख सकू या तुम्हे नही मिल सकू, मेरे आने से पूर्व ही तुम मुझे प्राप्त नही हो सको या उस अभियान मे मैं ही समाप्त हो जाऊ, इस समय मैं कुछ भी नही कह सकता । मेरे चारो तरफ एक झझावात है और उस झझावात मे मैं कुछ भी नही देख पा रहा हू । इतना होने पर भी मैं तुमसे सहायता की उम्मीद कर रहा हू, और मुझे विश्वास हे तुम मुझे इस पथ पर आगे बढने के लिए रोकोगी नही, अपितु जोश के साथ, उत्साह के साथ आगे वढने के लिए प्रेरित करोगी ।

शास्त्रो मे नारी को सहचरी कहा है, इसका तात्पर्य है कि वह मानव के साथ बराबर कदम-से-कदम मिलाकर चले, इसका दूसरा तात्पर्य यह है कि वह अपने पति की उन्नति मे, उसकी प्रगति मे सहायक बने, और उसकी आज्ञा का पूर्णता के साथ पालन करे । मै तुम से ऐसी ही आकाक्षा रखता हू । ऋषियो ने नारी को पृथ्वी की तरह सहनशील बताया है, मेरा विश्वास है तुम मे ये सारे गुण अवश्य ही होंगे जो कि एक पृथ्वी मे होते हैं, वह हर क्षण, हर पल सहन करती रहती है और मैं तुम से एक ही अकाक्षा रखता हू कि तुम सहनशीलता की प्रतिमूर्ति वन सको ।

हो सकता है तुम इस पत्र को पढकर मुझे मना कर दोगी, पर मना करने से पूर्व एक वार भली प्रकार से सोच लेना कि क्या यह तुम्हारे लिए उचित होगा ? क्या तुम्हारा सारा जीवन एक सामान्य नारी की तरह व्यतीत हो जाए ? क्या तुम चाहती हो कि तुम इन छोटे मोटे घर के कार्यों को करती हुई पशु की तरह अपनी जिन्दगी व्यतीत कर दो ? क्या वच्चो को पैदा करना ही गृहस्थ का सर्वोच्च लक्ष्य है ? क्या हमारा जीवन कीडे-मकोडे की तरह भटक-भटक कर मर जाने के लिए है ? निश्चय ही तुम ऐसा नही चाहोगी, प्रत्येक नारी की यह कामना होती है कि उसका पति एक विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न हो । वह सामान्य प्राणी न हो, अपितु लोगो से अलग हटकर हो, उसके नाम से लोग परिचित हो, उसके ज्ञान से आने वाली पीढिया लाभान्वित हो, और वह मानव जाति के लिए एक विशिष्ट योगदान देने मे सहायक हो । तुम्हारी कामना भी यह होगी और इसी कामना की पूर्ति के लिए मैं जाना चाहता हू ।

तुम स्वय सोचो कि यदि मैं कुछ प्राप्त करके वापिस आ सका तो वह हमारे जीवन का कितना सुखमय दिन होगा जबकि मैं कुछ प्राप्त कर सकू गा, कुछ विशिष्ट वन सकू गा, कुछ ऐसी उपलब्धिया मेरे पास होगी जो कि अपने आप मे अन्यतम होगी

और उस समय गौरव के साथ तुम मेरा नाम उच्चारण कर सकोगी।

लोग इस वात को अनुभव करेंगे कि मेरे निर्माण के पीछे तुम्हारा बहुत बडा सहयोग है, मेरे जीवन के तन्तुओ को अनुकूल बनाने मे तुम्हारा बहुत कुछ योगदान रहा है, और तुम्हारे त्याग, तुम्हारे बलिदान की नीव पर ही मैं कुछ बन सकू गा तथा अपने व्यक्तित्व को, अपने ब्राह्मणत्व को उजागर कर सकू गा।

यह पत्र मैं बहुत दुखी मन से लिख रहा हू, क्योकि इस पत्र के प्रत्येक अक्षर के पीछे मेरा स्वार्थ है और जितना मेरा स्वार्थ है उतना ही तुम्हारा त्याग है, परन्तु फिर भी मैं प्रसन्नता के साथ यह पत्र तुम्हे दे रहा हू। मै इस वात को (जो कुछ इस पत्र मे लिखा है) अपने होठो से तुम्हे कहना चाहता था, तुम्हे समझाना चाहता था, परन्तु जव भी मैने इस प्रकार का उत्क्रम किया तव तक मैं रुक गया, क्योकि मेरे सामने तुम्हारा शान्त और सरल चेहरा आ जाता था। जव-जव भी अपने विचारो को कहने के लिए उद्यत हुआ तव-तव तुम्हारी आयु, तुम्हारी भावनाए, तुम्हारी उमगें मेरे होठो को सी देती थी, और मैं बहुत कुछ कहना चाहते हुए भी कुछ नही कह पा रहा था। यह एक प्रकार की मेरी विवशता थी, और इस विवशता के कारण ही मेरा बहुत समय इस उधेडबुन मे बीत गया कि में तुम्हे कहू या नही ?

एक बार तो ऐसा भी विचार आया कि मैं अपनी वात तुम्हे नही कह सकू गा, अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए चुपचाप घर से निकल जाऊ, किसी को कानोकान खबर तक न हो। परन्तु फिर मेरे पैरो ने अपने आपको रोक लिया, मेरे मन ने कहा यह उचित कदम नही होगा, जिसके साथ सम्बन्ध बना है, उसको सारी वात कह देना ज्यादा उचित होगा, अन्यथा वह कुछ भी नही सोच सकेगी, कुछ भी नही समझ सकेगी और उसका मानस दिग्भ्रमित होकर रह जाएगा।

इससे पूर्व मैं कई पत्र लिखकर फाड चुका हू, परन्तु तुम्हारी आखो की सजलता के सामने रखने की हिम्मत नही कर सका हू, पर आज कडे मन से अपनी वात लिख दी है और तुम्हारे सामने इस पत्र के द्वारा रख दी है।

मैं इस पत्र के उत्तर मे अस्वीकृति नही चाहता हू। मना प्राप्त करने के लिए यह ात्र तुम्हे नही लिखा। मैं केवल स्वीकृति चाहता हू और मुझे विश्वास है तुम प्रसन्नता के साथ उत्साह और उमग के साथ मुझे स्वीकृति दोगी।

मेरी आत्मा के सारे सुख तुम्हारे पास गिरवी हैं। मैं केवल यहा से भूख, परेशानी, कष्ट, अभाव और कठिनाइया लेकर जा रहा हू। आगे का जीवन काटो से भरा है अधकार मे टटोल-टटोल कर आगे बढना है, किसी प्रकार की कोई किरण मेरे सामने नही है, परन्तु फिर भी मेरी आत्मा का प्रकाश मेरे साथ है और वह मुझे सही रास्ता दिखा सकेगा।

इतना विश्वास करो कि यदि मैं लौटा तो खाली हाथ नही लौटू गा, क्योकि मेरी आत्मा, मेरा विश्वास, मेरे साथ है और इससे भी बढकर मेरे साथ है तुम्हारा त्याग, तुम्हारा स्नेह, तुम्हारी कामनाए और तुम्हारा बलिदान।

मैं तुम्हारी झोली मे इस समय खुशिया डालकर नही जा रहा हू, इस समय तो मैं एक लम्बी अन्तहीन उदासी, बेवसी, बेचैनी और इन्तजार ही देकर जा रहा हू, जिसे तुम्हे पार करना है। फिर भी इतना विश्वास रखना कि मैं अवश्य लौटूगा, जरूर लौटकर आऊँगा।

मेरी समस्त शुभकामनाए तुम्हारे साथ हैं, मेरे प्राणो का अमृत वर्णन तुम्हारे पथ को सुखदायक बना सकेगा, ऐमी मुझे आशा है।

स्नेह युक्त
(नारायणदत्त श्रीमाली)

प्रेषक डा० नारायणदत्त श्रीमाली।
स्थान अज्ञात
प्राप्त कर्त्ता भगवती श्रीमाली
आलोक यह पत्र डॉ० श्रीमाली जी ने अपनी पत्नी को घर से जाने के लगभग ३ वर्ष वाद लिखा था और इन तीन वर्षों मे उन्होंने कितना अधिक मानसिक और शरीरिक सघर्ष किया था, उसकी एक क्षीण झाकी इस पत्र के माध्यम से प्राप्त होती है। साधक को कितना अधिक मानसिक सघर्ष करना पडता है यह पत्र उसका प्रमाण है और साधको के लिये प्रकाशस्तम्भ भी।

प्रियतमा भगवती !

घर को छोडे हुए आज लगभग ३ वर्ष बीत गये हैं, पूरे एक हजार दिन, कुछ इससे ज्यादा ही, पर इस लम्बी अवधि मे मैंने एक वार भी घर से सम्पर्क स्थापित नही किया, एक वार भी पत्र के द्वारा अपने वारे मे मैंने कुछ नही लिखा, एक वार भी अपनी व्यथा, अपने दु ख दर्द को तुम्हारे पास नही भेज सका, परन्तु इसका यह मतलब नही है कि मैं तुम्हे विस्मरण कर वैठा हू। घर को पूरी तरह से भुला वैठा हू, मुझे इस घर की बरावर याद वनी रही है, और प्रत्येक क्षण मैं तुम्हारे दु ख दर्द के चिन्तन मे भागीदार बना रहा हू।

इतना होते हुए भी मैं नहीं चाहता था कि मेरा और घर का सम्पर्क सूत्र जुडा रहे, क्योकि इससे फिर एक समस्या पैदा हो जाती। मेरा हृदय डावाडोल हो जाता। सभव है मेरे पावो मे फिर से बेडी डालने की कोशिश की जाती, मुझे विचलित करने का प्रयत्न किया जाता और इसीलिये मैं स्वय अपने स्वय के डर से भागता रहा।

मैं जानता हू कि ये तीन वर्ष कम नही हैं। पूरे १००० दिन तुम से अलग होकर मैंने जगलो मे बिता दिये हैं। मुझे वह क्षण याद हैं जब मैं तुमसे अलग हो रहा था। तुम्हारी आखो मे जो झरझर आसू बह रहे थे उनकी टीस इस समय भी मेरे

क्या अधिकार था ? उसकी उमगो को समाप्त करने का मुझे क्या हक था ? जब-जब भी मैं इन बातो को सोचता हू तो मेरी आखो की नीद उड जाती है, और पूरा दिमाग गरम होकर लावे की तरह उबलने लग जाता है।

मैं जानता हू कि तुम उस माहोल मे सुखी नही हो, क्योकि हमारा समाज एक दकियानूसी और सकीर्ण विचारो से ग्रस्त है। जहा पग-पग पर नारी के पावो मे बेडिया डाली हुई हैं, और उन बेडियो को देखकर, उसकी विवशता और छटपटाहट को देखकर पुरुष समाज अपने आप पर, अपने कृत्य और कुशलता पर प्रसन्न है।

पर ये बेडिया भी, अभाव दुख और कठिनाइया भी वह नारी झेल लेती है, यदि उसे पति का साहचर्य मिल जाय, परन्तु तुम्हे तो वह भी नही मिल पाया, जिसके भरोसे तुम इस घर मे आई थी। वह भरोसा ही अपने स्थान से भाग खडा हुआ, जिस विश्वास और सम्बल को लेकर तुम यहा आई थी। वह आधार ही तुम्हारे नीचे से हट गया, और तुम आधारहीन, बेबस, निरीह सी होकर दिन को शरीर तोड परिश्रम करती होगी, और रात के अधेरे मे आसुओ से तकिये को सिसक-सिसक कर भिगोती होगी।

मैंने तुम्हारे शरीर की कोमलता को अनुभव किया है, और साथ ही अपने घर के कठोर कार्यों के भी निकट सम्पर्क मे रहा हू, जहा प्रात चार बजे से रात बारह बजे तक काम के अलावा कुछ भी नही होता। जिस घर मे आराम को अभिशाप समझा जाता है, चक्की चलाना, दूर स्थानो से पानी लाना, गायो को दुहना, भोजन पकाना, गोबर लीपना, और घर के सैकडो कार्यों को करने के बाद भी उपेक्षा और ताने सुनना—कितना कठिनाईपूर्ण, कितना दुखदायी होता होगा और तुम उस यत्रणा की चक्की मे पिस कर तिल-तिल कर अपने आपको खाककर रही होगी।

अन्य स्त्रियो को तो दिन भर के जी तोड परिश्रम के बाद पति का कुछ साहचर्य मिल जाता है परन्तु तुम तो उससे भी वचित हो। तुम्हारी आखो मे आसू तैर जाते होंगे परन्तु उनको पोछने वाला वहा कोई नही है, जब परिश्रम से शरीर टूट रहा होगा तब भी तुम्हारा हालचाल पूछने वाला उस परिवार मे मुझे कोई नजर नही आता, क्योकि मैंने उस परिवार को भोगा है जहा पर वहू को पैरो की जूती समझा जाता है। जहा पर यह देखा जाता है कि वहू का कार्य केवल पशु की तरह काम करना होता है, आराम की इच्छा करना उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर की बात होती है, वास्तव मे ही तुम जितने कष्ट मे, जितनी यत्रणा पूर्ण स्थिति मे अपना समय व्यतीत कर रही हो, उसको सोच कर मैं काप उठता हू। तुम्हारा दुर्बल शरीर इतने थपेडो को किस प्रकार से झेल पाता होगा, क्या इतने थपेडे झेलने के बाद तुम आज तक बची भी रही हो या नही, मैं कुछ भी नही कह सकता।

परन्तु इस बात को भली प्रकार से समझ लो, कि जीवन मे अलौकिकता तभी प्राप्त हो सकती है, जबकि उसके पीछे कष्टो का लम्बा इतिहास हो, त्याग की नींव पर ही कुछ विशेष अलौकिक कार्य सम्पन्न हो सकते है। यदि मैं चाहता तो एक

सामान्य जीवन जी सकता था। मुझे किसी प्रकार की कमी नही थी, घर मे मा-बाप थे, भाई-वहन थे, सुन्दर पत्नी थी, आनन्ददायक क्षण थे और मैं कही पर भी छोटी-मोटी नौकरी कर अपना पेट पाल सकता था।

परन्तु तुम स्वय यह सोचो कि ऐसे साधारण जीवन को क्या जीवन कहा जा सकता है? मेरे जैसा पागल शायद ही कोई होगा जिसने खुशियो को छोड कर दुखो के साथ समझौता किया हो। आनन्द को त्याग कर अभावो के साथ रहने मे प्रसन्नता अनुभव की है। भोग और विलास को छोडकर परेशानियो, कष्टो और दुखो से नाता जोडा है, परन्तु मैंने यह सव अपने सीने पर पत्थर रखकर किया है, क्योकि मेरी एक ही भावना, लालसा और इच्छा थी कि मैं सामान्य मानव वनकर नही रहू। मेरे ब्राह्मणत्व को धिक्कार है, यदि मैं कुछ विशिष्टता प्राप्त नही कर सकू, ज्योतिष के क्षेत्र मे पूर्णता नही ला सका, तन्त्रो और मन्त्रो के अलौकिक रहस्य को उजागर नही कर सका, और मेरे देश की जो यह विशिष्ट थाती है उसे पुन समाज को नही सौप सका।

तुम्हे छोडने के वाद मैं एक क्षण भी आराम से नही जी सका हू, इसके पीछे कोई भोग या वासना की वान नही है, अपितु मेरे मन की यह विडम्वना है कि मैं जिस रास्ते पर चला हू क्या वह उचित है? मैं जो कुछ करने जा रहा हू, क्या मैं उस कार्य को कर सकूगा। मेरे सामने जो लक्ष्य है क्या मैं उस लक्ष्य को पा सकूगा। इस प्रकार के सैंकडो प्रश्न मेरे मानस मे वरावर घुमडते रहे है और इन विचारो के अधड ने एक क्षण के लिये भी मुझे चैन से सोने नही दिया है।

मेरे पत्र को पढते ही तुम्हारे होठो ने वुदवुदाया था कि यह पागलपन है और आज मै वास्तव मे ही अनुभव कर रहा हू कि मैं पागल हू। इन तीन वर्षों मे मैंने इस शब्द पर कई वार विचार किया है और मै यह अनुभव कर रहा हू कि वास्तव मे ही मुझमे इस प्रकार की स्थिति है। पर विना पागल हुए कोई भी वस्तु प्राप्त नही हो पाती। विद्यार्थी जव अपनी डिग्री के लिये पागल हो जाता है, रात-रात भर जागता है उसकी भूख और प्यास उड जाती है तव जाकर कही उसे सफलता मिलती है। भक्त अपने प्रभु के पीछे पागल हो जाता है, उसे न अपने शरीर का होश रहता है और न खानपान का, तव उसे उस प्रभु के दर्शन हो पाते हैं। तुलसी, सूर, मीरा, आदि एक प्रकार से पागल ही थे, उनका पूरा जीवन अपने लक्ष्य के पीछे पागल वन जाता था और इस पागलपन के वाद ही वे अपने लक्ष्य तक पहुच सके थे। वास्तव मे ही विना पागल हुए कोई वस्तु प्राप्त नही हो पाती, इस दृष्टि से मैं पागल हू और आज इस बात को अनुभव कर रहा हू कि मैं भी अपने लक्ष्य के पीछे जव तक पागल नही हो जाऊगा तव तक मुझे अपना लक्ष्य प्राप्त नही हो सकेगा।

तुम्हारे होठो ने मुझे पागल कहा है तो वास्तव मे ही मैं पागल हू और मैं चाहता हू कि तुम भी मेरे विचारो का अनुसरण करती हुई पगली बनो। हमारा पूरा धर्मशास्त्र इस वात पर एक मत है कि पत्नी की गति पति के अलावा कुछ भी नही।

पति ही उसका गुरु, उसका पथ-प्रदर्शक और उसका सर्वस्व होता है, 'पतिरेको गुरु स्त्रिणाम्' मनु ने कहा है कि पत्नी को अपने आप मे उसी प्रकार का आचरण और व्यवहार ढाल लेना चाहिए जिस प्रकार उसका पति हो, इसीलिये धृतराष्ट्र की पत्नी ने जब देखा कि उसका पति अन्धा है तो उसने भी जीवन भर के लिये अपनी आखो पर पट्टी बाध ली। वेवस्वत की पत्नी ने उसी प्रकार अपने जीवन को ढाल दिया था जिस प्रकार से उसका पति था। दात्रेय एक भिखारी था परन्तु वह उच्चकोटि का विद्वान भी था। यद्यपि उसकी पत्नी राजा की पुत्री थी फिर भी उसने पति के समान ही याचनावृत्ति को अपना लिया था। इसी प्रकार-यदि तुम्हारे होंठो ने मुझे पागल कहा है तो मै भी चाहता हू कि तुम पगली बन सको और अपने जीवन के त्याग से, मुझे बदल सको जिससे कि मैं अपने लक्ष्य तक पहुच सकू।

मेरा प्रथम पागलपन यह है कि मै सुख-सुविधापूर्ण जीवन को सही जीवन नही मानता। मुझे यह देखकर दुःख होता है कि मेरे देश के साठ करोड नर-नारी पराधीनता के जुए से बधे हैं उनमे से कुछ मुट्ठी भर लोग सम्पन्न हैं, बाकी पूरा देश अभावो की चक्की मे पिस रहा है, उनके पास खाने के लिये भोजन, पहनने के लिये पूरा वस्त्र तथा सोने के लिये छत तक नही है। ऐसी स्थिति मे यदि मैं आराम का जीवन व्यतीत करता हू तो यह मेरे लिये अनुकूल नही है, मुझे कोई अधिकार नही है कि मैं भरपेट भोजन करू, रग-रेलिया मनाऊ या आनन्द के साथ अपने जीवन को व्यतीत करू। मैं चाहता हू कि उन दुखियो के अभावो को दूर कर सकू, उनके आसुओ को पोछ सकू, उनके अभावो, बाधाओ और परेशानियो मे भागीदार बन सकू।

मेरा दूसरा पागलपन यह है कि मैं ब्राह्मण हू और अपने ब्राह्मणत्व को पहचान सका हू। मेरे पूर्वज उच्चकोटि के ब्राह्मण थे। उनके पास अलौकिक सिद्धिया थी, ज्ञान का अक्षय भडार था, ज्योतिष के क्षेत्र मे वे अद्वितीय थे। काल को अपने चिन्तन के माध्यम से उन्होंने बाध रखा था, और भविष्य की उन अधेरी खाइयो मे वे सफलतापूर्वक झाकने मे सफल हो सके थे, जहा पर सामान्य मानव की दृष्टि नही जाती।

पर आज वे विद्याए कहा हैं, ज्योतिष को सही रूप मे जानने वाले इस देश मे कितने हैं ? तन्त्र और मन्त्र की वास्तविकता कहा पर है ? आकाश-गमन तथा परदेश गमन की सिद्धिया कहा है ? पर—पर— यह सब कुछ मेरे देश मे था। हम ब्राह्मणो के पास इस प्रकार की सिद्धिया थी कि हम अपने शरीर मे से प्राण निकाल कर निर्जीव शरीर मे प्राणो का सचार कर सकते थे। यह बहुत दूर की बात नही है, शकराचार्य ने ऐसा कर दिखाया था—पर आज ये सब कल्पनाए बन गईं। हमारे ज्ञान का मखौल उडाया जा रहा है, हमारी विद्याए उपहास का पात्र बन गई हैं, हमारे ब्राह्मणत्व पर लाछन लगाया जा रहा है, और इतना सब कुछ होते हुए भी हमारे कानो पर जू तक नही रेंगती। हम अपने ही राग-रग मे मस्त हैं, अपने ब्राह्मणत्व को भुला बैठे हैं, अपने पूर्वजो की थाती लोप हो रही है और हम आनन्द से जीवन जी रहे है। क्या यह उचित है ? क्या इस प्रकार हम इन विद्याओ से अलग नही हो जायेंगे ? क्या कुछ

समय बाद इस प्रकार की अलौकिक सिद्धियो से हमारा देश वचित नही हो जायेगा ? ये और इस प्रकार के सैकडो प्रश्न मेरे मानस मे घुमड रहे थे और उस दिन मेरे हृदय को सबसे अधिक चोट लगी, जिस दिन एक साधु ने मुझे यह कहा कि ब्राह्मण अपने आप मे समाप्त हो गया है । कुछ समय बाद ब्राह्मण उस व्यक्ति को कहा जायगा जो केवल पेट भरने को ही अपना जीवन समझता हो, और अपनी उदरपूर्ति के लिये यजमान को ईश्वर से भी ज्यादा मान्यता देता हो ।

और मैने उसी दिन निश्चय कर लिया था कि मैं इस ब्राह्मणत्व को लोप नही होने दूगा । यदि प्रभु ने मुझे शरीर दिया है तो यह शरीर एक सामान्य जीवन बन कर नही रह पायेगा । जब तक यह कुछ विशिष्टता प्राप्त नही कर लेगा तब तक मैं अपने जीवन को जीवन नही कहूगा, फिर मेरे और कीडे-मकोडो के जीवन मे फर्क ही क्या रह जायगा ?

पर इस प्रकार की आलौकिक सिद्धिया, तत्र, मत्र बाजारो मे नही बिकते । गली-कूचे मे फिरने वाले साधुओ के पास इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता । इस प्रकार के व्यक्ति ससार से उदासीन हैं, समाज से कटे हुये है, और प्रकृति की गोद मे, उसके साहचर्य मे अपने आपको लिप्त किये हुए है । मुझे उन लोगो तक, उन साधुओ तक, उन विशिष्ट महर्षियो तक पहुचना है, जिनके पास इस प्रकार की अलौकिक सिद्धिया हैं ।

आज की नई पीढी ने पैंट और कोट पहनना, अग्रेजी बोलना और विदेशियो की तरह रहन-सहन अपनाना अपने जीवन का धर्म मान लिया है । ब्राह्मण का बेटा क्लर्क बना अपना गौरव समझने लगा है, ऐसी स्थिति मे यह विद्या कैसे सुरक्षित रहेगी । मैंने इस बात को अनुभव किया कि जिन विभूतियो के पास यह ज्ञान है वे इने-गिने ही रह गये हैं, और यदि वे समाप्त हो गये तो यह दुर्लभ ज्ञान, यह अलौकिक सिद्धिया उनके साथ ही समाप्त हो जाएगी ।

इसीलिये मैं अपने जीवन को सामान्य रूप से नौकरी करके बिताना पाप समझने लगा था । समाज को आगे बढाने के, उसे जिन्दा रखने के, कई प्रकार है । राजनीति के द्वारा भी समाज मे चेतना दी जा सकती है । क्रान्ति के द्वारा भी समाज को आगे बढाया जा सकता है, परन्तु इस प्रकार से जो समाज बनता है वह खोखला होता है । क्योकि वह देह तो सुन्दर बन जाती है परन्तु उसकी आत्मा शून्य होती है । उस आत्मा मे स्पन्दन इस प्रकार के ज्ञान की चेतना के द्वारा ही दिया जा सकता है, और इसीलिये मैंने इस रास्ते को अपनाया, यदि यह मेरा पागलपन है तो मैं इस पागलपन पर खुश हू । मैंने आनन्द का जीवन छोडकर दुखो का जीवन स्वीकार किया है । खुशियो को त्याग कर अभावो के साथ रहने मे प्रसन्नता अनुभव करने लगा हू । राग-रग, भोग-विलास आदि को छोडकर जगलो मे भटकना, भूमि पर सोना तथा कठिनाइयो, परेशानियो, भूख और अभावो को साथ लेकर पहाडो मे इधर-उधर पागलो की तरह भटकना मैंने स्वीकार किया है— और मैं आज इस बात को मानता हू कि

मैं जिस रास्ते पर चल रहा हू वह रास्ता इतना आसान नही है, उसमे काटे-ही-काटे हैं, फूलो की कल्पना करना ही मूर्खता है।

मेरा तीसरा पागलपन यह है कि मैं किसी भी कीमत पर उन लुप्त विद्याओ को प्राप्त करना चाहता हू जो कि अलौकिक हैं, और इन तीन वर्षों मे मैंने यह अनुभव किया है कि मैं अपने लक्ष्य पर पहुच सकूगा। घर पर जब मैं था तब मुझे विश्वास नही था कि इस प्रकार की अलौकिक सिद्धिया वास्तव मे होती हैं। मत्रों मे इतनी अधिक शक्ति होती है कि वह असभव को भी सभव कर सकता हो। परन्तु आज जब इस क्षेत्र मे घुसा हू, थोडा बहुत जो कुछ प्राप्त किया है उसके आधार पर मैं यह कहने मे समर्थ हू कि आज भी इस प्रकार के साधु जीवित है जो अलौकिक हैं, जिनके पास ज्ञान का अक्षय भण्डार है, मैंने उन साधुओ के पास पहुचने का प्रयत्न किया है और मुझे अपना लक्ष्य स्पष्ट दिखाई देने लगा है।

घर से निकलने के बाद मैं एक दिन भी आराम से सो नही सका हू। तुम यदि आज मेरी हालत देख लो तो शायद अपने आपको सौभाग्यशाली समझोगी। तुम्हारे पास सिर ढकने के लिये छत है, खाने के लिये रूखी-सूखी बाजरे या मक्के की रोटी तो हैं परन्तु मेरे पास तो यह भी नही है। कोई निश्चित नही है कि शाम कहा पर बीतेगी, सुबह कहा पर होगी। शाम को भोजन प्राप्त भी हो सकेगा या नही। शाम तक जीवित भी रह सकूगा या नही, कुछ भी नही कह सकता। सब कुछ अनिश्चित है। परन्तु फिर भी मेरी आखो की चमक टूटी नही है, बल्कि उसमे तीव्रता ही आई है। क्योकि इसके बावजूद भी मुझे कुछ ऐसे अलौकिक साधु मिले है जिनके पास इस प्रकार की विद्याए है और उनके द्वारा मुझे मिला है—बहुत कुछ मिला है।

यह जीवन कितना कष्टदायक है यदि मैं इस पत्र के माध्यम से व्यक्त करू तो तुम्हारी आखें भर जायगी। मेरे पास एक धोती और एक कुर्त्ता है, जिसे मैं स्नान करने के बाद नित्य बदल लेता हू, इसके अलावा किसी प्रकार का कोई भौतिक साधन न तो मेरे पास है और न अपने पास रखना चाहता हू।

नगे पाव चलने से पूरे पाव जगह-जगह से फट गये है, और कई स्थानो से तो खून भी रिसने लगा है, क्योकि एक साधु ने यही शर्त रखी थी कि यदि नगे पाव आगे के साल भर तक विचरण कर सको तो तुम ज्ञान पाने के अधिकारी हो, और मैंने उस ज्ञान की प्राप्ति के लिये इस शर्त को भी स्वीकार कर लिया है। मेरी यह धारणा है कि मुझे प्रत्येक स्थान का अन्न स्वीकार नही करना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति के हाथ का भोजन ग्रहण नही करना चाहिए, इसीलिये मैं दिन मे एक बार किसी एक ब्राह्मण परिवार से एक समय का आटा स्वीकार कर लेता हू और अपने हाथो से पकाकर खा लेता हू। उसके साथ न तो साग होता है और न अन्य साधन। कई बार तो इस प्रकार का परिवार ही नही मिलता और ऐसी स्थिति मे भूखे रह जाना पडता है। हकीकत तो यह है कि अब कुछ स्वभाव ही ऐसा हो गया है कि भूखे रहकर मैं ज्यादा आनन्द अनुभव करने लगता हू।

पिछले महीने मैं एक ऐसे स्थान पर था जो आबादी से काफी दूर था। उस साधु के पास जो ज्ञान था वह अलौकिक था। क्योकि वह ओघड था और जैसा कि तुम जानती हो ओघड—ओघड ही होता है। उसने एक दिन मेरी छोटी-सी गलती पर इतने जोर से डडा मेरी पीठ पर मार दिया था कि आज भी उस स्थान पर दर्द करने लगती है। जिस समय वह डडा लगा था तब तुम्हारा स्मरण हठात् हो आया था। उस दिन की घटना मेरी आखो के सामने तैर गई जबकि तुम्हारे हाथो से दूध की बाल्टी गिरने पर पिताजी ने क्रोध के आवेश मे जलती हुई लकडी से तुम्हारी पीठ पर वार कर दिया था, उस घटना को मैं भुला नही पाया था, क्योकि वह चोट तेरी पीठ पर नही अपितु मेरे हृदय पर लगी थी, वह आघात तेरी पीठ पर नही मेरे समाज की निर्लज्जता और मेरे सकोच पर लगी थी—फफोला पड गया था। दो-तीन दिन तक तो तुम मुझसे छुपाती रही, परन्तु जब वह घाव बन गया तब मुझे ज्ञात हुआ और आज जब उस डडे के चोट की कसक अपनी पीठ पर अनुभव करता हू तब महसूस होता है कि उस चोट का दर्द तुमने कितनी शालीनता के साथ भोगा था। उस शारीरिक चोट से भी ज्यादा गहरी खरोच तुम्हारे मानस पर पडी थी क्योकि तुम एक अलग वातावरण से आई थी, और मेरे घर पर एक अलग वातावरण देखने को मिला था। तुम्हारे घर मे एक अलग भावना थी, एक अलग विचार पद्धति थी, एक अलग जीवन का रहन-सहन था। जबकि मेरे घर का माहौल उससे बिल्कुल विपरीत था, और इस माहौल मे यदि बहू की पीठ पर जलती हुई लकडी मार दी जाती है तो यह शिक्षा का एक अध्याय माना जाता है।

इन तीन वर्षों मे पता नही तुमने और कितनी जलती हुई लकडिया खाई होगी, कितनी गालियो की बौछार अपने ऊपर झेली होगी। कितनी यत्रणा और कष्ट को तुम दात भीचकर सह रही होगी—कुछ नही कह सकता।

यह पत्र मै ऐसे स्थान से लिख रहा हू जहा आस-पास कोई बस्ती नही है। इस समय रात के तीन बजे हैं और सारा जगल साय-साय कर रहा है। कभी-कभी जगली पशुओ की आवाजें जगल की इस भयानकता को और भयानक बना देती हैं। यहा पर एक छोटी-सी कुटिया है जिसमे साधु सोये हुए है, और बाहर इस दालान मे बैठकर मैं तुम्हे पत्र लिख रहा हू। मिट्टी के तेल की एक छोटी-सी ढिबरी जल रही है। पिछले दिनो ही एक गृहस्थ से कुछ कागज और एक कलम माग ली थी। क्योकि तुम्हे कई दिनो से पत्र लिखने की सोच रहा था।

इस पत्र लिखने के पीछे कोई वासना या मोह नही है जितनी कि यह इच्छा है कि तुम बहुत अधिक मेरे बारे मे चिन्तित न हो। कम-से-कम तुम्हे यह तो अहसास हो कि मैं अभी तक जीवित हू। यदि मैं तुलना करता हू तो मैं यहा तुम्हारे कष्टो की अपेक्षा ज्यादा सुखी हू। तुम्हारे प्रति मेरा एक कर्त्तव्य है, तुम्हारे साथ मेरी भावना जुडी हुई है। अग्नि को साक्षी रख कर मैंने तुम्हारा वरण किया है—और इसी धर्म के नाते मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं तुम्हे अपने मन की बात कहू।

जान बूझकर मैं अपना पता नही दे रहा हू और सही वात तो यह है कि साधुओ का कोई अता-पता नही होता रमता जोगी और वहता पानी' का कोई ठिकाना नही होता कि आज कहा है और कल कहा होगा।

यह एक तरफ का पत्र व्यवहार है, तीन वर्षों के वाद यह पहला पत्र लिखा है, और दूसरे पत्र की इच्छा अभी मत करना, हो सकता है मैं दो या तीन या चार वर्षो के वाद पत्र लिख सकू। परन्तु इतना निश्चित समझना कि मैं जहा भी हू सुखी हू, स्वस्थ हू, मेरे मन मे तुम्हारे प्रति जरूरत से ज्यादा अपनत्व है और यह अपनत्व क्षीण नही होगा ' कभी भी क्षीण नही होगा।

यद्यपि मेरे पिता जरूरत से ज्यादा क्रोधी हैं। यद्यपि मेरे माता और पिता का व्यवहार तुम्हारे प्रति वहुत अधिक अनुकूल नही होगा। सस्कारो की वजह से वे तुम्हे प्रताडित करते होंगे, परन्तु फिर भी तुम्हे धैर्य से काम लेना है। किसी भी हालत मे उनके सामने अपनी जवान नही खोलनी है। यदि वे जलती हुई लकडियो से भी तुम्हे पीट लें तव भी तुम्हे उफ् नही कहना है। खाने के लिए जो कुछ भी मिल जाए उसी को भगवान का प्रसाद समझकर स्वीकार कर लेना है, किसी भी प्रकार की इच्छा या वाचना मत करना।

सब कुछ होते हुए भी वे मेरे माता-पिता हैं, मेरे लिए आदरणीय हैं, उन्होंने जन्म दिया है, इस ससार मे कुछ करने के लिए मुझे पाल-पोस कर वडा किया है, अत उनके इस ऋण को मैं स्वीकार करता हू। यद्यपि मैं उनसे दूर हू इसलिए शरीर से तो मैं उनकी सेवा नही कर पा रहा हू, पर मुझे विश्वास है कि तुम्हारी तरफ से सेवा मे कोई कमी नही आएगी। यही नही अपितु तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम उनकी सेवा जरूरत से ज्यादा करो, क्योकि मेरे हिस्से की भी सेवा तुम्हे ही करनी है।

सेवा मे किसी भी प्रकार का प्रतिदान नही होता। सेवा केवल एकागी होती है उसके माध्यम से किसी प्रकार की प्राप्ति की भावना नही होती। तुम्हारे लिए वे सब कुछ है, वह परिवार ही तुम्हारा परिवार है और उस परिवार की शरीर से और मन से सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है इसमे तुम्हारी तरफ से किसी प्रकार की न्यूनता नही आएगी।

यह पत्र केवल तुम्हारे लिए है और इस पत्र को गोपनीय रूप से ही तुम्हे रखना है। तुम्हारे मन मे उस परिवार के प्रति जरूरत से ज्यादा आदर और सम्मान बना रहे, चाहे किसी भी प्रकार की स्थिति हो, अपने आप को तुम्हे हर हालत मे दीपशिखा की तरह जलते रहना है। मैंने तुम्हारी भावनाओ को पढा है तुम्हारे व्यक्तित्व से जितना भी परिचित हुआ हू उससे मैं आश्वस्त हू और मुझे तुम्हारे त्याग की रोशनी मे अपना पथ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

आज भले ही न सही, परन्तु आने वाला समय इस बात को स्वीकार करेगा कि मेरे निर्माण के पीछे सब कुछ तुम्हारा है। तुम्हारा त्याग मेरे त्याग से बहुत बडा

चढा है। तुम्हारे त्याग की रोशनी मे ही मैं आगे बढ सका हू। मेरे पीछे तुम्हारा बहुत बडा सबल है, तुम्हारी प्रेरणा है और शक्ति है।

तुम्हारा समय ईश्वर चिन्तन मे ज्यादा लगना चाहिए, प्रभु के सामने तुम्हारी यही प्रार्थना होनी चाहिए कि स्वामी जिस उद्देश्य के लिए गए हैं उस उद्देश्य की पूर्ति मे वे सफल हो और अपने ज्ञान से समाज को, आने वाली पीढियो को रोशनी दे सके, उनका पथ प्रशस्त कर सकें

तुम्हारा साथी
(नारायणदत्त श्रीमाली)

प्रेषक डा० नारायणदत्त श्रीमाली

स्थान अज्ञात

प्राप्तकर्त्ता भगवती श्रीमाली

आलोक—घर से निकलने के कई वर्षों बाद यह पत्र पण्डितजी ने पत्नी के नाम भेजा था, जिसमे उन्होंने उनके कर्त्तव्य को स्पष्ट किया था, वही साथ-ही-साथ इस पत्र के माध्यम से उनके मानस चिन्तन की झाकी भी प्राप्त होती है उन्होने इन वर्षों मे कितना मानसिक सघर्ष और जन कल्याण के लिए कितना अधिक त्याग और बलिदान किया था उसका आभास इस पत्र के माध्यम से प्राप्त होता है जो कि साधको के लिए एक दीप-स्तम्भ की तरह ज्योतिर्मय है।

प्रिये !

बहुत समय बीत गया है, जबकि मैं तुम्हे आज पत्र लिखने बैठा हू, मुझे याद नही आ रहा है कि मैंने इससे पूर्व तुम्हे कब पत्र लिखा था, परन्तु इतना याद है कि मैंने जो पत्र लिखा था उसको भेजे हुए चार वर्ष से कुछ ज्यादा ही हो गया है।

इन चार वर्षों मे मैंने बहुत कुछ भोगा है, बहुत कुछ सहन किया है और जिस उद्देश्य से मैं घर से निकला था उस उद्देश्य की पूर्ति मे अनुकूलता प्राप्त हुई है, जब निकला था तब मेरा मन आशकाओ से ग्रस्त था, पता नही मैं जिस उद्देश्य के लिए जा रहा हू उस उद्देश्य की प्राप्ति होगी भी या नही, मैंने अपने जीवन का जो बहुत बडा जुआ खेला है उसमे सफल हो सकूगा या नही ? मैं जान-बूझ कर अपने यौवन को अभावो की भट्टी मे घुलने के लिए दे रहा हू, क्या यह उचित है या नही ? इतना हठ करके मैं जा रहा हू मेरे जाने से पिता, अपने आपको बेसहारा अनुभव करने लगेंगे, जिस समय मुझे घर मे रहकर मा की सेवा करनी चाहिए, उसके आसुओ को पोछना चाहिए, उस समय मैं इन सबको छोडकर एक ऐसे रास्ते पर बढ रहा हू

जिसका कोई ओर-छोर दिखाई नही दे रहा है, मेरे साथ ऐमा कोई पथ-प्रदर्शक भी नही है जिसके सहारे मैं आगे वढ सकू, ऐसी कोई ज्योति भी मेरे हाथ मे नहीं है जिसके सहारे मैं इस अन्धकार मे वढता हुआ लक्ष्य पर पहुच सकू। इस प्रकार के सैकडो प्रश्न मेरे मन को कुरेद रहे थे, परस्पर विरोधी विचार मेरे मानस को उद्वलित कर रहे थे और मैं भयकर तूफानो से घिर कर अपने मस्तिष्क को वढी कठिनाई से सयत रखने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु मेरे सामने कुछ भी स्पष्ट नही हो रहा था।

ऐसे ही परस्पर विरोधी विचारो के अधड मे जब मैं लगभग अपने विचारो से डिगने जा रहा था, जब यह निश्चय करने जा रहा था कि मुझे इस अनजाने रास्ते पर नही वढना चाहिए, वर्तमान मे जो सुख-सुविधाए हैं उनको छोड कर अभावो के दलदल मे नही फसना चाहिए और जो कुछ प्रभु ने दिया है उसी को पाकर सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, जो कुछ प्राप्त है उसी मे सन्तोप कर लेना चोहिए। सच कह रहा हू उन दुर्लभ क्षणो मे मैं अपने विचारो से फिसल गया था, मित्रो सम्वन्धियो और परिचितो ने जो भयकर वातावरण मेरे सामने वढा-चढा कर वताया था उससे जाने का निश्चय मैं मन-ही-मन छोड चुका था, ऐसे ही क्षणो मे तुम दीपशिखा की तरह मेरे सामने प्रकट हुई। मैंने तुम्हारा कारुणिक रूप भी देखा है और तेजस्वी तथा ओज पूर्ण चेहरा भी। तुम्हारा आसुओ से भरा हुआ मुख-मण्डल भी मेरे सामने साकार हुआ है और दृढता तथा तेजस्विता से युक्त चेहरा भी। जब मैं लगभग अपने आपमे टूट चुका था, मा की आखो के वहते आसुओ से लडखडा चुका था, तव तुमने मेरे शरीर मे एक नई विचारधारा पैदा की थी, एक नया रास्ता मेरे सामने स्पष्ट किया था। तुम्हारा वह चेहरा, तुम्हारी वह दृढता और तुम्हारी वह ओजस्विता आज भी मेरे सामने ज्यो-की-त्यो साकार है। सच कहू तो इन ७-८ वर्षों मे तुम्हारी यह दृढता ही मेरा पाथेय वनी है, मेरे लिए वह प्रकाश विन्दु की तरह जगमगाती रही है, जव-जव भी मैं दुर्वल और कमजोर पडा हू, उसने मुझे सवल, साहस और दृढता दी है।

प्रारम्भ मे तुम जरूर हताश हो गई थी, एक प्रकार से अपने जीवन से ही निराशा अनुभव करने लग गई थी। ऐसा लगने लगा था जैसे तुम्हारे शरीर का पूरा खून निकल गया हो, चेहरा फीका पडने लग गया था और तुम मे और मृत्यु मे वहुत ज्यादा फासला अनुभव नही हो रहा था, परन्तु ज्योही मुझमे कायरता का सचार हुआ, तुम्हारा रूप ही वदल गया, तुम्हारी वह श्रीहीन आखें ओजस्विता मे परिणत हो गईं, और चेहरे पर एक अपूर्व कान्ति, एक अपूर्व चमक आ गई जो कि अपने आप मे मेरे लिए अन्यतम थी, आश्चर्यजनक थी।

मैंने इतिहास मे राजपूत महिलाओ के जौहर पढे थे। मैंने पढा था कि वे महिलाए जो असूर्यम्पश्या कहलाती थी, मुस्कराती हुई, खिलखिलाती हुई अग्नि को समर्पित

हो जाती थी। आग मे कूदते समय भी उनके चेहरे पर एक अपूर्व चमक रहती थी, मृत्यु का वरण करते समय उनके चेहरे की कान्ति और बढ जाती थी, और मैने ऐसा दृश्य पहली बार प्रत्यक्ष रूप मे देखा जब तुमने स्पष्ट शब्दो मे मुझे बताया कि इस प्रकार हताश और निराश होने की जरूरत नही है, जो जीवन मे खतरा नही ले सकता

**डॉ० श्रीमाली**

वह कुछ भी नही कर सकता । जो मृत्यु से डरता है उसका जीवन स्पन्दित होते हुए भी मृत्यु तुल्य है । जो असफलताओ की आशकाओ से घबरा जाता है वह कायर है, बुजदिल है ।

बातचीत के दौरान तुमने आगे कहा था कि जब आपने इस रास्ते पर बढने का निश्चय कर ही लिया है तो फिर इस प्रकार लडखडाने की जरूरत नही है, इस प्रकार बुजदिली प्रदर्शित करने की आवश्यकता नही है, जो समुद्र के किनारे बैठे रहते हैं उनके हाथ मे घोघे ही आते है पर जो खतरा उठाकर समुद्र की बीच धार मे कूद जाते हे व युवक ही मोती प्राप्त करने मे सफल होते है, जीवन मे यदि तुम्हे घोघे ही चुनने है तो यह जीवन ठीक है, पर घोघे चुनने वाले कायर और बक होते हैं, वीर और साहसी किनारे पे नही बैठे रहते, मगरमच्छ और खतरनाक जन्तुओ से घबराते नही हैं, अपितु बिना हिचकिचाहट के समुद्र मे कूद जाते है और जीवन मे सफल हो जाते है ।

मैने तुम्हारा वरण किया है एक ऐसे पति का वरण किया है जो साहसी है, जिसमे कुछ करने की भावना है, जिसमे आगे बढने की लालसा है, जो समाज मे कुछ कर दिखाने की क्षमता रखता है, मैंने कायर और निर्बल व्यक्ति से शादी नही की, नपुमक और श्रीहीन व्यक्ति की मेरी नजरो मे कोई इज्जत नही है, जो अपने आपसे हार जाता है उसकी ससार भी कद्र नही करता, यदि एक बार आप मेरी नजरो से गिर गए तो फिर वापिस मेरी नजरो मे इज्जत नही पा सकेंगे, आप मेरे पति हैं, आपका मम्मान करना मेरा कर्त्तव्य है । आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना मेरा धर्म है परन्तु मेरा यह भी धर्म है कि जब आपके पाव लडखडाने लगे तब आपको सम्बल दू, जब आप निराश और हताश हो जाए तब आपको सहारा दू, जब आप अपने आपमे कमजोरी अनुभव करने लगें तब आपमे आशा का सचार करू और मैं यह कह कर अपने धर्म का निर्वाह कर रही हू ।

आपमे कमजोरी इसलिए आई हे कि आपके मित्रो ने एक भयानक चित्र आपके सामने खीच दिया हे । पर आप यह देखे कि क्या उन्होने अपने जीवन मे कुछ किया है ? क्या उनको कोई जानता है ? इस गली के बाहर क्या उनका कोई अस्तित्व है ? क्या वे समाज को कुछ देने मे समर्थ हैं ? यदि नही, तो फिर उनकी बात मानने से क्या लाभ ? वे स्वय कायर हैं और दूसरो को भी कायरता के अलावा कुछ भी नही दे सकते । जिसके पास जो कुछ होता है वह वही तो दे सकता है । वे कायर हैं, बुजदिल है, जीवन से चूके हुए हैं अत उनके पास निराशा और हताशा देने के अलावा कुछ भी नही है ।

आप विचलित इसलिए हो गए कि आपने पिताजी के उतरे हुए चेहरे को देखा है, आप निराश इसलिए हो गए कि आपने मा की आखो मे बहते हुए आसुओ को देखा है, आपने छोटे भाई के उदास चेहरे को अनुभव किया है, आपने ऐसा महसूस किया है जैसे इस घर की रौनक समाप्त हो गई है, आपने ऐसा पाया होगा कि जैसे

इस घर की रोनक समाप्त हो गई है, आपने ऐसा पाया होगा कि जैसे इस घर पर मृत्यु का सन्नाटा छा गया हो और इस वातावरण ने आपके पावो मे कमजोरी ला दी होगी, पर क्या यह उचित है ? जब आपने एक निश्चय कर ही लिया है तो फिर उस निश्चय मे न्यूनता लाना उचित नही है, जो भी इस प्रकार का निश्चय करेगा उसे तो इन समस्याओ को पहले से ही देखना पडेगा। जो इस प्रकार आगे बढना चाहेगा उसके सामने ये परेशानियाँ आएगी ही। शुभ कार्य मे पग-पग पर बाधाए और कठिनाइया आती है, पर इससे वे निराश नही होते, हमारा इतिहास इन तथ्यो से भरा पडा है, राम के अपने कर्त्तव्य-निर्वाह मे क्या इस प्रकार की बाधाए नही आई थी, क्या उनके सामने दशरथ का श्रीहीन चेहरा और कौशल्या की अश्रुपूर्ण आखें नही थी ? क्या गौतम बुद्ध घर से निकलते समय इन सारे विचारो के बवडर से नही उलझे थे ? पर इनसे वे अपने पथ से विचलित नही हुए। अपितु इस प्रकार की बाधाओ ने तो उनके पैरो मे और ज्यादा मजबूती ला दी थी, इस प्रकार की कठि-नाइयो ने उनके जीवन मे और ज्यादा दृढता पैदा कर दी थी और इसीलिए वे जीवन मे सफल हो सके हैं। मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सके है और उस युग के समाज को बहुत कुछ दे सके है।

आप स्वय सोचिए यदि इस प्रकार राम अपने पथ से अपने निश्चय से लडखडा जाते तो क्या उनमे और एक साधारण राजपूत मे कुछ अन्तर रहता ? यदि यशोधरा का मोह बुद्ध को बाध लेता तो क्या आज हम उनका नाम स्मरण रख पाते ? क्या शकराचार्य अपनी मा की आखो के आसुओ से विचलित हुए थे ? हमारा तो पूरा इतिहास इस प्रकार की घटनाओ से भरा पडा है और आज यदि हम उन युग-पुरुषो को स्मरण करते है तो इसलिए कि उनके सामने भी इस प्रकार की चुनौतिया थी, इस प्रकार के विरोधी विचार उनके दिमाग मे भी उठे थे, इस प्रकार का विरोधी वातावरण उनके सामने भी था, पर वे कायर नही बने, उन्होंने अपने जीवन मे हार कर नपुसकता प्रदर्शित नही की, अपितु उन्होने मुट्ठी बांध कर खडे हुए, समाज को चुनौतिया दी और अपने पूरे जीवन को दाव पर लगा दिया। इसीलिए आज वे जीवित हैं और आगे भी सैकडो वर्षो तक जीवित रह सकेंगे।

यह सही है कि जब मैंने विवाह किया तब मेरे दिमाग मे बहुत कुछ सुखद कल्पनाए थी, यह उम्र कल्पनाजीवी होती है, मेरी सहेलियो ने भी मुझे बहुत कुछ बताया था और वे मुझसे बहुत कुछ उम्मीदें भी रख रही होगी, परन्तु जब मै यहाँ आई तब मैंने अपने आपको एक विचित्र वातावरण मे अनुभव किया, यहा का वाता-वरण मेरे घर के वातावरण से सर्वथा भिन्न था। मैं बडी कठिनाई से अपने आपको सयत कर सकी, मेरे जो दिवास्वप्न थे वे तो एक महीने मे ही काफूर हो गए। मेरी जो सुखद कल्पनाए थीं वे विवाह के कुछ समय के बाद ही हवा मे विलीन हो गई, मैंने अपने मन मे यह निश्चय कर लिया कि मुझे जब अपना जीवन इसी वातावरण मे बिताना है तो मुझे अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाना ही होगा। जब मैं

धरती पर सोई तो कुछ दिनो तक तो नीद ही नही आई, जब मैंने पहली बार मक्के की रोटी चन्दलिए के साग के साथ खाई तो उसका स्वाद एक अजीब अटपटा-सा लगा और मैं भूखी ही उठ गई परन्तु ऐसा कब तक करती ? मैं धीरे-धीरे उसके अनुकूल अपने आपको बनाने का प्रयत्न करती रही, उस वातावरण मे अपने आपको ढालने की कोशिश करती रही और अपने जीवन को इस प्रकार से कठोर बनाने का प्रयत्न करती रही जिससे कि इस प्रकार के वातावरण को वह झेल सके ।

मैंने काफी कुछ पढ रखा था, मैंने पढा था कि जब वहू पहली बार ससुराल जाती है तो उसका बहुत-बहुत स्वागत होता है, उसके आराम का, उसके सुख-सुविधाओ का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है, देवर उसे गुदगुदाते हैं, ननदे मजाक करती हैं, हमजोली बहुए उससे चुहल करती है और उसका वह समय मन्त्र-मुग्ध की तरह बीत जाता है, पता ही नही चलता कि कब प्रात होता है, कब साझ उतर आती है और कब रात शुरू हो जाती है ।

परन्तु मैंने यहा ऐसा कुछ भी नही पाया, अपितु इससे बिल्कुल भिन्न वातावरण अनुभव किया, शुरू-शुरू मे तो मैंने ऐसा अनुभव किया जैसे मैं घनघोर जगल मे आ गई हू, चारो तरफ एक आतक चतुर्दिक एक डरावना-सा माहौल है और कुछ ऐसा वातावरण है जो कि अत्यन्त ही अटपटा और असगत है ।

घर मे दूसरे ही दिन मुझे एक मील दूर से पानी लाने की आज्ञा हुई । मैं अपने घर मे सिर पर मटकी रखकर कभी पानी लाई नही थी, परन्तु उस दिन सभलते-सभलते भी सिर पर से मटकी गिर गई और गिरते ही जिन गालियो से मेरा स्वागत सत्कार हुआ वह मेरे लिए अप्रत्याशित था, मैं अपने आप मे जडवत् हो गई, मैं समझ नही सकी कि इस समय क्या कर सकती हू, इस सारे कार्य मे मेरी क्या गलती है, मैं जब सिर पर सयत ढग से मटकी रख नही सकती तो गिरना स्वाभाविक है और चार आने की एक मटकी के पीछे जो मेरा अपमान हुआ है जिस प्रकार से मेरे ऊपर गालियो की बौछार हुई है, क्या वह उचित है ? क्या बहू का स्वागत इस समाज मे इसी प्रकार से होता है और यदि पहला दिन इतने स्वागत के साथ हुआ है तो फिर अभी तो पूरा जीवन आगे पडा है और यह सोच-सोचकर मैं पीपल के पत्ते की तरह काप गई । सच कहती हू वह सारा दिन मेरा दु खी मन से बीता, सारी रात मैं अपने आप मे सो नही सकी । एक प्रकार से मैं अपने आपको असुरक्षित अनुभव करने लग गई थी, मुझे कुछ ऐसा लगने लगा था कि जैसे मैं कसाइयो के बीच घिर गई हू, आने वाले समय और आने वाली अज्ञात आशकाओ से मैं थर-थर कापने लगी ।

परन्तु मैंने यह निश्चय कर लिया था कि यथासमय मेरी तरफ से कम-से-कम गलती हो, मुझे ऐसा कोई मौका नही देना चाहिए जिससे कि इन लोगो को कुछ कहने का अवसर मिले, अपने लिए कुछ भी नही मागना है । स्वय के लिए किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा की इच्छा नही करनी है, जो कुछ मिल जाए, जिस प्रकार से भी

मिल जाए उसी मे सन्तुष्ट रहना है।

और मैंने अपने जीवन को इसी प्रकार से ढालने का प्रयत्न किया, जमीन पर जो भी बिछौना मिल गया उसी को श्रेयस्कर मान लिया, जो भी खाने को मिल गया उसी को सब कुछ समझ लिया, और अपनी तरफ से कुछ ऐसी व्यवस्था की जिससे कि आपके कानो तक मेरी बात न पहुचे, क्योकि जब आपको ज्ञात होता कि यह खाना खाना मेरे लिए कष्टप्रद है तो शायद आपको दु ख होता, सुबह चार बजे उठकर चक्की चलाना, पानी लाना, वापस आकर इतने लम्बे-चौडे घर को साफ करना लीपना, भोजन बनाना, गायो और भैंसो का दूध दुहना, उसे गर्म करना, उनको चारा-पानी देना, उनके गोबर को लीपना और दोपहर को जगल से घास काटकर लाना, जलाने के लिए लकडिया जगल से लाना, शाम को फिर गायो का काम, भोजन का काम, कपडे धोना, सबको भोजन करवाना और बरतन माजते-माजते रात्रि के ग्यारह-बारह बज जाते। इस हाडतोड मेहनत के बाद भी उपेक्षा, गालिया और आलोचना सुनना, यह सब कुछ मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित था। मेरे लिए इतना बोझ उठाना सम्भव नही था, मैंने कभी अपने जीवन मे ऐसा सोचा ही नही था कि मुझे इस प्रकार के वातावरण मे जाना पडेगा, इस प्रकार के कामो मे लगना पडेगा और इस प्रकार से गालिया और ताने सुनने पडेंगे, सब कुछ अप्रत्याशित था, परन्तु फिर भी मैंने अपने होंठ सी लिए थे, अपने होठो पर चुप्पी की मोहर लगा ली थी। मैने निश्चय कर लिया था कि यह शरीर बहुत समय तक मेरा साथ नही देगा, परन्तु जब तक भी इस पिजरे मे प्राण है तब तक मुझे उफ् नही कहना है, सब कुछ सहना है, दात भीचकर सहना है, जी को मसोस कर रहना है और मैने यह किया है तथा आज तक करती रही हू।

शायद आपको स्मरण होगा, विवाह के दो महीने बाद मेरे पिताजी मुझसे मिलने के लिए आये और अपने साथ खाने के लिए सेव लेकर आये थे, उन सेवो को देखकर मेरे होठो पर पहली बार व्यग्य की मुस्कराहट उभरी थी, मैंने अपने भाग्य पर विचार किया था कि जहा खाने के लिए सब्जी भी ढग से प्राप्त नही होती वहा पर ये सेव प्राप्त होना प्रकृति का और नियति का मेरे ऊपर कितना क्रूर व्यग्य है।

मेरे पिता ने जब मेरे चेहरे को ध्यान से देखा तो उन्हे जबर्दस्त आघात लगा था। वे इस बात की कल्पना ही नही कर सकते थे कि केवल दो महीने मे बेटी का चेहरा इस प्रकार से फीका पड जायेगा, चेहरे की सारी लुनाई और चमक इस प्रकार से बुझ जायेगी, इसकी तो उन्होंने कल्पना ही नही की थी। उन्होंने एक तरफ मुझे ले जाकर पूछा भी था, कि क्या बेटी तुम यहा खुश हो ?

और मैंने पहली बार चेहरे पर जबरदस्ती से मुस्कराहट चढाकर स्वाभाविक रूप से उत्तर दिया था कि मै खुश हू, बहुत खुश हू, परन्तु इतना कहते-कहते मेरी आखें भर आईं, मैं बहुत प्रयत्न करती रही कि आखें मेरा साथ दें, आसू मेरा भेद न खोलें, परन्तु उन्होने सारी बात कह दी और मेरे पिता की अनुभवी आखो ने वह

सब कुछ जान लिया जो मैं कहना नही चाहती थी।

मैने अपने जीवन मे पहली बार अपने पिता को उदास देखा था। सम्भवत वे अपने आपको अपराधी समझने लग गये थे, उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि मैंने अपनी बेटी का गला घोट दिया है, उसकी खुशिया नीलाम कर दी है, उसके चेहरे पर जो चमक समाप्त हो गई है उसका जिम्मेवार मैं स्वय हू, उसके आचल मे जो दु ख भर दिया है वह मेरी गलती है, उसकी आखो मे जो आसू तैर रहे हैं उसका जिम्मेवार मैं स्वय हू और ये सारे विचार उनके दिमाग मे एक साथ ही कौंध गए होगे और उनका चेहरा बुझ गया। मैंने पहली बार अपने पिता का इतना श्रीहीन चेहरा देखा था, सच कहती हू कि उनके इस प्रकार के चेहरे को देख कर मै रुक नही सकी, और उनकी गोद मे सिर देकर फफक पडी, मेरी आखो मे आसू बाध तोडकर बह निकले, हिचकिया भर आई और मै न चाहते हुए भी उनके सामने थरथरा गई, मेरे साथ ही उनकी आखो से भी आसू बह निकले और उनके वे गर्म आसू जब टप-टप करते हुए मेरे चेहरे पर पडे तो आप कल्पना कर सकते हैं कि मेरे दिल पर क्या गुजरी होगी और किस प्रकार से उन्होने इतना जबरदस्त धक्का अपने कमजोर सीने पर झेला होगा ?

शाम को मेरे पिता ने जब मुझे अपने घर ले जाने के लिए आपके पिताजी से पूछा तो उन्हे सीधी गालियो की बौछार मिली। उन्हे बताया गया कि मैं कितनी कामचोर हू, कितनी मटकिया फोड दी है,, कितनी रोटिया जला दी है और कितनी बार अपनी उगलिया जलाकर झूठी सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की है। उनकी मान्यता यह थी कि जो मेरी उगलिया जल गई है वे मैंने जानबूझकर जलाई है, जिससे कि दूसरी बार रसोई करने से छुटकारा मिल सके, यही नही अपितु मैंने कितनी बार जगल से आते समय लकडियो की ढेरी या घास के गट्ठर गिराये हैं, इन सबका लेखा-जोखा उनके सामने रख दिया गया, यह भी बताया गया कि मै निकम्मी हू, बेकार हू, बलवान नही हू, कामचोर हू और मैं उनके घर के लिए किसी भी प्रकार से योग्य नही हू।

आपके पिताजी, धारा प्रवाह रूप से यह सब कुछ कहते रहे और मेरे पिता अपराधी की तरह इन सब बातो को सुनते रहे। आप उन दिनो किसी कार्यवश एक सप्ताह के लिए बाहर गये हुए थे, यदि आप उस क्षण देखते या गालियो की बौछार सुनते तो शायद आप स्वय सयत नही रह पाते, मैं अपने आप मे इतनी दु खी हो रही थी कि यदि उस समय धरती फट जाती तो निश्चय ही मैं उसमे समा जाने का गौरव अनुभव करती।

और अन्त मे निर्णय सुनाते हुए बताया कि किसी भी हालत मे हम बहू को आपके घर नही भेजेंगे, इसको यही रहना होगा, यह यहा सुखी है, हम इसको जरूरत से ज्यादा प्यार दे रहे हैं, इसको किसी प्रकार की कोई तकलीफ नही है इसलिए इसको ले जाने की आवश्यकता नही है।

इसके साथ ही आपकी माताजी ने यह भी जोड दिया कि भविष्य मे इसमे मिलने के लिए आने की जरूरत नही है और जब हमे भेजनी होगी तब आपको कहलवा देंगे।

मैंन उस दिन पहली बार अनुभव किया कि हमारे समाज मे स्त्रिया कितनी पराश्रित और पददलित है, मैंने उस दिन यह अनुभव किया कि बेटी का पिता होना कितना दु खदायक है। मैंने उस दिन यह अनुभव किया कि पुत्री का पिता किस प्रकार से बेबस हो जाता है, मैं अश्रुपूरित आखो से उन्हे जाते हुए देखती रही, ऐसा लग रहा था जैसे वे एक गाय को कसाइयो के बाडे मे छोडकर जा रहे है। उन्होने मुडकर मुझे देखा तक नही, या यो कहू कि उनमे इतनी शक्ति ही शेष नही रह गई थी कि वे मुझे मुडकर देखते। वे जाते रहे और मैं डबडबाई आखो से उन्हे देखती रही।

इतना होते हुए भी मैंने आपसे कभी शिकायत नही की। आप स्वय अपने विचारो मे उलझे हुए थे, आप स्वय अपनी समस्याओ से घिरे हुए थे। ऐसी स्थिति मे मैं अपनी समस्स्याओ से आपको परेशान करना उचित नही समझती थी। आपने एक-दो बार पूछा भी था कि तुम सुखी तो हो और मैंने जबरदस्ती की मुस्कराहट ओढकर कहा था कि मैं बहुत सुखी हू, बहुत सन्तुष्ट हू।

मै उस दृश्य को नही भुला पा रही हू जब मैं सर्दी मे बीमार पड गई थी, मैं जमीन पर सोती रही क्योकि घर मे एक ही खाट थी और उस पर आपके पिता जी सोते थे, जमीन पर पूरा बिछौना नही था और ओढने के लिए बोरी की जो सिली हुई गुदडी थी वह पर्याप्त नही थी। आप स्वय जानते है कि आपके गाव मे कितनी सर्दी पडती है और ऐसी सर्दी मे जब पूरे पहनने के लिए कपडे नही थे ओढने के लिए पूरी गुदडी नही थी तो सर्दी लगना और बुखार आना स्वाभाविक था। जब सुबह मैं उठने के लिए उद्यत हुई तो मैं उठ नही पाई। ऐसा लग रहा था जैसे मेरा सारा शरीर टूट रहा है, दिमाग चक्कर खा रहा था और उस समय १०४° के आस-पास मे बुखार अनुभव कर रही थी।

परन्तु मैं फिर भी हिम्मत करके उठी और चक्की चलाने लगी। मैं कोशिश कर रही थी फिर भी मैं स्वय अपने आप मे नही थी। मुझे कुछ भी पता नही था कि चक्की चलाते-चलाते कब मैं सज्ञाशून्य-सी हो गई और मेरा सिर चक्की के हत्थे पर टिक गया।

मुझे होश तब आया जब मेरी कमर पर जोरो की लात लगीऔर इसके साथ-ही-साथ गालियो की बौछार मुझे झेलने को मिली, वह मेरे लिए आश्चर्यजनक थी, मैं अपने आपे मे नही थी, मुझे यह भी ज्ञात नही था कि कमजोरी की वजह से मैं इस बुखार मे कब बेहोश हो गई हू और कब चक्की का चलना बन्द हो गया है।

जब आपकी माताजी ने चक्की चलने की आवाज नही सुनी तो वे दबे पाँव यह देखने के लिए आई कि बहू क्या ढोंग कर रही है? और जब उन्होंने देखा कि

मैं चक्की के हत्थे पर सिर रखकर पडी हू तो उन्होंने सोचा कि यह सो रही है और उन्होंने जितनी तेजी से और जोर से लात मेरी कमर पर लगा सकती थी लगाई। हो सकता है कि उन्होने लात धीरे लगाई होगी परन्तु एकवारगी ही मेरा सिर चक्कर खा गया और मैं वही पर वेहोश होकर गिर गई, लात के प्रहार से चक्की का हत्या मेरे सिर मे घुस गया और खून वह निकला।

परन्तु उन्होंने इस वात की आवश्यकता ही नही समझी कि उस खून को वन्द करने का उपाय भी करना है, या वेहोशी को दूर करने का भी यत्न करना है, पता नही मैं कव तक वहा पडी रही, खून वह-वहकर सूख गया था और जव मेरी आख खुली, तव दिन के तीन वजे थे और मैं वही चक्की के पास पडी हुई थी।

आज भी वह चोट का निशान रह-रह कर साल जाता है और इतना जोरों से दर्द उठता है कि मैं सहन नही कर पाती। पिताजी के यह पूछने पर कि खून कैसे निकला तो माताजी ने कहा था कि मर जाती तो अच्छा था, जिन्दा रहकर यह क्या करेगी और इस घर का क्या भला कर सकेगी ?

उफ् ! आज इस जगल मे वैठा हू, तुम से वहुत दूर, पर—सच कहता हू कि तुम्हारे साथ जो घटनाए घटी है वे सव रह-रहकर मेरे दिमाग मे वरावर चक्कर काटती रहती हैं मैं जितना ही इन घटनाओं को भुलाने का प्रयत्न करता हू उतनी ही ज्यादा ये घटनाए मेरे मानस को उद्वेलित करती रहती है, वास्तव मे ही मेरा समाज आज के समय मे वहुत ही पिछडा हुआ है और इस समाज मे तूने जो कुछ भोगा है, जिस प्रकार से भोगा है, वे घटनाए जव स्मरण आती है तो मेरे रोगटे खडे हो जाते है और मै अपने आप मे कापकर रह जाता हू।

मैंने तो अपने आपको उस समाज से कुछ समय के लिए काट लिया है एक प्रकार से अपने आपको अलग कर लिया है पर तुम उसी समाज मे हो, उसी वातावरण मे हो, उसी परिवार मे हो और उस दमघोटू वातावरण मे तुम किस प्रकार से सास ले रही होगी, यह सोचकर मैं अपने आपको अपराधी-सा महसूस करने लग जाता हू।

इस समय मैंने एक पहुचे हुए साधु से "नखदर्पणादि खण्ड विभूति" ज्ञान प्राप्त किया है, इसके माध्यम से हम अपने अगूठे के नाखून मे वर्तमान जीवन की सारी घटनाये देख लेते है, मैने यह साधना सीखने के वाद सवसे पहले तुम्हे देखने का प्रयत्न किया था, केवल इसी तथ्य से कल्पना कर सकती हो कि मेरे मानस मे तुम्हारा विम्व तुम्हारा स्मरण कितना अधिक शक्तिशाली है।

और जव मैंने अपने दाहिने हाथ के अगूठे के नाखून मे तुम्हारा चित्र देखा तो मेरा हृदय धक् से रह गया। एक दुवली-पतली लाश की तरह आगन मे एक तरफ वैठी हुई हो, शरीर पर फटी हुई साडी पहनी हुई है, आखें अन्दर धस गई है, शरीर पर मास का नाम-निशान तक नही है और ऐसा लग रहा है जैसे अस्थि-पजर पर जवरदस्ती की जीवित खाल चढा दी हो।

सच कहता हू तुम्हारे इस रूप को देखकर मैं अपने आपे मे नही रह सका था, मैंने अपने आपको पूरी तरह से अपराधी महसूस किया था, उस दिन मैंने अपने आपको कितनी बार धिक्कारा होगा इसकी कोई कल्पना ही नही कर सकता, मैंने स्वय को धिक्कारते हुए कहा कि यह सब तुम्हारे कारण हुआ है। इसमे केवल तुम्हारा स्वार्थ है, तुमने अपने स्वार्थ के लिए एक पूरे जीवन को बरबाद कर दिया है, उसके यौवन को, उसकी खुशिया और उसकी उमगो को, दु ख की भट्टी मे बेरहमी से फेंक दिया है। तुमने इस बात को सोचा भी नही कि जो कुछ तुम कर रहे हो, उसके पीछे कितना कुछ हो जाएगा, उस दिन तो सोच-सोचकर पागल-सा हो गया था और उस रात्रि को हिचकिया भर-भरकर जितना रोया था उतना शायद अपने पूरे जीवन मे भी नही रोया हूगा, उस दिन जितना अपने आपको अपराधी महसूस किया था उतना कभी भी महसून नही किया। जिस दिन मेरे पावो मे साप लिपट गया था और मृत्यु मुझसे एक क्षण के अन्तराल पर थी उस दिन भी मैं इतना विचलित नही हुआ था जितना उस दिन तुम्हें नाखून मे देखकर हुआ था।

परन्तु मुझे सन्तोष है कि तुम जीवित हो। मुझे उस दिन कम-से-कम इस आशका से तो मुक्ति मिल गई कि जिसने मेरे लिए त्याग किया है जिसने मेरे लिए अपने आपको बलिदान किया है उसकी सांसें अभी तक कायम हैं, उसके शरीर का मास भले ही समाप्त हो गया हो, चमडी अभी तक जिन्दा है और एक बार फिर मेरे हृदय ने पुलक महसूस की है, आनन्द अनुभव किया है, घर जाने की ललक पैदा की है और यह इच्छा बलवती हुई है कि मुझे जल्दी-से-जल्दी तुमसे मिलना चाहिए, जल्दी से-जल्दी अपनी बाहो मे भरकर तुम्हे उठा लेना चाहिये।

इस समय मैं तुमसे बहुत दूर हू। इतना दूर कि यदि मैं जल्दी-से-जल्दी आना भी चाहू तब भी मुझे काफी समय लग जायेगा और यह भी कि जिस उद्देश्य के लिए मैंने इतना सब कुछ झेला है वह अब कुछ ही कदम दूर रह गया है। मैने बहुत कुछ प्राप्त किया है और यदि तुम मेरी उपलब्धिया, मेरी सफलता सुनोगी तो तुम एकबारगी प्रसन्न हो जाओगी, तुम्हारे चेहरे पर आत्म-सन्तोष की झलक उभर आयेगी, तुम्हारी आखो मे विश्वास की ज्योत्सना फैल जायेगी, तुम्हारे होठो पर खुशी का तराना गुनगुना उठेगा और मन को एक बार फिर विश्वास हो जाएगा कि कुछ प्राप्त हुआ है, जिसके लिए इतना सब कुछ किया है।

तुम्हारा कोई पत्र मेरे सामने नही है पर तुम्हारा मौन-पत्र अपने आपमे अन्यतम है, घर से रवाना होते समय तुमने जिस साहस के साथ मुझे विदाई दी थी वह अपने आप मे अन्यतम क्षण है। उस समय, जब कि मैं कायर हो रहा था, मेरे पाव कमजोर पड रहे थे और जब यात्रा स्थगित करने का निर्णय कर लिया था तब तुमने जिस साहस के साथ, जिस वीरता और धैर्य के साथ मुझे सलाह दी थी, आगे बढने के लिए प्रेरणा दी थी, कुछ कर गुजरने के लिए साहस दिया था वह आज भी मेरे सामने ज्यो-का-त्यो है। मैं उन आखो की चमक भुला नही पाया हू, तुम्हारे उन

शब्दो ने मुझे बराबर सहायता दी है और मैं आश्चर्य से उस समय तुम्हे देख रहा था, तुम्हारे परिवर्तित रूप को देख रहा था, भारतीय नारी के आदर्श को परख रहा था कि यह वही नारी है जो मेरा प्रस्ताव सुनकर हतप्रभ हो गई थी, जिसकी आखें डबडबा आई थी, जिसका चेहरा फीका पड गया था और जिसके शरीर मे एक कपन एक थरथराहट पैदा हो गई थी, पर जब इसी भारतीय नारी ने अपने पति को कमजोर होते हुए देखा है तो इसका रूप ही बदल गया है।

वास्तव मे ही उन क्षणो मे तुम्हारा धैर्य तुम्हारा साहस अप्रतिम था, तुमने साहस के साथ मुझे जाने के लिए प्रेरित किया। तुमने जो कुछ कहा था वे अक्षर मेरे जीवन के लिए तो स्वर्णिम अक्षर हैं। तुम्हारा वह साहस, वह ओजस्वी रूप मेरे लिए अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक रहा है।

पर॰ पर जब मैं रवाना होने के लिए तैयार हुआ और जिस दिन मैंने रवाना होने का निश्चय कर लिया सारा सामान बध गया तब तुम्हारा वही पत्नी रूप पुन उभर आया। तुम्हारा चेहरा फिर आसुओ से भर गया और तुमने जो कुछ साहस दिखाया था वह एकबारगी ही ढह गया। मैं कितने दुखी मन से, कितने व्यथित हृदय से वहा से रवाना हुआ था, वह मैं ही जानता हू। परन्तु उससे भी ज्यादा तुम व्यथित थी, ज्यादा दुखी और उदास थी। ऐसा लग रहा था जैसे देह से प्राण जा रहे हो और वह देह बेबस खडी देख रही है। उस समय मैं जान करके भी अनजान बना रहा, मुझमे इतना साहस ही नही रह गया था कि मैं मुडकर तुम्हें और तुम्हारी उस अवस्था को देखू।

मुझे विश्वास है तुम सुख से होगी, मेरी तरफ से किसी प्रकार की चिन्ता करने की जरूरत नही है। मैंने तुम्हे एक से अधिक बार देखा है, यह सब साधना के द्वारा ही सम्भव हो सका है और जब भी तुम्हारा स्मरण आता है मैं अपने आपको रोक नही पाता हू, तुम्हे देख लेता हू और अपने मन को शान्ति दे देता हू।

मेरे माता-पिता की सेवा करना उन्हे कष्ट न हो, इस बात का ध्यान रखना परिवार का मगल ही तुम्हारा मगल है, माता-पिता का आशीर्वाद ही हमारे जीवन का पाथेय है।

शीघ्र ही तुम्हे पत्र लिखूगा, जिसमे विस्तार से अपनी बात को कह पाऊगा।

स्नेह युक्त,
(नारायणदत्त श्रीमाली)

# डा० श्रीमाली का पत्र ऋतु के नाम

प्रषक डा नारायणदत्त श्रीमाली

स्थान जोधपुर

प्राप्तकर्त्ता ऋतु नैनीताल

आलोक—इस पत्र के माध्यम से पण्डितजी के मानस चिन्तन का आभास मिलता है कि किस प्रकार से गृहस्थ मे रहते हुए भी अपने आपको वीतरागी-सा बना रखा है और किस प्रकार से एक साधक गृहस्थ मे रहते हुए भी वानप्रस्थ वत् जीवन व्यतीत कर सकता है, जीवन का प्रत्येक क्षण कितना अधिक मूल्यवान होता है और उसका किस प्रकार से हिसाब रखा जाता है इसका आभास इस पत्र के माध्यम से साधको को प्राप्त होता है।

प्रिय ऋतु,

शुभाशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र मिला, जिसमे तुमने आरोप लगाया है कि मैं जान बूझ कर तुम्हारे पत्र का उत्तर नही देता या तुम्हें पत्र का उत्तर प्राप्त करने मे बहुत अधिक प्रतीक्षा करनी पडती है, इसका तात्पर्य यह नही है कि मैं पत्र का उत्तर देना नही चाहता या तुमसे अथवा तुम्हारे परिवार से उदासीन हू, अपितु इसका कारण मेरी अत्यधिक व्यस्तता है। मैं चाहता हू कि मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण रचनात्मक कार्यों मे ही व्यतीत हो। आगे के जीवन मे मेरी जितनी सासें हैं उनका हिसाब-किताब समाज के पास हो, एक भी क्षण व्यर्थ मे नही बीत जाए, इस बात का मुझे हमेशा आभास रहता है।

तुमने अपने पत्र मे आरोप लगाया है कि मैं उस तरफ पिछले एक वर्ष से नही आ सका हू या मैं नही आना चाहता हू, तुम्हारा ऐसा सोचना व्यर्थ है। मैं स्वय तुम्हारे परिवार से मिलने के लिए उत्सुक हूँ, उनकी सेवा मेरे मानस मे इस समय भी है, उनकी भावनाओ को मैं भली प्रकार से समझता हूँ और मेरे न आने से आप सब लोगो को कितनी खीझ, कितनी उदासी और कितनी बेचैनी होती होगी, इसकी मैं कल्पना कर सकता हू।

परन्तु तुम्हारे सामने प्रश्न केवल तुम्हारे परिवार का है, जबकि मेरे सामने इस प्रकार के सैंकडो, हजारो परिवारो का प्रश्न है, तुम्हारी समस्याओ से तुम चिन्तित हो और चाहती हो कि इस समस्या का निराकरण जल्दी हो जाए। जिस प्रकार से तुम सोच रही हो उसी प्रकार से अन्य परिवार के लोग भी तो सोचते होंगे। भारतवर्ष मे कम-से-कम एक करोड से ज्यादा लोगो से मेरा व्यक्तिगत परिचय होगा और इनमे से कम-से-कम पाच-दस लाख परिवार ऐसे होगे जिनका मुझसे निकट का परिचय होगा। वे यह चाहते हैं कि मैं उनके यहा भी जाऊ, उनकी बातें भी सुनू, उनकी समस्याओ का निराकरण भी करू, जिस प्रकार से तुम्हे और तुम्हारे परिवार को खीझ या बेचैनी होती है उसी प्रकार से इन दस लाख परिवारो को भी होती होगी, जिस प्रकार से तुम मुझसे मिलने के लिए आतुर हो उसी प्रकार से और लोग भी तो होंगे। काश्मीर से कन्याकुमारी तक मेरा परिवार फैला हुआ है, मैं उन सब परिवारो का एक सदस्य हू, उनके सुख-दुख का भागी हू, उनकी समस्याओ के निराकरण मे सहयोगी हूं, उनके हर्ष और विषाद, दुख और सुख आदि मे मेरा भी योगदान रहा है, इसीलिए इन सबसे मेरा आत्मीय सम्बन्ध है, मेरा अपनत्व है, निकट का सम्पर्क है।

इस सम्बन्ध या सम्पर्क के पीछे किसी प्रकार का कोई स्वार्थ नही है, उन परिवारो से मुझे कुछ लेना नही है, उनके और मेरे बीच जो सम्बन्ध हैं वे आत्मीय सबध हैं, प्रेम के सम्बन्ध हैं, सरलता और सहजता के सम्बन्ध है, इसीलिए ये सम्बन्ध स्थायी हैं और इतने वर्ष बीतने के बाद भी इन पर किसी प्रकार की गर्द नही जमी है।

जो सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित होते है वे ज्यादा समय तक जीवित नही रहते, जिन सम्बन्धो के पीछे केवल मात्र स्वय का ही हित चिन्तन होता है वे सम्बन्ध क्षणजीवी होते हैं, जिन सम्बन्धो के पीछे वासना, धोखा, कपट, छल या स्वार्थ होता है, उन सम्बन्धो का अन्त अत्यन्त ही दुखदायक होता है, मैं इस प्रकार के स बन्धो की भर्त्सना करता हू, इस प्रकार के सम्बन्धो का निर्वाह मैं कर ही नही सकता, मैं तो अपने जीवन मे पूरी तरह से उन्मुक्त रहा हू। मेरे जीवन का कोई भी क्षण गोपनीय नही रहा है, मेरे जीवन का प्रत्येक हिस्सा सार्वजनिक है। मैं चाहता हू कि मेरा यह जीवन और आगे का जीवन इसी प्रकार सार्वजनिक बना रहे, ऐसी स्थिति मे छल, कपट, धोखा की गुजाइश कहा हो सकती है?

मैं तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की समस्याओ से परिचित हू, परन्तु यह समस्या इतनी तीव्र नही है कि उसका समाधान आज का आज ही होना आवश्यक हो। तुमने अपने पत्र मे आरोप लगाया है कि मैं तुम लोगो को भुला बैठा हू या तुम्हारे कार्यो के बारे मे मैं रुचि नही ले रहा हू, यह सोचना व्यर्थ है। मैं अपने जीवन मे सत्य का हामी रहा हू। मैं उतनी ही बात कहता हू जितनी कि कर सकता हू, व्यर्थ मे किसी को न तो धोखे मे रखता हू और न उसे दिवास्वप्न दिखाता हू।

बिलम्ब होने की बात मैं स्वय स्वीकार करता हू और यह शिकायत तुम्हारी

ही नही है अपितु सैंकडो-हजारो परिवारो की है, पर तुम स्वय सोचो कि तुम्हारी तरफ तो इसलिए आना है कि तुम लोगो से मिलना है, पर जब मैं घर से रवाना होने का उपक्रम करता हू और ज्ञात होता है कि कलकत्ता के किसी परिचित परिवार का पुत्र बीमार है और उनकी सारी आशा केवल मेरी ओर ही लगी हुई है, उनकी यही

डॉ० श्रीमाली

भावना है कि यदि मैं वहा पहुच जाता हू तो उनका इकलौता पुत्र बच सकता है तो तुम बताओ कि ऐसी स्थिति मे मैं तुम्हारी तरफ कैसे आ सकता हू ? मेरा पहला कर्त्तव्य यह होता है कि मैं उस दुखी परिवार के पास पहुचू। उसे सान्त्वना दू और यदि मुझ मे कुछ ज्ञान है तो उसके द्वारा उसके पुत्र को स्वस्थ करू।

कई बार ऐसा होता है, कई बार ऐसा हुआ है, तुम्हारा ही नही और भी कई परिवारो का मुझ पर आरोप है कि मैं उनसे मिलता नही हू या मिलना नही चाहता या कुछ क्षणो के लिए आकर तुरन्त रवाना हो जाता हू। उन्हे ऐसा लगता है कि जैसे ग्रीष्म ऋतु मे एक शीतल हवा का झोका कुछ क्षणो के लिए आकर चला गया हो, परन्तु इतना होते हुए भी मैं उन कार्यो को प्राथमिकता देता हू जो तुरन्त आवश्यक होते हैं, जिनका समाधान यदि कुछ समय के लिए टाल दिया जाए तो ऐसी घटना घटित हो जाती है जिसका समाधान फिर सम्भव ही नही होता।

मुझे तो खुशी है कि तुम्हारा जन्म पहाडो की गोद मे हुआ है और पहाडो की निश्छलता, पहाडो की सहजता, उसकी सरलता तुम्हारे जीवन मे भी व्याप्त हुई है, मेरा स्वय का अधिकाश जीवन पहाडो मे ही व्यतीत हुआ है। मेरे तो जीवन के सुखदायक क्षण ही प्रकृति की गोद मे बीते हैं, प्रकृति को जिस रूप मे मैंने समझा है उस प्रकार से कम लोगो ने समझा होगा, मेरे लिए यह प्रकृति मा है, बहिन है, इसने मुझे बहुत कुछ दिया है, मेरे जीवन को यदि खुशियो से परिपूर्ण किया है तो वह इस प्रकृति के माध्यम से ही हो पाया है।

पर आज मैं उस प्रकृति से कट सा गया हू, एक ऐसे लोक मे अपने आपको घिरा हुआ अनुभव कर रहा हू जिसमे बधन है, कसावट है मोह और प्रेम का चतुर्दिक जाल है, इस लोक से जितना ही ज्यादा अलग होने का प्रयत्न करता हू उतना ही ज्यादा उलझता जाता हू। आज का मानव पूरी तरह से कृतिम हो गया है इसीलिए उसमे छल, कपट, धोखा और अनाचार की बाहुल्यता आ गई है, इतना होने पर भी वह प्रकृति से अपने आपको अलग नही कर पाया है, बहुत बडे-बडे मकान बनाकर उसमे प्रकृति के पौधे लगाने को वह आतुर रहता है, क्योकि उसके जीवन का आधार उसकी मानवीयता का आधार प्रकृति रहा है। अत व्यक्ति जितना ही ज्यादा प्रकृति से कटता है, वह उतना ही ज्यादा खोखला होता है।

मैं जगलो मे अकेला रहा हू, मेरे नीचे धरती का बिछौना रहा है और मैं आकाश की चादर ओढकर निर्द्वन्द्व रूप से सोया हू। मेरे पास कुछ नही होते हुए भी मैं अपने आपको ससार का सबसे ज्यादा सम्पन्न समझता था क्योकि मेरे पास प्रकृति थी, उस प्रकृति के हजारो रूप मेरे सामने थे, मैं प्रत्येक पल उस प्रकृति के परिवर्तित रूप को देखता था और अपने आपमे मुग्ध होता था। जितना ही ज्यादा मैं प्रकृति के निकट गया हू उतना ही ज्यादा मुझे सुख और सन्तोष मिला है, जितना ही ज्यादा मैंने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है उतनी ही ज्यादा मुझे अनुकूलता प्राप्त हुई है।

और आज मैं बिल्कुल दूसरा जीवन जी रहा हू, रहने के लिए बहुत बडा मकान है, खाने के लिए सुस्वादु भोजन हैं, काम के लिए नौकर चाकर हैं और इतना सब कुछ होते हुए भी मेरे मन मे शान्ति नही है। एक छटपटाहट है कि मैं कितना जल्दी इस कृत्रिमता से निकलू और प्रकृति की गोद मे चला जाऊ। मुझे यह भवन, यह सुख-सुविधाए बिल्कुल सान्त्वना नही देती। मैं एक प्रकार से अपने-आपको घिरा हुआ अनुभव करने लग गया हू। जगलो मे रहते हुए जो मस्ती थी, जो उन्मुक्त भावना थी वह समाप्त हो गई है और इस समय तो चौबीसो घण्टे कार्य के अलावा कुछ भी मेरे सामने नही रह गया है।

प्रात चार बजे से उठ कर रात्रि को ग्यारह बजे तक मैं एक क्षण के लिए भी विश्राम नही कर पाया या यो कहा जाए कि विश्राम करने को समय ही नही मिलता। मै स्वय इस प्रकार बीस-बीस घण्टे कार्य करते-करते थक गया हू, मैं चाहता हू कि जितना जल्दी इससे छूटकर उस तरफ आ सकू, प्रकृति की गोद मे बैठ सकू, उसके साथ बातें कर सकू और एक बार पुन अपने जीवन को आनन्द के क्षणो मे डुबो सकू।

मैंने दोनो प्रकार का जीवन जीया है, मैं भूख और अभाव मे भी रहा हू और सम्पन्नता को भी अनुभव किया है। पत्थरो और चट्टानो पर भी सोया हू और मखमली गद्दो पर भी विश्राम किया है। जगलो मे विचरण करता रहा हू और ऊचे महलो और होटलो मे भी रहा हू परन्तु इन दोनो स्थितियो मे से यदि मुझे एक स्थिति चुनने के लिए कहा जाए तो निश्चय ही मैं उस स्थिति को ज्यादा श्रेयस्कर मान रहा हू जिसका रास्ता प्रकृति की तरफ है। इस प्रकार के ऊचे-ऊचे भवनो मे रहते हुए मुझे किंचित भी सुख नही मिलता, मखमली गद्दो पर लेटकर मुझे नीद नही आती, आनन्द और वैभव के बीच मे रहते हुए भी मेरा मन छटपटाता रहता है। एक प्रकार का अभाव-सा अनुभव करता है, ऐसा लगता है जैसे मैं अपने जीवन से कट गया हू, मूल जीवन स्रोत से परे हट गया हू। मेरे जीवन की पूर्णता उसी दिन हो सकती है जिस दिन वे प्रकृति से पुन तादात्म्य स्थापित कर सकूगा। जब भी मुझे प्रकृति की गोद मे जाने का अवसर मिलता है, मेरे लिए वे क्षण स्वर्णिम होते हैं, उन क्षणो का मैं जी भरकर आनन्द लेता हू और पुन अपने आपको तरोताजा और स्वस्थ अनुभव करने लग जाता हू।

इसलिए मेरी तो स्वय की यह इच्छा रहती है कि मैं उस तरफ आऊ, आप लोगो के परिवार के बीच रहू, प्रकृति के साथ अपने आपको एकाकार करू और कुछ क्षण भी यदि मुझे इस प्रकार के मिल जाएँ तो वे क्षण मेरे स्वय के हो जाएँ, मेरे नाम लिख लिए जाएँ।

परन्तु मैं इस प्रकार के क्षणो से वचित हो गया हू, चाहते हुए भी वे क्षण मेरे नही रहे, क्योकि मैं इतना अधिक स्वार्थ अपने आपमे पैदा नही कर सकता। जिस उद्देश्य के लिए मैंने अपना घर बार छोडा था, जिस लक्ष्य के लिए मैंने अपने यौवन

को दाव पर लगाया था, जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कष्ट सहे थे तो क्या वह उद्देश्य मेरा व्यक्तिगत था ? मैं अपने जीवन मे व्यक्तिगत जैसी कोई मान्यता नही रखना चाहता। मैं तो चाहता हू कि मेरा प्रत्येक क्षण समाज के लिए समर्पित रहे, मैं जो कुछ सीख सका हू, जो कुछ मैंने प्राप्त किया है उसे दोनो हाथो से लुटाऊ, समाज को ज्यादा-से-ज्यादा वह ज्ञान दू जो मैंने प्राप्त किया है और इस ज्ञान के माध्यम से अपने समाज का, अपने देश का ज्यादा हित-सम्पादन करू।

और इस हित सम्पादन मे यदि मुझे व्यक्तिगत क्षण नही मिलते है तो मुझे कोई चिन्ता नही, यदि मुझे आराम और सुविधाए नही मिलती है तो इसका मुझे गिला नही है, यदि चाहते हुए भी मै कुछ क्षण अपने लिए नही निकाल सकू तो मुझे इस वात की कोई परवाह भी नही है। यदि मेरे आगे का पूरा जीवन समाज के लिए समर्पित हो जाए तो यह मेरे लिए खुशी की बात होगी। मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण समाज का हित कर सकता हो तो इससे ज्यादा प्रसन्नता की वात कुछ हो ही नही सकती।

मैंने भारत की प्राचीन विद्याओ को प्राप्त करने मे जो कष्ट भोगा है, जो दुख झेला है, जो परेशानिया उठाई हैं, वे मैं ही समझता हू और मेरे मन की यही आकाक्षा है कि मै इस ज्ञान को अपने साथ नही ले जाऊ, जो कुछ मैंने प्राप्त किया है उसे समाज मे वाट दू, लोगो को दे दू और इस प्रकार से उस ज्ञान को जीवित रखू जिससे कि आने वाली पीढिया उस ज्ञान से वचित न हो।

पर मुझे दुख है कि मेरे समाज की वर्तमान पीढी वहुत ही उतावली है, उसमे धैर्य और सयम का जरूरत से ज्यादा अभाव है। मैं अपने ज्ञान को देना चाहता हू और उनमे इस ज्ञान को प्राप्त करने की क्षमता ही नही है। मैं चाहता हू कि अपने जीवन मे निर्जीव पुस्तको के लेखन की अपेक्षा कुछ सजीव ग्रन्थ तैयार करू, कुछ ऐसे युवक तैयार करू जो इस ज्ञान को प्राप्त कर सकें, इस ज्ञान मे समृद्ध हो सकें, इस ज्ञान मे पूर्णता प्राप्त कर सकें जिससे कि मेरी मृत्यु के वाद भी यह ज्ञान मेरे साथ ही समाप्त न हो जाये अपितु यह ज्ञान उन युवको के माध्यम से जीवित रहे, उनके द्वारा यह ज्ञान की धारा आगे वढती रहे और इस प्रकार आगे के वर्षो तक यह ज्ञान हमारे समाज मे जीवित रह सके जिससे कि हमारा समाज लाभान्वित हो, हमारा देश गर्व से उन्नत वना रह सके, हमारे महर्षियो की धरोहर सुरक्षित रह सके।

परन्तु इतने वर्षो मे मैं अन्य सारे कार्यों मे सफल हो सका परन्तु प्रयत्न करने पर भी ऐसे १५-२० युवक प्राप्त नही हो सके जो इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ हो। यह बात नही है कि मेरे पास इस प्रकार की भावना लेकर लोग आते नही हो, नित्य ५०-६० लोग इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भागे चले आते हैं परन्तु वे परिश्रम करना नही चाहते, वे चाहते हैं कि मै अपने ज्ञान को उनमे परिवर्तित कर दू। वे चाहते हैं एक ही दिन मे वे महान तन्त्र-शास्त्री, या मन्त्र-शास्त्री बन जायें, वे एक ही दिन मे प्रकाण्ड ज्योतिष और भविष्यवक्ता बनना चाहते

हैं, पर ऐसा कैसे सम्भव है ? जब मे उन्हे अपनी कसौटी पर कसता हू तो वे सोने की जगह पीतल निकल आते हैं और एक-दो दिन के बाद ही भाग खडे होते है। मुझे दु ख है कि मेरे देश के साठ करोड व्यक्तियो मे से साठ व्यक्ति भी ऐसे नही है जिनमे इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की ललक हो, जिनमे इस प्रकार की विद्या सीखने की प्रवल इच्छा हो, जो परिश्रम से सम्वन्ध जोडने वाला हो, जो साधना के क्षेत्र मे कष्ट उठाने मे समर्थ हो, जिनका सकल्प दृढ हो, जिनकी सासो मे परिपक्वता हो जिसके हृदय मे कुछ कर गुजरने की क्षमता हो, ऐसे युवक मिल ही नही रहे हैं। मेरे देश मे ऐसे युवको का अकाल है और ऐसी स्थिति देख कर कई वार तो मेरी आखें डवडवा आती हैं कि क्या यह ज्ञान जो कुछ मैंने प्राप्त किया है, वह मेरे साथ ही समाप्त हो जाएगा ? इतने अधिक कष्ट उठाकर जो कुछ मैने प्राप्त किया है, वह सब वेकार चला जाएगा ? इन सारी साधनाओ को पन्नो पर उतारने से क्या हो आएगा जव तक सजीव ग्रन्थ नही लिख पाऊगा तव तक यह सव वेकार है, यह सब व्यर्थ है।

मन्त्र एक ध्वन्यात्मक प्रयोग है, मन्त्र की मूल आत्मा ध्वनि है। उसका आरोह अवरोह है। किस मन्त्र को किस प्रकार से उच्चारित करना है यह मूल वात है कि मन्त्र को पढ लेना ही कुछ नही है, जव तक उस मन्त्र की ध्वनि, उसका आरोह, अवरोह उसकी लय, ज्ञात नही होती तव तक उस मन्त्र का प्रभाव हो ही नही सकता। इसीलिए हमारे शास्त्रो मे वताया गया है कि मन्त्र गुरु मुख से लेना चाहिए। इसका मूल कारण यह है कि गुरु ही उच्चारण कर उस मत्र की ध्वनि का आभास दे सकता है। यह आभास कागज नही दे सकते, पुस्तको मे लिखे मन्त्र नही दे सकते, इसलिए मन्त्र का ज्ञान, मन्त्र की मूल आत्मा, पुस्तको के माध्यमो से पहचानी ही नही जा सकती, उसे समझने के लिए तो गुरु की नितान्त आवश्यकता है, गुरु ही उसे इस वात का ज्ञान दे सकता है कि किस मन्त्र का उच्चारण किस प्रकार से करना है ? किस प्रकार से उसे प्रयोग मे लाना है ? किस प्रकार उसका उपयोग करना है ? और उस मन्त्र से सम्वन्धित और अन्य क्या-क्या विद्याए है उसका कीलन और उत्कीलन क्या है ? यह सव पुस्तकें नही वता सकती। इसका ज्ञान तो तभी हो सकता है जब सामने गुरु वैठा हो और वह शिष्य गुरु चरणो मे वैठकर सीख रहा हो। इसके लिए चाहिए धैर्य, सयम और परिश्रम की भावना और ' और मेरे युवको मे आज उन्ही गुणो का अभाव है।

मेरे लिए यह कितनी बडी दुख की वात है कि म इस प्रकार का ज्ञान देना चाहता हू और ज्ञान लेने वाले मिल ही नही पाते। मै ज्यादा-से-ज्यादा इसको वाटना चाहता हू और सामने वाले की झोली देखता हू तो वह फटी हुई मिलती है मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं चाह कर भी कुछ नही कर पा रहा हू, मेरे मन मे किस प्रकार की आग धधक रही होगी, कितनी वेचैनी और छटपटाहट मेरे मानस मे रहती होगी इसकी तुम कल्पना कर सकती हो।

और ऐसे ही क्षणो मे जव मेरा मानस वोझिल हो जाता है छटपटाहट से दिल

बेचैन हो जाता है, तब मैं प्रकृति की तरफ भागने की कोशिश करता हू, कुछ दिन वहा रहने का प्रयत्न करता हू परन्तु फिर मेरा कर्त्तव्य मुझे समाज मे ठेल देता है, मेरी आत्मा कहती है कि तुम्हारे इन क्षणो पर तुम्हारा कोई अधिकार नही है, तुम्हारे जीवन की जो सासें है वे समाज की हैं, प्रत्येक मास का हिसाव समाज को देना है, अपने स्वार्थ के लिये समाज से कटकर एक तरफ बैठ जाना कायरता है, और मैं अपने जीवन के साथ 'कायरता' शब्द को जोडना नही चाहता, इसीलिये भारी मन से, और नवीन आशा के साथ पुन समाज मे घुस जाता हू कि शायद इस बार कोई ऐसा युवक मिल जायगा जो कुछ सीख सकेगा, जिसमे सीखने की इच्छा होगी। कार्य करने की उत्कट भावना होगी और मैं अपने ज्ञान को देकर अपने आपको हल्का अनुभव करने लग सकूगा।

मैं भीड इकट्ठी करने मे विश्वास नही रखता, यदि मैं चाहता तो अपनी इन साधनाओ के द्वारा इस प्रकार के चमत्कार दिखा सकता था या दिखा सकता हू जोकि अपने आप मे अन्यतम हो, और इस प्रकार मैं अपने इर्द-गिर्द शिष्यो की लम्बी-चौडी फौज इकट्ठी कर सकता था, परन्तु मैं इस प्रकार की धारणा के सर्वथा विपरीत हू, मैं मानव हू अपने आपको भगवान कहलाने मे विश्वास नही रखता। मैंने प्रारभ से ही इस प्रकार के विचारो को हेय दृष्टि से देखा है, मेरे विचारो मे यह आडम्बर है पाखण्ड है, जनता के साथ छल है, जीवन मे शान्तिपूर्ण तरीके से ठोस रूप मे जो कुछ भी कार्य किया जाता है, वह ज्यादा श्रेयष्कर होता है, समाज के लिये ज्यादा उपयोगी होता है, देश के लिये ज्यादा लाभदायक होता ह।

मैं अपने जीवन मे अत्यन्त ही सरल और सात्विक जीवन जीने को उचित समझता हू। मेरे जीवन की 'फिलोसोफी' एक अलग ढग की है। मैं अपने जीवन मे अन्तर्मुखी ज्यादा रहा हू। मैंने अपने आपको कभी उजागर करने का प्रयत्न नही किया, कभी भी अपनी प्रशसा करने की कोशिश नही की, मैंने यह कभी नही चाहा है कि भीड इकट्ठी करू, 'गुरु' कहलाऊ या ऊचा सम्मान प्राप्त करू।

इसकी अपेक्षा मैं इन सब चीजो से भागता रहा हू, मैंने अपने जीवन मे एक ही उद्देश्य रखा है कि जीवन मे मौन रहकर जितना कार्य हो पाता है उतना वाचाल बन कर नही। यदि जीवन मे ठोस कार्य करना है या कुछ उपलब्धि प्राप्त करनी है तो वह चुपचाप तरीके से ही हो सकती है। जिसको पाखण्ड प्रिय है, जो अपने आपको सम्मानित कराना चाहता है जो यह चाहता है कि वह दुनिया की नजरो मे दिखाई दे, वह इस प्रकार का आचरण कर सकता है, मेरी प्रकृति इससे सर्वथा भिन्न है।

मैंने अपने जीवन मे जो कुछ प्राप्त किया है, वह पूरे समुद्र मे एक बूद की तरह है, ज्ञान तो एक समुद्र की तरह होता है जिसका कोई ओर-छोर नही होता। मैंने इस समुद्र मे डुबकी लगाने का प्रयत्न किया है और यह प्रभु की कृपा है कि मुझे मोती प्राप्त हुए हैं जो कि समाज के लिये गौरवयुक्त हैं।

यहा यह स्पष्ट कर दू कि आज जो अपने आपको प्रसिद्ध साधु, मत्र-शास्त्री, या

तान्त्रिक कहते हैं उनमे से कई लोग मेरे साथ रहे है, और मुझसे गोप्नीय तरीके से बहुत कुछ सीखा है, आज उनके पास लम्बी-चौडी भीड है, शिष्यो की पूरी जमात हैं, यह उनका चमत्कार है कि उन्होने उस बूद का समुद्र बना दिया है, परन्तु मेरे लिये यह सब व्यर्थ है, मैं इस प्रकार की धारणा के सर्वथा विपरीत हू, इस प्रकार का पाखण्ड मेरी दृष्टि मे हेय है।

इसमे कोई दो राय नही कि शरीर, शरीर होता है उसको भी आराम की आवश्यकता होती है, वह भी विश्राम चाहता है और जिस प्रकार से मै इस शरीर से बीस-बीस घण्टे काम लेता हू, उसको देखते हुए यह निश्चित है कि यह शरीर बहुत लम्बे समय तक मेरा साथ नही देगा, परन्तु जब तक मैं जीवित हू तब तक अकर्मण्य नही रहूगा, मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण समाज को समर्पित है और समर्पित रहेगा।

मै शीघ्र ही तुम्हारी तरफ आने का प्रयत्न करूगा और जल्दी ही मुझे समय मिल पायेगा, जबकि मैं तुमसे और तुम्हारे परिवार से मिल सकूगा। और कुछ समय प्रकृति के साथ निर्मुक्त रूप से व्यतीत हो सकेगा।

मेरा शुभाशीर्वाद सदैव आप लोगो के साथ है।

स्नेह युक्त,
(नारायणदत्त श्रीमाली)

# पत्र—डा० श्रीमाली के नाम

प्रेषक अरविन्दकुमार
स्थान झाबुआ (मध्य प्रदेश)
प्राप्तकर्त्ता महामहोपाध्याय, डा० नारायणदत्त श्रीमाली

आलोक—एक शिष्य किस प्रकार से अपने जीवन को समर्पित करके साधना के उच्च क्षेत्र पर पहुच सकता है और किस प्रकार से उसके मानस मे गुरु के प्रति सम्मान और श्रद्धा रहती है, उसके मानस का चिन्तन किस प्रकार से गुरु के साथ एकाकार रहता है इसका आभास इस पत्र के माध्यम से प्राप्त होता है जो कि साधको के लिये अनुकरणीय है।

श्री अरविन्द कुमार पण्डितजी के प्रिय शिष्य है और कई वर्षो तक पण्डितजी के समीप रहकर उन्होने उच्च स्तर की साधनाए सिद्ध की है।

परम पूज्य गुरुदेव,

साष्टाग दण्डवत्

आज बहुत दिनो के बाद मैं आपको पत्र लिख रहा हू, यद्यपि यह मेरी धृष्टता है कि मैं बिना आपकी आज्ञा के, आपको पत्र लिखने की चेष्टा कर रहा हू, परन्तु मेरी विकलता इतनी अधिक बढ गई है कि मै चाहते हुए भी अपने आपको रोक नही पा रहा हू। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि आपको पत्र न लिखू, आपके व्यस्त समय को लेने का मुझे कोई अधिकार नही है, आपके चिन्तन मे मैं विघ्न दू ऐसा मैं उचित नही समझता, परन्तु पिछले एक महीने से मैं कुछ ऐसी आकुलता अनुभव कर रहा हू कि बिना आपसे मिले मैं अपने आपको रोक नही पाऊगा, यद्यपि आपने मुझे पत्र लिखने के लिये मना किया था और आज्ञा दी थी कि बिना पत्र के भी बातचीत हो सकती है, एक दूसरे को देखा जा सकता है और आपने कृपा करके जो ज्ञान, जो साधना मुझे दी थी, वह मेरे जीवन की अतुलनीय सम्पत्ति है, आपने मुक्त हस्त से मुझे सब कुछ देने का प्रयत्न किया, परन्तु मैं ही अभागा हू कि उस समुद्र मे से इतने अधिक मोती बटोर नही सका जिससे कि मेरी झोली पूरी तरह से भर जाय, इतनी अधिक आतुरता, इतनी अधिक बेचैनी मैंने अपने जीवन मे कभी अनुभव नही की थी, परन्तु

आपके जाने के बाद मै कोशिश करने पर भी अपने आपको नियंत्रित नही कर पा रहा हू ।

आपने मुझे साधना काल मे यह बताया था कि जब भी मन चचल हो जाय तब प्रभु के चरणो मे बैठ जाना चाहिए और उस मन्दिर मे प्रभु के सामने अपनी सारी इच्छाए रख देनी चाहिए, पर मैं किसे मन्दिर मानू किसको ईश्वर मानू ? किसके सामने अपनी व्यथा कहू ? मेरे लिये तो मन्दिर, ईश्वर या इष्ट जो कुछ भी है, वह आप ही है और आपके अलावा मेरे लिये कुछ भी नही है ।

आपका पूरा शरीर मेरे लिये मन्दिर के समान है, आपके चरण उस मदिर के सुदृढ स्तम्भ हैं । आपका शरीर इस मन्दिर का गर्भगृह है, और आपका उन्नत ललाट इस पवित्र मन्दिर का शिखर, जो कि दूर से ही भव्य और दिव्यतम दिखाई देता है । इस मन्दिर मे जो मूर्ति बैठी हुई है, सत्य और प्रेम की वह साक्षात मूर्ति ही मेरा इष्ट है । उसके सामने मैं बच्चो की तरह रोया हू, गिडगिडाया हू और मुझे इससे सान्त्वना मिली है, प्रेम की अजस्र धारा प्राप्त हुई है, जब मैने इस प्रकार के मन्दिर मे प्रवेश किया है, इस प्रकार के पवित्र मन्दिर की छाया मे बैठा हू, इस प्रकार की सजीव मूर्ति की करुणा मुझे प्राप्त हुई है तो फिर मैं और किस मन्दिर मे जाऊ ? किस मूर्ति के सामने अपनी व्यथा कहू ?

मैं अपने जीवन मे बहुत भटका था, सैकडो मन्दिरो से सिर टकराया था, हजारो मूर्तियो के सामने अपनी व्यथा कही थी, परन्तु किसी ने भी मेरे आसू नही पोंछे, किसी ने भी मेरे मन की तडफ महसूस नही की, पर जब मैं आपके चरणो मे आया, इस साक्षात मन्दिर की छाया मे बैठा तो ऐसा लगा जैसे मुझे वह सब कुछ प्राप्त हो गया हो जिसकी तलाश मुझे वर्षों से थी, और जब इस मन्दिर मे निवास करने वाली साक्षात मूर्ति के दर्शन किये और उसकी करुणा से आप्लावित हुआ तो मैं धन्य हो गया, मेरा सारा जीवन उन्मुक्त हो गया, जीवन मे जो बेचैनी थी वह एकबारगी ही समाप्त हो गई ।

इस भारत मे लाखो मन्दिर है, जहा पर लोग जाते है, हजारो तीर्थ स्थल है, जहा पर गृहस्थ जाकर अपनी मानसिक व्यथा शान्त करते हैं, परन्तु उनमे कितने ऐसे है जो सही रूप मे प्रभु के दर्शन कर पाते हैं, आपका शरीर एक चलता फिरता अद्भुत पावन मन्दिर है जिसमे करुणा की, दया की, और ममता की साक्षात मूर्ति विद्यमान है, इस प्रकार के मन्दिर और इस प्रकार की दिव्य मूर्ति को छोडकर मैं और कहा जाऊ ?

मेरा पूरा जीवन तब तक व्यर्थ था जब तक कि इस मन्दिर के पास नही आया था । मेरा सारा शिक्षण, मेरा सारा ज्ञान एक प्रकार से व्यर्थ ही रहा था, आज मैं यह अनुभव कर रहा हू कि मेरे जीवन के कई वर्ष व्यर्थ मे बरबाद हो गये । स्कूल की शिक्षा और कालेज का अध्ययन मानव के जीवन निर्माण मे किसी प्रकार से सहायक नही होता । एक प्रकार से यह शिक्षण उसको थोथी डिग्रिया भले ही दे दे

परन्तु उसकी आत्मा का विकास नही कर सकता, आत्मा का विकास तभी हो सकता है जबकि उसे गुरु की प्राप्ति हो जाय। इस ससार मे जितने भी व्यक्ति हैं, उनका अस्तित्व महज एक बालक के समान है, फिर वे भले ही सौ वर्ष के बूढे हो या पच्चीस वर्ष के बालक, क्योकि जीवन की पूर्णता तभी सभव है जबकि उसको यह ज्ञान हो जाय कि उसका अस्तित्व क्या है दुनिया मे हजारो पण्डित है, विद्वान् हैं, अपने क्षेत्र मे अग्रगण्य है, और उनकी विश्व मे ख्याति भी है परन्तु फिर भी वे अपने आपको ही नही पहचानते। जब तक उनको आत्मस्वरूप का ज्ञान नही होता तब तक वे व्यर्थ मे ही इधर-उधर भटकते रहते हैं, अपना स्वरूप आत्म-ज्ञान या आत्म-ज्योति का दर्शन कराने वाला केवल गुरु ही होता है, सद्गुरु ही व्यक्ति को उसकी आत्मा मे साक्षात्कार कराने मे समर्थ होता है।

जब तक मुझे आपका सानिध्य प्राप्त नही हुआ था तब तक मैं अपने आपको विद्वान और योग्य समझता था, जब तक मैंने आपकी उगली नही पकडी थी तब तक पूरा भारत मुझे भौतिक शास्त्र का विद्वान् मानता था, जब तक मैं आपके चरणो के पास नही बैठा था तब तक मुझे अपने आप पर बहुत अधिक घमण्ड था, जरूरत से ज्यादा अह था और मैं अपने आपको बहुत कुछ समझने लग गया था, परन्तु जिस दिन आपका वरदहस्त मेरे सिर पर पडा उस दिन एक नई ज्योति के दर्शन हुए, एक नया प्रकाश मेरी आखो के सामने आया, मैंने पहली बार अनुभव किया कि इतना शीतल स्पर्श आज तक मेरे जीवन मे अनुभव नही हुआ। मुझे उस दिन जिस स्वर्गिक सुख की अनुभूति हुई थी वह अपने आप मे वर्णनातीत है। बूद तभी तक उछलती है जब तक वह बूद होती है पर उसको अपने वास्तविक रूप का ज्ञान तभी होता है जब वह समुद्र मे मिलती है, उस समुद्र के सामने उसका महत्त्व क्या है, ठीक ऐसा ही मैंने आपके सामने आने पर अपने आपको अनुभव किया, मैंने दूर से हिमालय की धवलता का अवगाहन किया था, और उससे प्रवाहित गगा मे स्नान किया था, परन्तु इन दोनो का सयुक्त आभास उसी दिन हुआ था जिस दिन आपका सुखद स्पर्श मुझे प्राप्त हुआ था। आपकी आखो की करुणा, दया और प्रेम की त्रिवेणी मे जिस दिन मैं डूबा था उसी दिन मैंने अनुभव कर लिया था कि यही वास्तविक सुख है, मेरे जीवन का यही वह बिन्दु है जिसे प्राप्त करने के लिये मैं भटक रहा था।

आपका प्रथम दर्शन ही मेरे लिए एक दिव्य दर्शन था। और पहली बार ही आपको देखकर मैं अपने आपमे आपके प्रति सम्मोहित-सा अनुभव करने लगा था। वास्तव मे ही सन्त के दर्शन ही जीवन की पूर्णता का परिचायक होता है। यह मानव का भाग्य है कि उसे जीवन मे सच्चे सत के दर्शन हो जाय। मुझे अपने पिता के द्वारा कही हुई एक घटना का स्मरण हो रहा है, उन्होने कहा था कि जीवन की पूर्णता तभी होती है जबकि सच्चे सन्त के दर्शन हो जाए, फिर भले ही वह सन्त भभूत रमाया हुआ हो या दिगम्बर हो, लगोटी पहने हुए हो या पूर्ण गृहस्थ हो, इससे उस सन्त की दिव्यता पर कोई असर नही पडता, सन्त के दर्शन ही मानव के पापो का क्षय होता

है। इस सबध मे उन्होंने मुझे एक कहानी सुनाई थी जो कि मुझे आज भी स्मरण है।

एक बार देवर्षि नारद ने भगवान विष्णु से प्रश्न किया कि सन्त के दर्शन करने से क्या लाभ है ? भगवान विष्णु नारद के प्रश्न को सुनकर विहसे और कहा कि अमुक स्थान पर एक मिट्टी के कण को लुढकाता हुआ कीट जा रहा है, यह प्रश्न उससे पूछो।

महर्षि नारद उस कीट के पास गये और उससे प्रश्न किया। प्रश्न सुनते ही कीट ने देवर्षि नारद को एक क्षण के लिए देखा और अपने प्राण त्याग दिये।

नारद लौटकर विष्णु के पास पहुचे और जो घटना घटी थी वह बता दी, भगवान विष्णु ने एक वर्ष बाद आने के लिए कहा।

एक वर्ष बाद नारद ने जब पुन यही प्रश्न दोहराया तो विष्णु भगवान ने कहा कि अमुक जगल मे अमुक सरोवर के किनारे बैठे हुए राजहस से तुम जाकर प्रश्न करो, इसका उत्तर वह देगा।

नारद तुरन्त उस स्थान पर पहुचे और उस राजहस से यही प्रश्न किया। राजहस ने नारद को ध्यानपूर्वक देखा और अपने पर फैला कर वही समाप्त हो गया।

नारद को अत्यन्त दुख हुआ और उन्होंने विष्णु से जाकर सारी बात कह दी। भगवान विष्णु ने एक बर्ष बाद फिर आने के लिए कहा।

एक वर्ष बाद जब नारद ने पुन यही प्रश्न भगवान विष्णु के पास रखा तो भगवान विष्णु ने उन्हे एक नगर के राजगृह मे जन्मे नवजात शिशु से वह प्रश्न पूछने के लिए कहा।

नारदजी तुरन्त उस राजगृह मे पहुचे, वहा उनका अत्यन्त आदर सत्कार हुआ, उन्होने एकान्त मे उस शिशु से बात करने की इच्छा प्रकट की। लोगो को आश्चर्य हुआ कि यह नवजात शिशु देवर्षि नारद से किस प्रकार बातचीत कर सकेगा, पर नारद का हठ देखकर सभी अलग हो गये।

जब नारद ने प्रश्न किया कि सन्त के दर्शन से क्या लाभ है तो शिशु ने उत्तर दिया, महर्षि नारद पहली बार मैं कीडा था आपके दर्शन से मेरी मृत्यु हुई और मै उच्च योनि मे राजहस बना। दूसरी बार जब आप जैसे सन्त के दर्शन हुए तब मैं उस योनि से छुटकारा पाकर इस राजगृह मे जन्म लिया है और आज आपके पुन दर्शन प्राप्त हुए हैं अत सुखपूर्वक राज्य भोगने के बाद मेरी मुक्ति हो सकेगी।

सन्त अपने आप मे चलते फिरते देवालय हैं, विचरण करते हुए पवित्र तीर्थ स्थल हैं, और आप मे मैंने एक सच्चे सत के दर्शन किये हैं, आपके दर्शन करने के बाद मेरे जीवन मे कोई भी इच्छा, कोई भी आकाक्षा बाकी नही रही है।

यद्यपि यह सब कुछ लिखने का मुझे कोई अधिकार नही है, यह लिखकर एक प्रकार से मैं पागलपन ही कर रहा हू, परन्तु मेरे मन मे आपके जाने के बाद इतनी अधिक छटपटाहट बढ गई है कि मैं बिना कहे रह नही सकूगा। मैं बहुत कुछ कहना चाहता हू परन्तु जब भी आप मेरे सामने होते हैं मेरी वाणी रूध जाती है, गला भर आता है और आखो मे हर्ष और आनन्द के आसू छा जाते हैं, इस प्रकार, मैं आपकी

मूर्ति के भली प्रकार से दर्शन करना चाहते हुए भी दर्शन नही कर पाता हू, आपको वहुत कुछ कहना चाहते हुए भी कुछ नही कह पाता हू, अपने मन की व्यथा, अपने मन की तडफ, अपने मन की वेचैनी आपके सामने खोल कर रखना चाहता हू पर रख नही पाता। पता नही आपके सामने आते ही मेरी क्या अवस्था हो जाती है कि मैं कुछ भी नही कह पाता, कुछ भी नही कर पाता, जो भी कुछ याद होता है वह सव विस्मरण हो जाता है और आखो के सामने करुणा और प्रेम की साक्षात मूर्ति साकार हो जाती है।

मैंने आपको सागर की तरह अनुभव किया है, मैंने यह देखा कि इस सागर मे जो जितनी ही ज्यादा गहरी डुवकी लगाता है वह उतने ही ज्यादा मूल्यवान रत्न प्राप्त करता है। मैं अपनी व्यक्तिगत अनुभूति के माध्यम से कहने मे समर्थ हू कि आपके द्वारा साधना की जो गगा प्रवाहित होती है वह अपने आप मे निर्मल है, उसमे स्नान कर चित्त हल्का हो जाता है, मन मे कई गुना आनन्द वढ जाता है और पूरा शरीर एक नये ही भावलोक मे विचरण करने लग जाता है।

आपसे अलग हुए लगभग एक वर्ष वीतने को आ रहा है और इस एक वर्ष मे एक क्षण के लिए भी मैं आपको भुला नही पाया हू। सम्भवत मैं अपने जीवन मे आपको भुला भी नही सकूगा, आपने मुझे दिव्य विन्दु के दर्शन करने को कहा है, परन्तु जव भी मैं दिव्य विन्दु पर ध्यान अवस्थित करता हू तव आपका सुन्दर स्वरूप मेरे सामने साकार हो जाता है, और वह विन्दु अपने आप तिरोहित हो जाता है, उस समय जितना आनन्द प्राप्त होता है, मैं उसका वर्णन नही कर सकता, मेरी लेखनी मे या मेरी जीभ मे इतनी शक्ति ही नही है कि मैं उस आनन्द का वर्णन कर सकू।

यद्यपि आपने मुझे जो 'चाक्षुष-साधना' सिखाई थी, उसके प्रयोग से मैं वरा-वर आपके दर्शन करता रहा हू, और अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को सरस करता रहा हू, परन्तु इससे तृप्ति नही होती। ऐसा लगता है जैसे वहुत कुछ होते हुए भी मैं हर वार वचित रह जाता हू, वहुत कुछ प्राप्त करना चाहते हुए भी प्राप्त नही कर पाता, आपके शरीर दर्शन का जो आनन्द मैंने प्राप्त किया है, वह अपने आप मे अन्य-तम है। चाक्षुष-साधना से तो केवल मेरी आत्मा ही आपको देख पाती है, परन्तु मेरे नेत्र अतृप्त हैं, उनकी प्यास तव तक नही वुझती जव तक कि ये नेत्र आपके दर्शन न कर लें। दूर से हिमालय के दर्शन उतना आनन्द कैसे दे सकते हैं जितना आनन्द उस हिमालय से मिलने पर या हिमालय की छाया मे वैठने से प्राप्त होता है, जव-जव भी मैंने इस सवध मे साधना के द्वारा आपसे आज्ञा चाही है, तव-तव आपने निष्ठुरता से मना कर दिया है, पता नही मुझ से ऐसा क्या अपराध हो गया है, जिससे कि आप निकट आने की अनुमति नही देते। हो सकता है मुझ से अपराध हुआ हो, परन्तु मैं तो वालक हू और वालक का धर्म ही गलतिया करना है। आपको मैंने माता और पिता दोनो ही रूपो मे देखा है, दोनो का सयुक्त स्वरूप ही गुरु होता है और इसी रूप मे मैंने आपके दर्शन किये है, फिर मुझे आपके दर्शन करने से वचित क्यो रखा जा रहा

है ? 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' पुत्र कुपुत्र हो सकता है परन्तु मा कुमाता नही होती, मै अपराध कर सकता हू परन्तु आप क्षमाशील हैं, करुणा की साक्षात मूर्ति हैं, आप मेरे अपराध पर ध्यान दें और मुझे आज्ञा दें जिससे कि मै आपके चरणो मे आ सकू, आपके सानिध्य मे कुछ क्षण बैठ सकू और अपने जीवन को धन्य कर सकू, इन अतृप्त आखो की प्यास बुझा सकू, और जीवन की अभिलाषा को, इच्छा को पूर्णता दे सकू।

इस जीवन मे तो शायद मेरे द्वारा कोई पुण्य कार्य नही हुआ होगा, परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि पूर्व जन्म मे मैने अवश्य ही पुण्य कार्य किये होंगे जिससे कि मै आपका सान्निध्य पा सका, आपके चरणो मे बैठ सका, और आपकी कृपा, आपका स्नेह, आपका ममत्व पा सका। आपके पास रहकर छ वर्ष किस प्रकार से बीत गये कुछ मालुम ही नही पडा। ऐसा लगा जैसे हवा मे कपूर विलीन हो गया हो और उसकी गध ही वातावरण मे रह गई हो, परन्तु आपसे अलग होकर यह एक वर्ष निकालना इतना अधिक कठिन हो गया है कि कुछ कह नही सकता। मेरे लिये प्रत्येक क्षण भारी हो रहा है, यह एक वर्ष इस प्रकार से बीता है जैसे मैने हजारो वर्ष बिता दिये हो। अब तो ऐसी स्थिति बन गई है कि मै चाहते हुए भी अपने आपको रोक नही पा रहा हू, यद्यपि आपके पास आने मे आपकी आज्ञा बाधक बन रही है, परन्तु मै बालक हू और बालहठ से कही मेरे द्वारा आपकी आज्ञा का उल्लघन न हो जाय, यदि कुछ समय तक आपके दर्शन नही कर सका, तो शायद ये प्राण इस पिंजरे मे नही रह पायेंगे। कुछ ऐसा ही आभास होने लगा है।

पिछली बार जब साधना मे आपसे बातचीत करने का सुखद क्षण प्राप्त हुआ था तब आपने मुझे विवाह करने की आज्ञा दी थी, पर प्रभु मेरी इच्छा इस प्रकार की नही रह गई है, मै अब अपने जीवन को पुन उस कीचड मे नही धकेलना चाहता, जिस कीचड से मै बाहर निकल आया हू। मेरी तो एक ही इच्छा है कि मै आपके चरणो मे रहू, आपका सुखद स्पर्श अनुभव करू, आपकी आज्ञा का पालन करू और इस प्रकार मेरा पूरा जीवन आपके चरणो मे रहते हुए व्यतीत हो जाय।

मेरे लिए माता-पिता, भाई बन्धु, स्वजन, कुटुम्ब, परिवार यदि कुछ है तो वह सब कुछ आप ही हैं। मेरे लिए न कोई मन्दिर है, न कोई इष्ट देवता। मेरे लिए कुछ है तो वह केवल आपका सामीप्य है, आपकी कृपा है।

आज विश्व, कलह, युद्ध, रोग, और अधकार से ग्रस्त है, चारो तरफ धोखा, छल, कपट का साम्राज्य छाया हुआ है। पीडित मानवता पुकार रही है, आवश्यकता है एक ऐसे स्नेह की, एक ऐसे करुणा के प्रवाह की, जिससे कि वह पीडित मानवता सान्त्वना पा सके, उसके हृदय मे आनन्द और उमग आ सके, और यह सब कुछ आपके द्वारा ही सभव है, आपकी करुणा के माध्यम से ऐसा हो सकेगा, ऐसा मैं अनुभव करता हू। इस प्रकार के कार्य मे मै भागीदार बन सकू, आपके सन्देश को ज्यादा से ज्यादा

लोगो तक पहुचा सकू, उनकी पीडा हर सकू और उन्हे सच्चा आत्मीय सुख दे सकू, यही मेरी इच्छा है, यही मेरा लक्ष्य है और इस लक्ष्य की पूर्ति तभी सभव है जबकि आपका वरदहस्त मेरे सिर पर हो, आपकी आज्ञा मेरे लिए पाथेय हो।

आपने मुझे बहुत कुछ दिया है, मैंने आपसे बहुत कुछ पाया है फिर भी मैं अपने आप मे अतृप्त हू। ऐसा लग रहा है जैसे अभी तक मेरा पूरी तरह से निर्माण नही हो पाया है, अभी तक मेरी आखो मे खालीपन है, और यह खालीपन यह, शून्यता आपके द्वारा ही भरी जा सकती है, आपने साधना के माध्यम से जो कुछ मुझे दिया है, उससे उऋण इस जीवन मे तो क्या अगले सात जीवन मे भी नही हो सकता। यदि मेरे शरीर के चमडे की चर्म पादुकाए आपके पैरो के लिए बनें तब भी मेरा उस कृपा से उऋण होना सभव नही है।

आपके पास रहकर मैंने जितना सुख और सन्तोष प्राप्त किया है उतना जीवन मे कभी नही कर पाया था। मुझे ऊचे-से-ऊचा सम्मान मिला था, विदेशो मे मेरे कार्य की सराहना हुई थी, तब भी मुझे इतना आनन्द प्राप्त नही हुआ था, जितना आनन्द आपके चरणो मे बैठकर प्राप्त हुआ था। आपसे जो कुछ पाया है वह मेरे लिए अन्यतम है, आपके घर मे जो शान्ति प्राप्त हुई है, उसका वर्णन करना सभव नही है।

पूज्य माताजी करुणा की साक्षात मूर्ति हैं, मै उनसे प्रार्थना करूगा कि वे आपको प्रेरित करे, जिससे कि आप मुझे अपने चरणो मे बुला सके, मै अतृप्त हू और आपके चरणो के पास आने के लिए उतावला हू, आपके बिना मेरी कोई गति नही है, आप ही मेरे सर्वस्व है, सब कुछ हैं।

एक बार पुन आपके चरणो मे नमन करता हुआ आपके सान्निध्य मे आने की इच्छा प्रकट करता हू और आज्ञा चाहता हू जिससे कि मैं जल्दी-से-जल्दी आपके चरणो मे आ सकू।

आपका ही,<br>
(अरविन्द कुमार)

प्रेषक श्री सच्चिदानन्द परमहस
स्थान अज्ञात (सभवत वद्रीनाथ के आस पास)
प्राप्त कर्त्ता डा० नारायणदत्त श्रीमाली
आलोक डा० श्रीमाली जी ने परमपूज्य गुरुदेव के पास लिखे गए एक पत्र मे साधना सम्वन्धी अपनी आन्तरिक अनुभूतियो का विवरण देते हुए उनसे मार्ग निर्देश की याचना की थी, पूज्य श्री स्वामीजी ने यह पत्र उसी के उत्तर मे लिखा था।

विषय साधना ज्ञान।

ओम तत् सत्
आशीर्वादक श्री सच्चिदानन्द परमहस
चिरायु।

परम शुभा शिपा राशय सन्तु।

वावा ! तुम लोगो के मगल के लिए परम मगलमय के समीप प्रार्थना करता हू, मगलमय तुम लोगो का मगल करे, यही मेरा इष्ट है। वत्स ! तुम्हारा पत्र पाकर सब अवगत हुआ।

वत्स ! जो कुछ तुम वाहर देखने का प्रयत्न कर रहे हो, वह अपने अन्तर मे देखो, क्योकि अन्तर का प्रकाश ही वाह्याकाश को प्रकाशित और ज्योत्स्नित करता है। साधारणत मानव अपनी आन्तरिक चिन्ता को वाह्याकाश मे देखता हैं और तभी वह चिन्ता घनीभूत होकर उसके मस्तिष्क को तथा चित्त को विभ्रान्त कर देती है, यदि तुम सूक्ष्मता से देखोगे तो यह सारी प्रकृति नित्य लीलालीन दिखाई देगी, अन्तर के प्रकाश के द्वारा ही तुम वाह्य प्रकृति के आभ्यन्तरिक मूल को देख सकते हो, मन मे प्रकाश का और पवित्रता का सूक्ष्म विन्दु भी होता है तो यह सूक्ष्म विन्दु जगत-शक्ति के प्रकाश से मिलकर मन को शुद्ध और चित्त को परिष्कृत कर देता है। सर्वव्यापिनी शक्ति को यदि हम आभ्यन्तर मे स्थापित करें, तभी हम अपने अन्तर के प्रकाश को वाह्य प्रकाश मे मिलाने मे समर्थ हो सकते हैं, महाशक्ति का ज्ञान अन्तर और वाह्य को एकाकार करने मे समर्थ होता है। अन्तर की पवित्रता से ही महामाया के विशुद्ध भाव का चिन्तन हो सकता है तत् हेतु जिस ज्ञान का उदय होता है वही अखण्ड प्रकाश तथा उज्ज्वल तेज कहा जाता है, इसी उज्ज्वल तेज के प्रभाव से मन का पाप—ताप, ज्वाला, यत्रणा, वेदना, आशक्ति आदि तिरोहित हो सकती है और इसके वाद ही चित्त शुद्ध और परिष्कृत हो पाता है। ऐसा होने पर ही चित्त मे अगूठे के सदृश जो जगत—शक्ति का प्रकाश उदित होता है वही प्रकाश हमारे जीवन को ऊचा उठाने मे समर्थ होता है। फलस्वरूप मानव वाह्य व्यापार को भूल जाता है और इस स्थूल जगत से अपने आपको हटाकर सूक्ष्म जगत मे प्रवेश करने का अधिकारी बन जाता है।

विज्ञान के द्वारा स्थूल की उपासना ही हो पाती है, जव तक सूक्ष्म का चिंतन

नही होगा तब तक हमारा सारा व्यापार निष्क्रिय है, क्योकि विज्ञान के द्वारा जो उपासना होती हैं वह स्थूल ही होती है, सूक्ष्म की उपासना चित्त-वृत्तियो का निरोध करने पर ही सम्भव है, उसके लिए कलुषित और सन्तप्त चित्त को परे हटाकर निर्मल चित्त की अवधारणा करनी चाहिए, महाशून्य मे जब महाशक्ति का आलोक सचरित होता है उस समय निर्मल चित्त वाला ही उस प्रकाश और आलोक के रहस्य को समझ पाता है क्योकि इस प्रकार के रहस्य को समझने की जो भाषा है वह अलिखित है।

विश्व मे जो शक्तिभूत है उसके मूल मे यही शक्ति कार्य करती है जो कि आदि, मध्य और अन्तिम है। विषयो मे इसी का प्रकाश द्युतिमान होता है उसकी शक्ति सकुचित होने पर भी यह विश्व सकीर्ण होता है और धीरे-धीरे आसुरी शक्तियो का उदय होता है, जीवन मे पूर्णता प्राप्त करने के लिए इन आसुरी वृत्तियो का त्याग आवश्यक है।

यह परब्रह्ममयी सत्ता पूरे विश्व को नाना प्रकार से खेल खिलाती है, यही सुख-दुःख, हानि-लाभ, आशा-निराशा, पिता-पुत्र, भाई-बहिन, सेव्य-सेवक आदि को लेकर एक ऐसा खेल खेल रही है जिसको समझना सुगम नही। भ्रमवश हम इस खेल को समझ नही पाते और इसकी आलोचना करके अपने आपको बुद्धिमान अनुभव करते हैं, परन्तु इस प्रकार की आलोचना बुद्धिहीनता का प्रमाण है क्योकि जीव, आत्मा, स्वरूप सूक्ष्म, स्थूल आदि सभी इसी महाशक्ति मा की नित्य लीला है, जब तक इस लीला को समझने का प्रयास नही करोगे तब तक तुम्हारा चित्त विभ्रम और उद्विग्न रहेगा।

अगीभूत पुत्र और शिष्य मे कोई अन्तर नही होता। जो वात्सल्य गृहस्थ मे मा के द्वारा अगीभूत पुत्र को प्राप्त होता है, सन्यास मे वही वात्सल्य गुरु द्वारा शिष्य मे प्रवाहित होता है। तुम्हारा निर्माण एक विशेष उद्देश्य को लेकर मा जगज्जननी ने योग शक्ति के माध्यम से किया था। मैं तो केवल उस आद्य शक्ति के प्रकाश का सूक्ष्म कण हू। जो कुछ होता है, जो कुछ हुआ है, वह सब उस आद्या शक्ति के भ्रू-सकेत से ही हुआ है, तुम्हारा जन्म, सामान्य मानव के रूप मे जन्म लेकर समाप्त होने के लिए नही हुआ है, अपितु तुम्हारी रचना एक विशेष उद्देश्य को लेकर है, तुम्हारा मेरे पास आना और मेरा तुम्हे अगीभूत करना भी उस नित्य लीलाविहारिणी की एक लीला है। सूक्ष्म रूप मे तुम भी उसी प्रकाश के एक कण हो जिस प्रकाश के कण से मेरा आविर्भाव है, परन्तु तुम्हे अपने पास खीचना और एक विशेष प्रकाश से तुम्हारा निर्माण करना एक विशेष उद्देश्य से प्रेरित है। जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी के लोंदे को चोट देकर एक विशेष रूप मे निर्मित करता है उस कुम्भकार का एक निश्चित उद्देश्य होता है और इस उद्देश्य से प्रेरित होकर ही वह मिट्टी को हाथ लगाता है एव तीव्राघात से उसका स्वरूप निर्मित करता है।

तुम्हारा मेरे पास आना और मेरे द्वारा आघात दे-देकर एक विशेष रूप मे

तुम्हारा निर्माण करना एक निश्चित उद्देश्य को लेकर था। यह उद्देश्य वह शक्ति ही जाननी है मुझे तो केवल उसकी आज्ञा का पालन करना है, इसीलिए तुम्हारे प्रति एक विशेष उत्तरदायित्व अपने चित्त मे अनुभव करता हू और तब तक यह बाबा शान्त नही होगा जब तक तुम अपने लक्ष्य पर पहुंच नही जाओगे।

मेरे मन मे मोह नही है, अपितु वात्सल्य भाव अवश्य है क्योकि मैंने तुम्हारा पालन उसी रूप मे किया है जिस प्रकार से एक मा अपने नवजात वत्स का करती है। मेरे सम्पर्क मे रहने पर तुम्हे जरूरत से ज्यादा यातना और कष्ट सहन करना पडा है परन्तु यह सब कुछ इसलिए आवश्यक था जिससे कि मेरे निर्माण मे किसी प्रकार की कोई न्यूनता न रहे। तुम्हारे पत्र से जो भावना स्फुटित होती है वह मोह है, क्योकि सूक्ष्मता मे यदि तुम प्रवेश करोगे तो देखोगे कि वहा न पत्नी है, न पुत्र है, न मा है, न बाप है, न गुरु है, न शिष्य है, सभी एक ही अश के अलग-अलग कण हैं, जिनका अपने आप मे पृथक अस्तित्व होते हुए भी पृथक अस्तित्व नही है। वे अलग-अलग होते हुए भी एक हैं क्योकि इन सबका निर्माण उसी मा आद्याशक्ति के ज्योतिर्बिन्दु से हुआ है, इसलिए मेरे समीप आने और मेरे साथ रहने की जो इच्छा तुमने व्यक्त की है वह तुम्हारा मोह ही तो है, यह मोह उस शक्ति के प्रकाश तथा देह विकास के क्रिया सयोग से जन्म लेता है, जब तक इस प्रकार के शत्रु—द्वेष-दम्भ, मोह—शरीर स्थित मानवीय भावो के आकर्षण—विकर्षण से सघर्षभूत रहेगे तब तक इनसे पिण्ड छुडाना सम्भव नही होगा। इसीलिए यह प्रकाश बिन्दु जगत जननी मा की गोद मे रहते हुए भी शत्रुओ से आक्रृष्ट रहता है और इन शत्रुओ के कुसगत से चित्त वेदना-भागी होता है।

परन्तु पुत्र! इस प्रकार वेदना-भागी होने से जीवन के क्षणो का मूल्य नहीं समझ सकोगे। हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण उस नित्य लीला विहारिणी का प्रकाश है, अत इन क्षणो को शत्रुओ से अबद्ध करना अपने आपको पतन के कगार पर स्थित करना है, तुम्हे आशाहीन होने की आवश्यकता नही, सब कुछ होते हुए भी बाबा देह रूप मे है, और इस देह रूप मे होने पर कभी-कभी इन शत्रुओ का आघात सहन करना ही पडता है, इसीलिए तुम्हारे प्रति मोह की व्याप्ति हो जाती है, यद्यपि मैं अपने अन्तर से तुम्हे अलग नही देखता हू क्योकि तुम शिष्य रूप मे मेरे ही अगीभूत हो और तुम्हारे जीवन का प्रत्येक कार्य मेरे ही उद्देश्य की पूर्ति मे सहायक है।

नित्य लीलाविहारिणी के कार्य मे व्याघात डालने का पापभोगी मैं स्वय अपने आपको समझता हू, तुम्हारे जीवन का निर्माण गृहस्थ रूप मे होते हुए भी सन्यास रूप मे था। पूर्वजन्म मे तुम मुझसे पूर्णत अगीकृत रहे हो, मेरे ही अग से तुम्हारे शिष्यत्व का निर्माण हुआ था और आद्य रूप से प्रारम्भ कर अन्तिम क्षण तक प्रवाहमान तुम्हारा वैराग्य जीवन प्रवाहित रहा था। परन्तु मैं इस बात को समझता हू कि सन्यास-जीवन—एकागी जीवन है, आज आवश्यकता समाज को चैतन्य करने की है, आद्या शक्ति मा की क्रियाओ तथा भौतिक जगत की स्थूल व्यापारो मे सघर्षण

की वजह से पाप, क्रोध, छल, धोखा, असन्तोष, विग्रह आदि आसुरी प्रवृत्तिया व्याप्त होने लगी हैं और धीरे-धीरे इस भू पर आसुरी वृत्तियो का विकास बढता जा रहा है, ऐसे समय मे एकान्त-भोगी होने से जीवन-निर्माण का पूर्ण उद्देश्य अपूर्ण रह जायेगा। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि इस स्थूल व्यापार मे सलग्न मानव को सही रास्ता दिखाने के लिए प्रयत्न किया जाए और उस आद्यप्रकाश को पुन स्थापित किया जाय जिससे कि भूतल पर दया, करुणा, प्रेम, स्नेह की अमृत-वर्षा हो सके।

इसके लिए उन कणो के समान ही अपने कण को बनाना आवश्यक है, जब तक उनके सदृश बनकर कार्य नही किया जायगा, उनके बीच रहकर अपनी भावनाओ को व्यक्त नही किया जायगा तब तक इस कार्य की पूर्णता सभव नही है, तुम्हारे जीवन के तन्तु भोगमय न होकर योगमय ही रहे है परन्तु फिर भी मुझे उस जगज्जननी मा के सकेत से तुम्हे पुन गृहस्थ में प्रवेश देने की कठोर आज्ञा देनी पडी है, यद्यपि वत्स ! इससे तुम्हारे चित्त पर कठोर आघात लगा था फिर भी ऐसा करना प्रकृति के मूल धर्मों के अनुरूप है इसीलिए तुम्हें ऐसा करने के लिए बाध्य होना पडा है।

इस समय पृथ्वी पर जिस प्रकार की भावनायें प्रवाहित हैं, वे आसुरी वृत्तियो की द्योतक हैं, ये वृत्तिया स्थूलता मे गम्य हैं, सूक्ष्मता की तरफ इन वृत्तियों का निरोध हो गया है, जब तक इन आसुरी वृत्तियो की पराजय नही होती तब तक दैविक वृत्तियो का अभ्युदय सभव नही है। इन दैविक वृत्तियो के अभ्युदय के लिए ही तुम्हे पुन गृहस्थ मे भेजने की इच्छा मा की रही है, इसीलिए मैंने यहा से रवाना होते समय तुम्हें कहा था कि तुम्हे इस विश्व मे कमलवत् रहना है, आसुरी वृत्तियो का प्रहार होने पर भी तुम्हे क्षमाशील बने रहना है, जिस समय चारो ओर पाप-वृत्तियो का अन्धकार व्याप्त हो, उस समय एक छोटे से दीपक को स्वयमेव प्रकाशित बनाये रखने मे अत्यधिक जीवट की आवश्यकता अनुभव होती है, इसीलिए मेरे सैंकडो शिष्यो के होते हुए भी इस कार्य के लिए मात्र तुम्हारा चयन करना पडा, मैंने तुममे मा के योगक्षेम से जीवट की भावना बलवती देखी है, मैंने तुममे दिव्य गुणो के परिमार्जन की भावना अनुभव की है, प्रतिकूल परिस्थितियो मे अपने आपको अडिग बनाये रखने की क्षमता का साहस देखा है इसलिए इस कार्य के लिए तुम्हारा चयन करना पडा है और इसी हेतु तुम्हे पुन गृहस्थ धर्म मे भेजने के लिए कृत सकल्प होना पडा है।

गृहस्थ मे विश्व जननी के अपरिवर्तनीय नियमो तथा क्रिया सयोग से उत्पन्न द्वेषादि प्रवृत्तियो का विकास और मोहादि भावनाओ का परिमार्जन स्वाभाविक है, परन्तु तुम्हे अपनी पूर्व शृखला को स्मरण रखना है, तुम्हारे पूर्व जीवन सन्यासी के रूप मे विकसित हुए हैं, इसीलिए इस जीवन मे भी सन्यासी वृत्तियो का विकास तुम्हारे जीवन मे स्वाभाविक रूप से रहा है, परन्तु फिर भी तुम्हे अपने गृहस्थ धर्म का पालन उसी रूप मे करना है, जिस रूप मे आद्या शक्ति मां की लीला विचरण करती है, फलस्वरूप मोह आदि वृत्तिया तुम पर हावी होने का प्रयास करेंगी। चारो तरफ जिस प्रकार से आसुरी वृत्तिया तुम पर प्रहार कर रही हैं, वह मैं अनुभव कर

रहा हू। फिर भी तुम्हे अपने कर्त्तव्य पथ से च्युत नही होना है और इन वृत्तियो के बीच रहते हुए भी अपने आपको निर्लिप्त और निर्माल्य बनाये रखना है। मोहादि वृत्तियो के बीच भी अपने आपको तटस्थ भाव से बनाये रखना ही तुम्हारे सन्यास जीवन की कसौटी है। गृहस्थ जीवन मे सन्यास जीवन को विकसित करना कठिन कसौटी है, जिस प्रकार से मैंने तुम्हारा निर्माण किया है उस रूप मे देखने पर मुझे विश्वास है कि तुम इस कसौटी पर खरे उतरोगे।

वत्स! तुमने अपने पत्र मे चित्त की चचलता का आभास दिया है, तुम्हारा चित्त, गृहस्थ से हट कर मेरे पास आने को व्याकुल है, ऐसा तुमने व्यक्त किया है, परन्तु तुमको यह नही भूलना चाहिए कि बाबा ने जिन कष्टदायक शूलो मे तुमको फेंका है, उसके पीछे एक अभीष्ट है, जब तक वह अभीष्ट प्राप्त नही होता तब तक तुम्हे उन तीक्ष्ण शूलो से सघर्ष करना है। गृहस्थ जीवन तो उस नित्य लीला विहारिणी का एक कौतुक है और तुम्हे इस गृहस्थ को इसी रूप मे देखना है, इसके मूल मे जाकर जब तुम देखोगे तो वहा यह भेद दृष्टिगोचर नही होता। वहा पत्नी, पुत्र मा, आदि का बन्धन नही है, *वहा पर सर्वात्म भाव है, एकात्म भावना का उदय है*, तुम्हे इसी *मूल भाव* से इस गृहस्थ को देखना है।

इससे भी जो कठिन कार्य तुम्हे सौंपा है, वह विश्व मे मूल विद्याओ का विकास करना है। जन मानस मे इस प्रकार की चेतना जाग्रत करनी है। जिससे कि वह सूक्ष्मता का बोध कर सके। स्थूलता मे जो निमग्नता है उससे उन्हे परे हटाकर सूक्ष्मता के दर्शन करना है। यह कार्य मन्त्रो के माध्यम से सभव है, ज्योतिष, तन्त्र, आदि इसी के अगीभूत हैं, अत इन सारी विद्याओ को लेखनी के माध्यम से, बाबा के माध्यम से, विचारो और भावनाओ के माध्यम से व्यक्त करना है, और इन लुप्त होती हुई विद्याओ को पुनजीवित करना है, जिससे कि इस पृथ्वी तल से इन विद्याओ का लोप न हो जाय।

यह कार्य सन्यास मे रहकर सभव नही है, यदि गृहस्थ लोगो के बीच कार्य करना है तो गृहस्थ के रूप मे रहकर ही सभव है, इसीलिए इस जीवन मे तुम्हे गृहस्थ मे प्रवेश देने के लिये मुझे बाध्य होना पडा है, तुम्हारे मन मे यह दृढ सकल्प बना रहना चाहिए कि तुम तभी अपने जीवन की पूर्णता का अनुभव कर सकोगे जब तुम इन विद्याओ को पुन पल्लवित पुष्पित कर सकोगे।

बाबा। निराश होने का कोई कारण नही है। यदि तुम्हारा और मेरा स्थूल देह सम्पर्क नही होता है तो आशाहीन होने का क्या कारण है? क्या तुम मुझे देखते नही हो? क्या तुम मुझसे सम्प्रक्त नही हो? क्या जीवन और आत्मा का परस्पर सम्बन्ध नही है? नित्य इस प्रकार का क्रिया-कलाप होता है फिर यह उद्विग्नता क्यो है? जो कुछ कार्य तुम्हे सोपा है, वह कार्य बिना एक भी क्षण नष्ट किये करते रहना है, और जिस दिन मैं समझूगा कि तुम्हारा कार्य सम्पन्न हो गया है, उसी क्षण मैं अपने पास तुम्हे बुला लूगा।

यह तुम्हारे चित्त का विभ्रम है कि तुम मा योगमाया के प्रकाश कणो को

अलग-अलग रूप मे देख रहे हो, तुम्हारी पत्नी उसी योगमाया के प्रकाश रूप का एक बिन्दु है, यह आद्या शक्ति के रूप का और उसकी योगमाया का एक पुञ्ज है, [illegible] उसके द्वारा सन्यास जीवन के लिए प्रेरित कर [illegible] उसी योगमाया [illegible] का [illegible] था। यह सब कुछ उसी नित्य लीलाविहारिणी के संकेत से सम्पन्न हुआ है, उसका सन्यास की तरफ भेजना इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा जीवन पूर्णतः सन्यास के लिए रहा था। यह योगमाया की ही [illegible] का संकेत था, जो कि तुम्हारी पत्नी के माध्यम से व्यक्त हुआ है। मैंने तुम्हें पुन उसी प्रकाश रूप के पास भेजने का उपक्रम किया है, जिस प्रकाश रूप को छोड़ कर मेरे पास आए थे, इसलिए इस गृहस्थ मे भी तुम्हें योग के नित्य दर्शन करने हैं, यह भी अपने आप मे साधना की ही एक कसौटी है।

जैसे घट मे पानी का अस्तित्व अलग होता है पर घट टूटने पर वह सर्वत्र व्यापी आकाश मे विलीन हो जाता है उसी प्रकार तुम्हारा अस्तित्व अलग होते हुए भी मेरा ही अस्तित्व रूप है। इसीलिये तुम पत्नी को पत्नी मानते हुए भी आद्या शक्ति के प्रकाश का एक कण अनुभव कर सकते हो, तुम्हारा गृहस्थ—गृहस्थ न होकर उस लीलाविहारिणी का एक कौतुक है, जो कि समाज के लिए एक गृहस्थ का पर्याय है जबकि मेरे लिये वह एक सुखद कल्पना, एक अनुकूल वातावरण और मा जगदम्बा का एक निश्चित प्रकाश बिन्दु है।

तुम्हें अपने प्रयत्नो मे पूरी तरह से लीन रहना है क्योंकि गृहस्थ के रूप मे तुम्हारे पास बहुत ही कम समय बचा है, इसका कारण यह है कि तुम पिछले कई जन्मो से सन्यास रूप मे रहे हो और इस जीवन का यह रूप भी सन्यासवत् ही है, यद्यपि इसका बाह्य आचरण गृहस्थ रूप मे दिखाई देता है, इसीलिए तुम्हे जल मे रहते हुए भी कमल-पत्र-वत् विचरण करना है। जीवन के प्रत्येक क्षण की सार्थकता तुम्हारे कार्य की पूर्णता है, इसके लिये भूख, प्यास, निद्रा, आदि का कोई स्थान नही है, जीवन के प्रत्येक क्षण को उस कार्य मे लीन करना है जिस कार्य के लिए तुम्हे भेजा है, और यह भी स्पष्ट है कि तुम्हे शीघ्र ही हमेशा के लिए बाबा के पास आना है, जो जीवन के पूर्ण क्षण अपनी चित्त वृत्तियो को उर्ध्वगामी बनने की ओर प्रवत्त होना है।

तुम्हें नित्य जगत जननी के चिन्तन तथा उनके कार्यों को पूर्णता देना है, शिशु जिस प्रकार मातृ गर्भ मे अमृता नाडी के रस से पोषित होता है, उसी प्रकार तुम्हे इस जीवन में मा के चिन्तन रस के माध्यम से वृद्धित होना है, इस वृद्धि के साथ चैतन्य शक्ति का अस्तित्व स्वय प्रकाश-मान रहेगा। तुम्हे मा के अलावा और किसी के प्रति नमन नही होना है, मानव के सामने दीनता प्रदर्शित करना तुम्हारे लिए अभीष्ट नही है, जो किसी वस्तु की अपेक्षा नही करता वही धन्य है। मैंने तुममे इन समस्त गुणो का परिमार्जन किया है और मुझे अपने आप पर जितना विश्वास है तुम पर भी उतना ही विश्वास है।

तुम्हारा कार्य विश्व मे इस प्रकार से युवक-युवतियो का चयन करना है, जिनमे इस प्रकार के गुणो के सूक्ष्म कण हो, जिन प्राणियो मे तुम्हे मा आद्या शक्ति के स्फुलिंग

दृष्टिगोचर हो, उन्हे इस कार्य के लिये प्रेरित करना है और इसी प्रकार के व्यक्तियो का चयन करना है, उन चयनित लोगो मे से जो परिश्रम तथा सर्वात्म भाव समर्पण की कसौटी पर खरे उतरे उन्ही को शिष्य रूप मे स्वीकार करना है। इस स्वीकारोक्ति मे पुरुष नारी का भेद नही होना चाहिए, तुम्हारे लिए शिष्य शिष्य है, फिर वह पुरुष रूप मे हो या नारी रूप मे, तुम्हे उनके चित्त को ऊर्ध्वगामी बनाने की ओर प्रेरित करना है और जो देव कार्य तुम्हे सौंपा है उस कार्य मे उन्हे निष्णात करना है जिससे कि वे आने वाले जीवन मे इस मानवता के प्रकाश स्तम्भ को ले कर आगे बढ सकें और मानवता के पथ निर्देशन मे सहायक हो सकें।

समय बहुत कम है, काल निरन्तर गतिशील है, और यह गतिशीलता अस्तित्व लीनता की ओर ही प्रवाहित है, इसलिए अपने जीवन मे तीव्रता के साथ कार्य करना है और कठोरता के साथ अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहना है। शरीर सुख और चित्त सुख की तरफ तुम्हे प्रेरित न होकर अपने जीवन को कठोरतम कसौटी पर कसे रखना है, अपने जीवन के प्रति जितने ही ज्यादा निर्मम हो सकोगे, सफलता उतनी ही निकट होगी।

मेरे चित्त मे तुम्हारे प्रति सर्वाधिक स्नेह है, तुम्हे सबसे अधिक कसौटी पर कसा है और यह कहते हुए मेरी आखो मे आह्लाद के कण है कि मेरे जीवन का स्वप्न तुम्हारे माध्यम से चरितार्थ होने जा रहा है, इस पृथ्वी पर आसुरी शक्तियो को समाप्त कर देवत्व की स्थापना, तथा स्थूल ज्ञान की अपेक्षा सूक्ष्म ज्ञान मत्र, तत्र, यत्र, ज्योतिष कर्म काण्ड, ज्ञान, वैराग्य, योग, साधना आदि देव विद्या का विकास मेरे जीवन का स्वप्न था, और वह स्वप्न जिस प्रकार से तुम साकार कर रहे हो इससे मेरे हृदय मे अत्यधिक आनन्द है और यह आनन्द तुम्हारे लिये आशीर्वाद के रूप मे परिणत है।

तुम्हे शीघ्र ही मेरे पास बुलाना है और हमेशा के लिये इस सिद्धाश्रम को तुम्हे सभालना है, पर इससे पूर्व तुम्हारे कार्य की पूर्णता हो जानी आवश्यक है, मुझे तुम पर अगाध विश्वास है और जिस प्रकार से तुम कार्य कर रहे हो, जिस विरोधी वातावरण मे अपने अस्तित्व को सुरक्षित रूप से बनाये रख रहे हो, जिस वात्याचक्र मे अपने आप को अडिग रखे हुए हो उससे मुझे प्रसन्नता है और तुम्हारी सकल्प शक्ति पर आस्था है।

वहू को मैं आद्या शक्ति के अश रूप मे नमन करता हू और तुम्हारे लिये वावा मगल कामना करता है।

शुभाशीष,
(सच्चिदानन्द परमहस)

षिक शिवानन्द ब्रह्मचारी

स्थान मुक्तेश्वराश्रम

ाप्त कर्त्ता डा० नारायणदत्त श्रीमाली

ालोक—प्रसिद्ध शिवानन्द ब्रह्मचारी पहले मा भैरवी के चरणो के प्रति अनुरक्त थे, तथा निर्जन वन मे एकान्त साधना कर विशिष्ठ सिद्धियो के स्वामी बने, गोरखपुर से आगे नेपाल के जगलो मे जव डा० श्रीमाली सन्यास रूप मे निखिलेश्वरानन्द के नाम से साधना करते थे, तव उनका सामीप्य प्राप्त हुआ, और शिष्यत्व स्वीकार किया, और साथ मे रहकर अति विशिष्ट साधनाए सीखी व सिद्धिया प्राप्त की।

पर कुछ समय वाद किसी विन्दु पर फटकारे जाने पर शिवानन्दजी अन्यत्र चले गये और कुछ वर्षों तक नेमीक्षारण्य मे रहे, पर उनके मन मे पश्चात्ताप की आग जलती रही और गुरुदेव श्रीमाली जी से मिलने के लिए छटपटाते रहे। अचानक एक दिन हिन्दी की किसी प्रसिद्ध पत्रिका मे निखिलेश्वरानन्द के वारे मे प्रकाशित विवरण ध्यान मे आया और वर्तमान अता-पता ज्ञात हुआ कि श्रीमाली जी ही निखिलेश्वरानन्द हैं, तो वे भाव-विह्वल हो गये और अपनी भूल स्वीकारते हुए गुरुदेव से क्षमायाचना युक्त पत्र लिखा।

परम श्रद्धेय गुरुदेव।

चरणो मे तुच्छ शिवानन्द का नमन स्वीकार करें।

मैं यह पत्र न भेजकर स्वय ही आपके चरणो मे उपस्थित होता, और आपके चरण पकड कर तव तक रोता रहता जव तक कि आप मुझे उठाकर मेरे मस्तिष्क पर शीतल हाथ नही रख देते, परन्तु मैं अपनी ही भूल पर लज्जित हू, पिछले कई वर्षो से मैं पश्चात्ताप की अग्नि मे जल रहा हू, मेरे जीवन का एक-एक कण वोझिल हो गया हे, ऐसा लग रहा है जैसे मैं जीवित नही हू अपितु जिन्दा लाश ढो रहा हू, मेरे जीवन की उमगे, मेरे जीवन की इच्छाए, उसी दिन समाप्त हो गई थी जिस दिन मैं आपसे दूर हो गया था। यह मेरे भाग्य पर नियति का क्रूर व्यग है कि मैं आप जैसे देवता के चरणो मे आकर भी अलग हो गया, मेरे जीवन का यह अभिशाप ही कहा जायगा कि मैं गगा के पावन तट पर जाकर भी तृषित ही रहा, आपसे विछुडने के वाद मैं अपने जीवन को जीवन ही नही मानता, आप अन्तर्यामी है, आपके पास असीम सिद्धिया है, मानव के मूल कण को पहचानने मे आप सक्षम हैं। आप स्वय मेरे वारे मे जान सकते हैं कि आपसे अलग होने के वाद मेरी क्या स्थिति रही है। मेरी आत्मा ने कितना क्रन्दन किया है यह आप भली प्रकार जान सकते हैं, जीवन का एक-एक क्षण मेरे लिये कितना वोझिल रहा है यह आपसे ज्यादा कोई नही जान सकता। आप स्वय मेरे बारे मे जान सकते हैं कि आज तक मैं किस प्रकार से अनाथ की तरह भटक रहा

हू, आपको पुन प्राप्त करने के लिये मैंने क्या-क्या नही किया ? कहा-कहा नही गया ? परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं चाहते हुए भी आपको पुन प्राप्त नही कर सका। यह मेरे जीवन का अभिशाप है, यह मेरे जीवन की सबसे बडी दुर्घटना है जबकि मैं आपका आश्रय पाकर भी बिछुड गया।

पर इसमे पूरी तरह त्रुटि मेरी ही थी, आपने तो मुझ दीन पर तरस खाकर मेरी इच्छा को स्वीकार किया था, मेरे जीवन का कोई भी कोना आपसे अछूता नही है, जब मैं आपके पास आया था तब मैं दीन-हीन, निराश्रित और निरूपाय था। यद्यपि बचपन से ही मेरी यह साध थी कि मैं अपना पूरा जीवन साधना मे ही व्यतीत करू और उच्चस्तरीय साधको के सान्निध्य मे रहकर अपने जीवन को सार्थक करू, इसीलिये जब बचपन मे ही मेरे मा-बाप गुजर गये तो मैं घर से भाग खडा हुआ और सोलह वर्ष की अवस्था तक भटकता रहा।

मा भैरवी की मुझ पर कृपा रही कि उसने मुझे रोक लिया और उससे मैने मा की तरह ही स्नेह पाया। इसमे कोई दो राय नही कि मा वास्तव मे ही मा थी। उसने स्वय मेरे लिये परेशानिया देखी परन्तु मेरा पालन पुत्र की तरह ही करती रही। यद्यपि मै सोलह-सत्रह वर्ष का था परन्तु उसने मुझे सोलह-सत्रह महीने से बडा माना ही नही। उसी प्रकार से हठ करके खिलाती और मेरी सुख-सुविधा का ध्यान रखती, यही नही अपितु उसने मुझे उसी प्रकार से सिखाया जिस प्रकार से मा अपने शिशु को सिखाती है। मा भैरवी तत्र, क्षेत्र मे निष्णात थी और उसने मुझे तत्र क्षेत्र मे निष्णात बनाने मे कोई कसर नही रखी। मैंने अपने जीवन मे सोच लिया था कि अब मुझे एक आश्रय मिल गया है और मैं इसी क्षेत्र मे निष्णात बनूगा तथा जीवन के बाकी वर्ष तत्र को सर्वोच्चता प्रदान करने मे सफल हो सकूगा। इसके लिये मा भैरवी से सीखता रहा और वह मुझे सिखाती रही। इस प्रकार कुछ कठिन और दुष्कर क्रियाए भी उसके द्वारा सीखने को मिली, परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं ज्योही पूर्णता की तरफ बढने का प्रयत्न करता हू कि मेरे नीचे का आश्रय समाप्त हो जाता है।

एक दिन अचानक मा भैरवी बीमार पडी और तीसरे दिन उसने मुझे अपने पास बुलाकर कहा बेटा ! अचानक मेरा बुलावा आ गया है और मेरा जाना आवश्यक है, जिस स्थान पर मुझे जाना है, उस स्थान के लिये इस चोले को बदलना आवश्यक है, अत मैं जा रही हू पर मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है, कि तू इस क्षेत्र मे पूर्णता प्राप्त करे।

मेरे ऊपर तो अचानक वज्रपात-सा हो गया। मैं सोचता ही रह गया कि यह अचानक और अप्रत्याशित रूप से क्या हो रहा है, पर मरते-मरते मा ने इतना ही कहा कि यदि तुझे तत्र मे पूर्णता प्राप्त करनी है तो तू स्वामी निखलेश्वरानन्द के पास जाकर याचना कर। यद्यपि मैंने उनसे आज्ञा प्राप्त कर ली है फिर भी वे मेरे आराध्य हैं अत इतना ही कह सकती हू कि यदि शिष्य भाव अपने मन मे रखा तो पूर्णता वही से प्राप्त हो सकेगी। तत्र क्षेत्र मे तू जिस स्तर पर है, उससे आगे का ज्ञान

और कही पर से तुझे नही मिल सकेगा, इसके लिये तुम्हे वही पर जाना होगा और आगे के जीवन मे वही तुझे पूर्णता दे सकेंगे—और कहते-कहते मा भैरवी ने अपने प्राणो को पचभूत मे विसर्जित कर दिया।

एक वार फिर मैं अनाथ हो गया था। मेरे मन मे जो उत्साह था वह समाप्त हो गया, मेरी अवस्था विक्षिप्त की तरह हो गई थी और ऐसी ही विक्षिप्त अवस्था मे मैं आपके चरणो मे पहुचा था।

मुझे वह घटना और वह दृश्य आज भी भली प्रकार से स्मरण है जव मैं आपके पास पहुचा था। आप निर्जन जगल मे छोटी-सी कुटिया मे साधना रत थे। मैं दो दिन और दो रात आपके चरणो के पास पडा रहा, पर न तो आपकी समाधि खुली और न मैं सान्त्वना पा सका।

दूसरे दिन शाम को वहा पर अचानक एक साधु प्रकट हुआ पर उसने मुझे सकेत मे चुप रहने को कहा। मैं उस घनघोर जगल मे अचानक उस आगत साधु को देखकर आश्चर्यचकित था पर मै उसके सकेत करने पर चुप रहा। वह आपके सामने तीन घटे तक वैठा रहा और उसके होठ हिलते रहे, सभवत वह आपसे आज्ञा प्राप्त करने के लिए आया था या अपनी वात कहने के लिये आया था। मैं यह देख रहा था कि आप दोनो के वीच मौन वार्तालाप चल रहा है।

यह तो मुझे वहुत वाद मे पता चला कि वे आपके ही शिष्य आज के प्रसिद्ध अवधूत वावा थे।

तीसरे दिन जव आपकी समाधि खुली और मुझे देखा तो आपके चेहरे पर मुस्कराहट खेल गई। और वोले—शिवानन्द! मा भैरवी चली गई?

मैंने सारी वात आपको वता दी और आप चिन्तन मे डूवे रहे, मेरी वात समाप्त होने पर आपके मुह से निकला था कि मा भैरवी को जाना था, वहा पर उनका जाना आवश्यक है, पर तुझे यहा भेजा है तो चिन्ता मत कर और जीवन मे जो कुछ अपूर्णता रह गई है उसे पूर्ण कर।

जिस प्रकार मरूस्थल मे जलते हुए प्राणी को सुखद छाया मिलने पर आनन्द की अनुभूति होती है, ठीक वैसी ही अनुभूति आपको पाकर हुई। जिस प्रकार प्यास से वेचैन प्राणी को गगा का किनारा अचानक मिल जाय और उसे जिस प्रकार से प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता आपका सान्निध्य पाकर मुझे प्राप्त हुई थी, मैं अपने आपको ससार का सवसे सौभाग्यशाली समझने लगा था।

पर मैं स्वय हतभागी हू, मैंने जो कुछ मा भैरवी से प्राप्त किया था उसमे काफी कुछ पूर्णता आपके सान्निध्य से प्राप्त हुई थी। एक वर्ष मे आपने जो कुछ मुझे दिया था वह अपने आपमे अन्यतम था। थोडे मे समय मे आपने मुझे जिस तीव्रता से तत्र के पथ पर आगे वढाया था वह मेरे लिये आश्चर्यजनक था। यह मेरा सौभाग्य था कि मै आपके चरणो का आश्रय पा सका था और आपके द्वारा ज्ञान प्राप्त करने मे

सफल हो सका था, पर यह मेरा भाग्य नही, मा भैरवी की ममता का प्रभाव था कि आपने मुझे स्वीकार किया था ।

पर मैं थोडा-सा पाकर भी अपने अपको काफी ऊचा समझने लगा था, आज मैं यह अनुभव करता हू कि मुझ मे अह की प्रवृत्ति आ गई थी, तत्र क्षेत्र मे अपने आपको निष्णात समझने लगा था । और मैं यह अनुभव करने लगा था कि मेरे पास इस प्रकार की विशिष्ट सिद्धिया हैं जिनके माध्यम से मैं असम्भव को भी सम्भव कर सकता हू । यह भावना धीरे-धीरे मुझ मे बढती गई और मैं आपके अन्य शिष्यो से अपने आपको ऊचा समझने लग गया था ।

ऐसा होने पर मुझ मे अह की भावना बढती ही गई । मैं कई बार अपने ही गुरु भाइयो से उलझने लग गया, फिर भी वे शान्त रहे, आप यह सब कुछ देख रहे थे, मेरे परिवर्तित व्यवहार को अनुभव कर रहे थे, फिर भी आप शान्त बने रहे, और मैं अह के आवेग मे आपके उस शान्त रूप को अपने कार्य की, और अपने अह की स्वीकारोक्ति ही समझता रहा । आज मैं यह अनुभव कर रहा हू कि मैं कितना बडा नराधम हू जिसने गुरु के सामने अह का प्रश्रय दिया था ।

और इसी दुर्बुद्धि ने एक दिन आपकी आज्ञा की अवज्ञा कर दी । आज मैं पश्चात्ताप की अग्नि मे जल रहा हू कि मैंने एक देव-पुरुष के सामने कितनी निम्नता प्रदर्शित की थी, फिर भी आप शान्त बने रहे, पर यही त्रुटि जब दूसरी बार हुई तो आपने मुझे फटकार दिया । शिष्यो के बीच इस प्रकार की फटकार से मेरे 'अह' को चोट लगी । आपने तो मेरे अह पर इसलिये चोट की थी कि जिससे मैं मानव बना रह सकू । पर उस समय मेरी आखो पर अह की पट्टी बधी हुई थी । तत्र और विशिष्ट तत्र मुझे ज्ञात थे तथा तारा साधना करने के बाद तो मैं अपने आपको बहुत कुछ समझने लगा था, इसीलिए आपकी फटकार मेरे लिये असह्य हो गयी और मैंने क्षमा याचना के स्थान पर आपके सामने खडा होकर जिन शब्दो का प्रयोग किया वे शब्द ही मेरी मृत्यु बन गये ।

मुझे स्मरण है कि आप उन शब्दो को सुनकर क्रोध से भर गये थे और तीव्र शब्दो मे मुझे निकल जाने को कहा, साथ ही यह भी सुनाई दिया कि तू जिस विद्या पर उछल रहा है वह सारी विद्या अगले छ महीनो मे विस्मृत हो जायगी ।

पर, यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं उस समय भी अपने आपको जरूरत से ज्यादा समझता रहा । मुझ मे महाविद्या साधना के बाद यह अह था कि कोई मेरा कुछ भी नही बिगाड सकता । किसी कोने मे छिपी हुई यह भावना भी थी कि मुझे भी इतना ऊचा गुरु बनना है जितना और कोई नही हो, और दुर्भाग्य ने मेरे अन्तर मे यही कहा कि तेरा कुछ भी नही बिगड सकता । जो विद्याए तेरे पास हैं वे मा भैरवी की दी हुई है, इसलिये उन विद्याओ का लोप सभव नही । मेरे मन में अपने स्वय का आश्रम बनाने का कुत्सित विचार भी था अत मैंने उसी दिन आपके आश्रय को छोड दिया ।

पर बाबा ! यह मेरी जीवन की सबसे बडी भूल थी । मैं यह सारी बात इस

लिये लिखना चाहता हू जिससे कि मेरे दिल पर जो बोझ है वह मैं उतार सकू। पिछले १५ वर्षों मे मैं इस बोझ को अपने पर लाद कर फिर रहा हू। आपसे मैं आज सारी बात खुलकर कह देना चाहता हू, यद्यपि मेरा पत्र लम्बा हो गया है, मैं अपने विचारो को सुनियोजित ढग से व्यक्त नही कर पा रहा हू, परन्तु फिर भी मैं अपनी बात आपके सामने रख देना चाहता हू।

आपके यहा से जाने के बाद मैं गोरखपुर के पास रुक गया और गोरखनाथ के मन्दिर से कुछ समय के लिये सबन्धित रहा, परन्तु जिस अह के वशीभूत होकर आप से अलग हुआ था वे सारी विद्याए छ महीने के बाद लुप्त हो गई। मैं उसके बाद चाहते हुए भी कुछ नही कर पाया। यद्यपि मुझे वे सारे मत्र याद थे, सम्बन्धित क्रियाए ज्ञात थी। मैने उन क्रियाओ के माध्यम से पुन सिद्धि प्राप्त करनी चाही पर प्रयत्न करने पर भी मैं उन सिद्धियो को पुन प्राप्त नही कर सका और एक बार मैं पुन एक साधारण कीट बन गया।

उस दिन पहली बार मैंने अनुभव किया कि मैंने अपने जीवन मे कितनी बडी भारी त्रुटि कर दी है। मैने जीवन मे जो कुछ प्राप्त किया था वह भी खो चुका हू जो मेरा लक्ष्य था वह तो दूर, अपितु जो कुछ मेरे पास था वह भी समाप्त हो गया है, आपका श्राप मेरे जीवन के पीछे था और मैं बदहवास-सा इधर-उधर भटक रहा था।

जैसे-तैसे करके मैने छ महीने बिताये, पर जब मैं अपने आप मे नही रह सका तो मैं पुन उसी स्थान पर पहुचा जहा आप मुझे मिले थे, परन्तु वहा जाने पर मुझे कुछ भी प्राप्त नही हो सका, आपने वह स्थान छोड दिया था।

उसके बाद मेरा खाना-पीना सब कुछ छूट गया, मेरी आखो की नीद उड गई, जीवन का मोह समाप्त हो गया और आत्महत्या करने का पक्का निश्चय कर लिया, मेरा मन बार-बार मुझे फटकार रहा था कि तूने इतने बडे आश्रयदाता की अवज्ञा कर दी, तू जिस आधार पर खडा था उसी आधार को अपने हाथो से तोड दिया, आपके लिये जो शब्द मैंने प्रयोग किये थे उस शब्द का एक-एक अक्षर मेरे सीने पर हथौडे मारता रहा और मै पश्चात्ताप की अग्नि मे बराबर जलता रहा।

उसके बाद मैंने आपकी खोज मे पूरा नेपाल छान मारा, गोरखपुर के आस-पास का पूरा स्थान देख लिया, हिमालय के प्रत्येक उस स्थान को देखा जहा पर आप से मिलने की सभावना थी, पर जहा-जहा भी मैं गया आपका श्राप अभिशाप की तरह मेरे जीवन के पीछे लगा रहा, मुझे कही पर भी शरण नही मिली, कही पर भी आप के बारे मे समाचार नही मिले, कही पर भी आपको न पा सका।

पिछले पन्द्रह वर्षों मे हिमालय के एक-एक स्थान को देख लिया है, प्रत्येक साधु और सन्यासी से आपके बारे मे ज्ञात करता रहा, परन्तु कही से भी अनुकूल समाचार प्राप्त नही हुए, इन वर्षों मे मेरा पूरा शरीर जर्जर हो गया, आखें अन्दर धस गईं, चेहरे की कान्ति समाप्त हो गई और मुझ मे इतनी भी शक्ति नही रही कि मैं अपने आपको सम्भाल सकू, अपने आपको जीवित रख सकू।

पर मरना मेरे हाथ मे नही था, जब तक आप मुझे नही मिलते, जब तक आपके चरणो मे पडकर मे क्षमा याचना नही कर लेता, जब तक मैं आपके पैरो को आसुओ से भिगो नही लेता तब तक मर कर भी मुझे चैन नही मिलता, मेरी सारी इच्छाए एक ही विन्दु पर केन्द्रित थी कि आपको प्राप्त करना है, किसी भी स्थिति मे आपसे मिलना है और अपनी भूल का प्रायश्चित करना है।

क्योकि मैं यह भली भाति समझ गया था कि जब तक आपका श्राप समाप्त नही होगा, जब तक आपकी कृपा मेरे ऊपर पुन नही होगी तब तक मैं कुछ भी प्राप्त नही कर सकूगा। मैं जिस साधक के पास भी गया वही से मुझे फटकार मिली, जिस अघोरी या तात्रिक का साहचर्य प्राप्त करना चाहा वही से मुझे दुत्कार मिली, जिससे भी मैं मिला वही मुझे उपेक्षा और अनादर मिला, क्योकि आपका श्राप मेरे जीवन के पीछे है और जब तक आप उस श्राप को वापस नही ले लेंगे तब तक मैं अपने जीवन मे कुछ भी नही कर सकूगा।

आज मैं समझ गया कि जीवन की समस्त साधनाओ से भी ऊपर गुरु की कृपा होती है, जब तक गुरु का वरद हस्त सिर पर होता है तभी तक विद्याए फलवती होती हैं। जिस दिन गुरु अपना हाथ सिर से हटा लेते है, उस दिन से साधक का पतन होने लग जाता है। मेरे अह ने मुझे वरबाद कर दिया, आपकी अवज्ञा मेरे पूरे जीवन को लील गई, और मैं साधारण मानव से भी गया बीता होकर आज दर-दर भटक रहा हू।

मेरी इतनी हिम्मत नही है कि मै आपके सामने आ सकू। मै आपके क्रोध से परिचित हू, यद्यपि आप दया मूर्ति हैं, आपके जीवन मे मेरे जैसे सैंकडो नराधम आए होगे, उन पर अवश्य आपकी कृपा हुई होगी, मैं जीवन मे अभागा हू इसलिए चाह कर भी मैं आपकी कृपा नही पा सका।

पिछले दिनो हिन्दी के एक प्रसिद्ध पत्र मे आपके वारे मे वहुत कुछ पढने को मिला, तव सारी स्थिति मेरे सामने स्पष्ट हो गई। वे सारी घटनाए मेरी आखो के सामने फैल गई जो मैंने देखी थी। वही से आपका पता मिला, और जव चित्र देखा तो रहा सहा सदेह भी जाता रहा।

यदि साधना का स्मरण रहता तो मै साधना के माध्यम से आपके जीवन के वारे मे जानकर आपके चरणो मे आ गिरता, परन्तु आपने तो मेरी सारी विद्याए विस्मरण कर दी हैं, मैं प्रयत्न करता हू फिर भी मुझे स्मरण नही रहता। जो कुछ मुझे याद था वह भी मैं भूल चुका हू।

एक वार जब आपका पता मुझे लगा तो मैंने निश्चय किया कि मैं सीधा आपके चरणो मे पहुच जाऊ और मुझसे जो भयकर त्रुटि हो गई उसके लिए क्षमा याचना करू। इतना होने पर भी यदि आप मुझे ठुकरा देंगे तव भी मैं निश्चिन्त रहूगा, क्योकि आपसे ठुकराया हुआ कहलाऊगा, क्या यह कम गौरव की वात है।

मैं आपके क्रोध से परिचित नही था, मैंने आपका करुणा और दया का रूप

देखा था, आपका स्नेह मेरा अवलम्ब रहा था, आपके सान्निध्य मे जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ था वह मेरे लिए स्वर्णिम था, आपका पुत्रवत स्नेह मुझे मिला था। आपने जितना स्नेह इस तुच्छ कीट को दिया था वह वास्तव मे ही मेरी अमूल्य निधि थी। मैं बराबर त्रुटिया करता जा रहा था और आपकी करुणा बराबर उसको अनदेखी कर रही थी, आपने जो कुछ मुझे दिया वह मेरे लिए अन्यतम रहा। मैंने आप मे पिता का प्रेम, मा की करुणा, बड़े भाई का स्नेह और गुरु का आशीर्वाद अनुभव किया, मैंने कई रूपो मे आपके दर्शन किये हैं और प्रत्येक रूप करुणा तथा दया से ओत-प्रोत रहा है।

यह मेरे जीवन की विडम्बना थी कि मैं हिमालय के पास जाकर भी शान्ति नही पा सका, आपकी दया रूपी गगा के किनारे बैठकर भी तृप्त नही हो सका, आप की शीतल छाया प्राप्त होने पर भी मैं उससे वचित हो गया, यह मेरे जीवन का कितना बडा दुर्भाग्य था कि आप जैसे परम श्रेष्ठ गुरु को पाकर भी मैं अनाथ ही बना रहा।

पर यह मेरी गलती थी, मैं अनाथ हू, दरिद्री हू, निर्धन और कमजोर हू, परन्तु जो कुछ भी हू केवल मात्र आपका हू। आप मेरे लिए एक क्षण व्यतीत करें और साधना से देखें कि पिछले पन्द्रह वर्ष मैंने किस प्रकार बिताए हैं, मेरी प्रत्येक सास के साथ आपका नाम रहा है, मेरे जीवन के प्रत्येक क्षण मे आपका स्मरण रहा है, मेरे शरीर के रोम-रोम से आपके नाम की ध्वनि निकलती रही है, और पिछले पन्द्रह वर्षों मे मैं प्रत्येक क्षण पश्चात्ताप की अग्नि मे जलता रहा हू।

मैं इस पत्र के द्वारा दया की भीख मागता हू, मैं कुछ भी नही हू, मुझसे जो कुछ त्रुटि हुई है, उसके लिए पूरे जीवन भर के लिए क्षमाप्रार्थी हू, जब तक आपका करुण-पत्र प्राप्त नही होगा तब तक मैं कुछ भी नही कर सकूगा। मैं आपके सामने हर क्षण रहा हू पर मैं अपने आप मे इतनी हिम्मत नही जुटा पा रहा हू कि बिना आपकी आज्ञा के आपके चरणो मे आ सकू, क्योकि मैं अपराधी हू और अपराधी को किसी भी प्रकार की रियायत प्राप्त नही होती।

परमात्मा से विमुख होकर तो व्यक्ति शायद जीवित रह भी सकता है, पर गुरु से विमुख होकर उसे तिल-तिल कर जलना ही पडता है, उसके जीवन की और कोई गति-मति नही होती।

मैं शरीर के रोम-रोम के द्वारा आपसे क्षमा-याचना करता हू, मेरी आखें अतृप्त हैं, मेरा हृदय वेदना ग्रस्त है। मेरा सारा शरीर पश्चात्ताप की अग्नि मे जल रहा है, और जीवन का प्रत्येक क्षण अभिशाप से ग्रस्त है, मैं इस पत्र के द्वारा अपने आपको आपके सामने समर्पित करता हू, मुझे विश्वास है कि आप इस अकिंचन को दया की भीख देंगे जिससे कि आपके चरणो मे उपस्थित होकर क्षमा-याचना कर सकू और जीवन का, प्रायश्चित कर सकू।

अधमाधम,

( शिवानन्द ब्रह्मचारी )

# साधनाएँ और सिद्धियां

# बगलामुखी-साधना

पूज्य पण्डितजी,

सादर चरण स्पर्श।

मैं आपका ऋणी हू कि आपने अपना वरदहस्त मेरे सिर पर रखा, मैं आपके घर आने से पहले पूरी तरह से निराश हो चुका था और निराशा की उस सीमा तक पहुच चुका था जिसके आगे कोई रास्ता नही होता, यद्यपि मैं आश्वस्त था कि आपने मुझे आज से तीन वर्ष पूर्व शिष्य रूप मे स्वीकार किया था, और मुझे दीक्षा भी दी थी, परन्तु उसके बाद आपकी आज्ञा से मैं अपने घर आकर गृहस्थ के कार्यों मे उलझ गया था। उस दिन से अब तक मैंने लगभग साठ से ज्यादा पत्र आपको दिये होंगे, परन्तु आपने जब एक भी पत्र का जबाब नही दिया तो मैं पूरी तरह से ऊब गया। मैं समझ नही पा रहा था कि मुझ से क्या गलती हो गई है जिससे कि मैं आपके चरणो तक पहुच नही पा रहा हू? मुझे यह गौरव था कि मैं आपका शिष्य हू और यह मैंने अधिकार समझ रखा था कि जब भी आपकी याद मुझे बेचैन करे तब मैं आपके पास आ जाऊ, परन्तु पहली बार जब आपका पत्र मुझे मिला था तो उसमे आपने लिखा था कि स्वीकृति मिलने पर ही यहा पर आना, अत मैं मन मसोस कर रह गया और उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जिस दिन आपकी तरफ से स्वीकृति-पत्र मिले, और इसी बेचैनी मे मैं हर हफ्ते दो हफ्तो मे एक पत्र लिखता रहा, मेरे अधिकाश पत्रो मे एक ही याचना रहती थी कि मैं आपके पास आना चाहता हू और आपकी कृपा का प्रसाद प्राप्त करना चाहता हू, परन्तु मुझे उन पत्रो के उत्तर नही मिलते और मैं ज्यादा-से-ज्यादा निराशा मे डूबता जाता। आपको पत्र लिखने के बाद उत्तर की बेचैनी बढ जाती, और जब आपका पत्र नही मिलता तो निराश होकर डरते-डरते फिर एक पत्र लिख देता। डर इस बात का रहता कि कही आप नाराज न हो जाए, पर जब आपका उत्तर नही मिलता तब मेरी स्थिति ठीक वैसी ही हो जाती जैसी कि मछली को पानी से निकालकर जमीन पर डालने से होती है।

मैं यह मन मे सोच चुका था कि मैं आपके द्वारा भुला दिया गया हू, मैंने यह भी सोचा कि शायद मैं अपात्र हू, इसीलिए उनके चरणो मे जा नही पा रहा हू, कभी सोचता कि शायद इसी प्रकार घुट-घुट कर मर जाना पडेगा, यद्यपि मेरे घर मे पत्नी

है, बच्चा है, अच्छी नौकरी है, परन्तु फिर भी मुझे सन्तोष नही मिलता, मन मे एक अभाव-सा अनुभव होता रहता। और जब साठ से ज्यादा पत्र आपको दे चुका और इतना होने पर भी जब आपकी तरफ से एक भी पत्र का उत्तर नही मिलता तो मैं पूरी तरह से निराश हो गया और मैंने अपने कर्मों का दोष समझ कर यह धारणा बना ली कि अब गुरुजी का कोई पत्र प्राप्त नही हो सकेगा।

जिस दिन पूरी तरह से टूट चुका था उसके दूसरे दिन ही आपका कृपा पत्र मिला कि शीघ्र आ जाओ, तुम्हे विशेष अनुष्ठान कराना है। मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे मरुस्थल मे प्यास से तडफते हुए प्राणी को जल की बूंदें मिल जाय, उस दिन मैं कितना प्रसन्न हुआ था, व्यक्त नही कर सकता, तीन साल की बेचैनी और निराशा एक ही क्षण में दूर हो गई थी और मैं उसी दिन आपके चरणो मे उपस्थित होने के लिए चल पड़ा था।
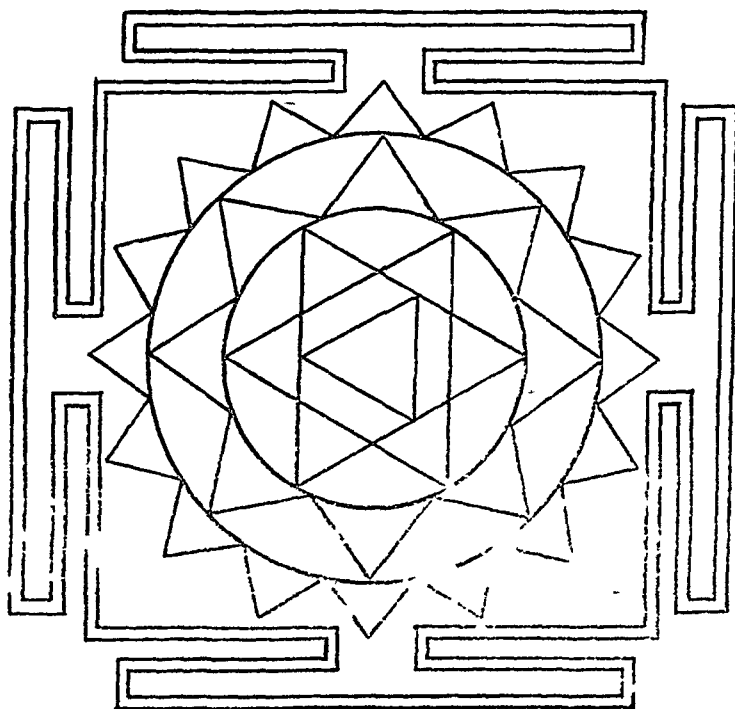
भगवती बगलामुखी का पूजन-मंत्र

पहली बार आपके चरणो मे जी भर कर बैठने का मौका मिला और इससे भी ज्यादा सौभाग्य मेरा यह रहा कि आपने मुझे अपने ही घर मे ठहरने की स्वीकृति दी, लगभग पन्द्रह दिन आपके घर पर रहा। सच मानें पिछले चालीस वर्षों में भी मुझे

इतना अधिक आनन्द और स्वर्गिक सुख की अनुभूति नही हुई थी जितनी आनन्दानुभूति आपके घर मे पन्द्रह दिनो मे हुई थी ।

आपने मुझे 'वगलामुखी साधना' सीखने की आज्ञा दी और उन पन्द्रह दिनो मे आपने इस साधना के वारे मे जो समझाया वह मेरे चित्त पर अकित हो गया । मैंने यही निश्चय किया था कि आपके ही घर मे रहकर इस साधना को सम्पन्न करू, परन्तु आपकी आज्ञा थी कि मैं वापस अपने घर चला जाऊ और घर मे ही इस साधना को सम्पन्न करू । आपकी आज्ञा मेरे जीवन का सर्वोच्च धर्म है, अत मैं आपका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने घर लौट आया ।

घर आकर मैंने इस साधना को सम्पन्न करने का निश्चय किया । आपने आदेश दिया था कि किसी भी महीने की कृष्ण पक्ष की चतुदर्शी को इस अनुष्ठान का प्रारम्भ करना चाहिए, अत मैंने माघ कृष्ण चतुर्दशी को यह साधना प्रारभ की । इस सबध मे जो कुछ अनुभूति हुई है वह मैं आपके चरणो मे निवेदन कर रहा हू

साधना या अनुष्ठान प्रारभ करने से पूर्व मैंने अपने घर के एक कक्ष को पूरी तरह से खाली कर दिया, मेरे घर मे मात्र तीन कमरे ही हैं, अत सारा सामान मैंने दो कमरो मे व्यवस्थित कर तीसरा कमरा साधना के लिए चुना, और उसे पीले रग से पुतवा दिया, कमरे की छत और नीचे का फर्श भी पीले रग से रगवा दिया था, इसके अलावा दरवाजे पर पीले रग का पर्दा डाल दिया था ।

आपने वताया था कि रात्रि को दस बजे यह अनुष्ठान प्रारभ होना चाहिए, और सुवह ५ वजे तक यह अनुष्ठान चलना चाहिए, इसके अलावा १० वजे से पूर्व कुए के जल से स्नान करना चाहिए । इस प्रकार का जल मैं पहले से ही लाकर अपने घर मे रख देता था, जिस कलश मे यह जल लाता था वह पूरी तरह से मजा हुआ शुद्ध होता था, मैंने साधना के लिए पीले रग की धोती पहनने के लिए और पीले रग की ही धोनी ओढने के लिए रख दी थी । जो आसन मैंने विछाया था वह भी पूरी तरह से पीले रग से रगा हुआ था, आसन के सामने लकडी का एक तख्ता रख दिया था जिस पर पीले रग का कपडा पहले से ही विछा दिया था, और पीले रग से रगे हुए चावलो से तख्ते पर मैंने वगलामुखी यत्र वना दिया था, और उस यत्र पर वगलामुखी चित्र काच के फ्रेम मे मढवा कर रख दिया था । यह चित्र आपके द्वारा ही प्राप्त हुआ था ।

आपने वताया था कि विल्कुल निर्वस्त्र होकर मुझे स्नान करना है, अत मैंने इस प्रकार स्नान कर धोती पहन ली थी और दूसरी धोती ओढ ली थी, उसके वाद मैं आसन पर आकर वैठ गया था, मेरा मुह दक्षिण की ओर था ।

तख्ते पर पीले रग से रगा हुआ जो मिट्टी का दीपक था उसमे गाय का घी भरा हुआ था, और पीले रग से रगी हुई रूई की वाट वनाकर रख दी थी । आसन पर बैठने के वाद मैंने उस दीपक को जलाया, साथ ही दीपक को वगलामुखी यत्र के बीच मे रख दिया, दीपक के और तस्वीर के बीच मे मैंने पीले रग के पुष्प विखेर दिए थे,

और गन्धक की सात ढेरिया बना दी थी, प्रत्येक ढेरी पर दो-दो लोग भी रख दिए थे।

तख्ते पर ही एक पीले रंग से रगा हुआ पीतल का लोटा रख दिया था और उसमे पीले रग का जल भर दिया था, आसन पर बैठकर मैंने आचमन प्राणायाम किया और फिर हाथ मे जल तथा कनेर के पुष्प लेकर सकल्प किया कि मेरे ऊपर जो मुकदमे हैं वे समाप्त हो जाय, मैं उन सभी मुकदमो मे विजयी रहू, शत्रुओ पर मैं पूर्ण रूप से हावी बनू, शास्त्रार्थ मे या बातचीत मे सामने वाले व्यक्ति का मुह कीलन हो जाय जिससे कि बातचीत मे मैं सफलता प्राप्त कर सकू और अपने अनुरूप कार्य सफल हो सके।

बगलामुखी देवी

सकल्प के वाद मैंने निम्नलिखित विनियोग किया

'ओम अस्या श्री ब्रह्मास्त्र-विद्या-बगला मुख्य नारद ऋषये नम शिरसि। त्रिष्टुप छन्द से नमो मुखे। श्री बगला मुखीदेवताये नमो हृदये। ह्री बीजाय नमो गुह्ये। शक्तये नम पादयो। ओम कीलकाय नम सवागे। श्री बगलामुखी देवता प्रसाद सिध्यर्थ जपे विनियोग।'

विनियोग के वाद मैंने श्रद्धा से वगलामुखी का निम्न ध्यान किया

मध्ये सुधब्धि मणि मडप रत्न वेदी सिंहासनो परिगताम्परि पीत वर्णम्।
पीताम्वरा मरण मात्य विभूषतागीन्देवीन्नमामि घृत मुद्गर वैरि जिह्वाम्॥
जिह्वाग्र मादाय करेण देवी वामेन शत्रून्परिपी डयन्तीम्।
गदाभिघातेन न दक्षिणेन पीताम्बराढ्या द्विभुजान्नमामि॥

ध्यान करते समय मेरी आखें बगलामुखी देवी के चेहरे पर टिकी हुई थी। उसके वाद मैंने वगलामुखी मत्र जप प्रारभ किया। आपने वताया था कि इसके लिए सूखी हुई हल्दी की माला का प्रयोग ही होता है, अत मैंने १०८ हल्दी के टुकडे ले उसकी माला बनाकर पहले से ही रख दी थी।

आपने मुझे नित्य १०१ माला फेरने की आज्ञा दी थी, अत मैंने नित्य १०१ मालाए निम्न मत्र की फेरी

'ओह्म ह्ली बगलामुखि सव्व दुष्टाना व्वाचम्मुख
स्तम्भय जिह्वा कीलय कीलम बुद्धिन्नाशय ह्ली ओम स्वाहा॥

आपने मुझे यह भी बताया था कि मैं नित्य नियमपूर्वक इस अनुष्ठान को करू और दिन मे केवल दूध का सेवन ही करू। इसके अलावा अन्न आदि न लू, अत मैंने दिन मे दो तीन वार दूध अवश्य पिया, अन्न नही लिया था, साथ-ही-साथ आपने यह अनुष्ठान तेरह दिन का वताया था, अत इन तेरह दिनो मे मैंने नौकरी से सवधित या गृहस्थ से सवधित कोई कार्य नही किया और पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का भी पालन किया।

मैं नित्य इसी प्रकार से कार्य करता हुआ साधना कर रहा था, साधना प्रारभ करने के सातवें दिन मुझे विचित्र अनुभूति हुई, जैसे मेरे कमरे मे कोई महिला खडी है और जोरो से हस रही है, उसकी हसी वीभत्स और डरावनी थी, इसके साथ-ही-साथ उसकी चूडियो की आवाज भी मन मे भय का सचार कर रही थी।

मैं बिना उसकी तरफ देखे देवी के चित्र के सामने नजर टिकाए मत्र का पाठ करता रहा, परन्तु ऐसा आभास वरावर रहा कि वह स्त्री कमरे मे ही खडी है और एकटक मुझे घूर रही है।

इसके वाद दो दिन शान्ति से बीते, परन्तु दसवें दिन जव मैं रात्रि को साधना मे बैठा तो ठीक बारह वजे एक भयावनी स्त्री मेरे पास आ बैठ गई। उसका बाया घुटना मेरी दाहिनी जाघ को दवा रहा था, मैंने मत्र पढते-पढते ही डरकर दाहिनी ओर देखा तो मेरे रोगटे खडे हो गए। वह स्त्री ठीक वैसी ही थी जैसी कि काली देवी

की कल्पना पढी है या सुनी है, लम्बे लम्बे वाल, डरावनी-सी आखें, पूरे शरीर की हड्डिया निकली हुई, दुबली पतली, आखें अन्दर को धसी हुई, तथा शरीर पर विचित्र प्रकार की हड्डियो की माला पहनी हुई अत्यन्त ही डरावनी और भयानक लग रही थी, उसके एक हाथ मे खप्पर था और खप्पर मे ताजा मानव रक्त भरा हुआ था जिसे वह धीरे-धीरे पी रही थी ।

एक वार तो मेरी सास ऊपर की ऊपर रह गई और मेरी जवान तालू से चिपक गई । बडी कठिनाई से मैं मत्र का उच्चारण कर पाया, इस प्रकार वह लगभग एक घटे तक वैठी रही, पर इसके वाद मैंने उसकी तरफ ताका भी नही, रात्रि के लगभग तीन वजे उसने वायें हाथ से मेरे केश मुट्ठी मे पकडे और जोरो से झकझोर दिए । मेरी आखो के सामने अधेरा-सा छा गया, एक क्षण के लिए तो ऐसा लगा जैसे मेरी सास निकल गई हो, पूरे कमरे मे मरे हुए जानवर से निकली हुई वदवू भर गई। मेरी आख खुली तव वह काली जा चुकी थी । उसके बाद की रात्रि मैंने भय के साथ ही व्यतीत की, परन्तु मैंने १०१ मालाए पूरी कर ली थी ।

ग्यारहवें दिन कोई विशेष घटना नही घटित हुई । यद्यपि यह एहसास बराबर वना रहा कि वह कमरे मे उपस्थित है, और उसकी तीक्ष्ण आखे मुझे भेद रही हैं । मैंने उस दिन इधर-उधर ताका ही नही और अपनी आखें वगलामुखी देवी के चित्र पर टिकाए रखी । उस रात्रि को ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि तस्वीर मे वगलामुखी देवी के स्थान पर बड़ी भयावनी स्त्री हो। उस चित्र को देखकर भी मन मे भय का सचार होता था ।

बारहवें दिन जब मैं साधना के लिए आसन पर वैठा तो वैठते ही मेरे सीने पर जोरो की लात लगी और मै आसन से पीछे की ओर लुढक गया, तुरन्त ही मैं अपने आपको सयत कर पुन आसन पर वैठा तो दूसरी वार भी जोरो की लात लगी और मेरी आखो के सामने अधेरा-सा छा गया । मैं पुन उठकर आसन पर बैठ गया पर लातो के प्रहार से मेरे सीने मे जोरो का दर्द हो रहा था ।

इसके वाद लगभग वारह वजे वही स्त्री कक्ष मे दिखायी दी और मेरे सामने आकर वैठ गई, लगभग पन्द्रह मिनट तक वह मुझे घूरती रही, उसके वाद उसने झपट कर मेरे हाथो से माला छीन ली और मेरे गाल पर इतने जोर का तमाचा मारा कि आखो के सामने अधेरा-सा छा गया और मैं लगभग सज्ञा शून्य-सा हो गया । ऐसी स्थिति पाच या सात मिनट तक रही होगी और मैं पुन अपने आपको नियत्रित कर आसन पर स्थिर वैठ गया। मुझे स्थिर देखकर उसने वह माला मेरे सीने पर जोरो से फेंक दी, मैं माला को हाथ मे लेकर पुन मत्र पढने लगा ।

रात्रि के लगभग एक वजे उसने दात किटकिटाए और वही वैठे-वैठे हाथ वढा कर कमरे मे जो पीले रग का वल्व जल रहा था उसे फोड दिया, जिससे कमरे मे अधेरा छा गया । केवल मेरे सामने जो दीपक जल रहा था उसकी ही रोशनी कमरे मे रही ।

उसने जोरो से हुकार भर कडक कर कहा—वन्द कर इस कार्य को, क्यो कर रहा है यह कार्य ? यदि अभी तूने वन्द नही किया तो मैं तुझे मारकर तेरा खून खप्पर मे भरकर पी लूगी और इतना कहते-कहते वह जोरो से कडकडा कर हस पडी।

उस समय मेरी हालत पिंजरे मे फसे चूहे की तरह हो रही थी, मेरी आखो के सामने मृत्यु स्पष्ट दिखाई दे रही थी, उस समय वातावरण ही ऐसा वन गया था। मैंने एक क्षण के लिए आपके चरणो का स्मरण किया और दूसरे ही क्षण म त्रजप प्रारम्भ कर दिया।

मेरा पुन मन्त्र जप प्रारम्भ करना था कि उसने अपने दाहिने हाथ से मेरे गले को पकड लिया और इतनी जोर से दवाने लगी कि गले की नसें फूल गई और आखें वाहर को निकलने लगी, पूरा शरीर पसीने-पसीने हो गया, मेरे मुह मे घरघराहट की आवाज ही निकल रही थी, मन्त्र जप सम्भवत वन्द हो गया था।

कुछ क्षणो वाद उसने हाथ हटा दिया तो मैंने पुन मन्त्र जप प्रारम्भ कर दिया, पूरी रात इसी प्रकार चलता रहा। कभी उसने मेरे वाल खीचे, कभी छाती पर लात मारी, कभी मेरा गला दवाया, पर फिर भी मै अपने ऊपर नियत्रण रखता हुआ मन्त्र जप करता रहा।

यह रात्रि मेरे लिए अत्यन्त भीषण और कष्टदायक थी। आपका ही प्रभाव और कृपा थी कि मैं इस रात्रि को वच सका और जिन्दा रह सका, अन्यथा मै हर क्षण मरा था और हर दूसरे क्षण जिन्दा हो रहा था।

प्रात मुझे वुखार हो गया था और दिन भर एक सौ तीन डिग्री वुखार रहा, उस दिन मैं भली प्रकार से दूध भी न पी सका और दिन भर बुरे-बुरे विचार आते रहे, शरीर पसीने-पसीने होता रहा, आने वाली रात्रि की याद करके ही मेरे प्राण सूख गए थे, एक वार तो मैंने साधना स्थगित करने का ही निश्चय कर लिया था, पर उसी समय कुछ ऐसा लगा जैसे कि आप कह रहे है कि घवराओ मत, साधना चालू रखो, मैं तुम्हारे साथ सहायक के रूप मे उपस्थित रहूगा।

रात्रि को बुखार मे ही मैंने स्नान किया और आसन पर जाकर वैठ गया, विनियोग करके मन्त्र जप प्रारम्भ किया, रात्रि के एक वजे तक कुछ नही हुआ, लगभग डेढ वजे के आस-पास एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री मुझे दिखाई दी, जिसने पैरो मे सोने के पाजेव पहने हुए थे और पूरे शरीर पर पीले रग के वस्त्र तथा सोने के गहने लदे हुए थे, उम्र लगभग वीस-वाईस वर्ष के आसपास थी। वह अत्यन्त सुन्दर और मादक दिखाई दे रही थी, यह आकर मेरे पास धीरे से वैठ गई।

मैं मन्त्र जप करता रहा, लगभग पाच वजे मैंने मन्त्र जप पूरा किया। तव तक वह मेरे पास इसी प्रकार वैठी रही और अपनी मोहक मुस्कान के साथ मुझे ताकती रही। मुझे कुछ ऐसा लग रहा था कि इन्द्र लोक की अप्सरा मेरे पास वैठी हो और मुझ पर मुग्ध हो।

जव मैंने मन्त्र जप समाप्त किया और उठने लगा तो वह धीरे से वोली—'एक

क्षण के लिए रुकिए, क्या आप मुझे से वात नही करेंगे ?'

मैं चुप रहा तो उसने फिर कहा—'मैं 'वगला' हू आपने मुझे क्यो वुलाया है ?'

आपकी आज्ञानुसार जव उसने ऐसा कहा तो मैंने उसके सामने ध्यान दिया और निवेदन किया कि यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे शत्रु स्तम्भन तथा ऐश्वर्यवृद्धि वरदान दें और हर क्षण मेरे लिए सहायक रहे।

उसने कहा—'मैं तुमसे प्रसन्न हू आज के वाद मैं हर क्षण तुम्हारी रक्षा करूगी और प्रत्येक विपत्ति मे पूर्व तुम्हें सूचित कर दूगी और उस विपत्ति से वचाऊगी, साथ ही मुझे स्मरण कर यदि तुम किसी से वातचीत करोगे या शास्त्रार्थ करोगे तो मैं सामने वाले व्यक्ति की जीभ कीलन कर दूगी जिससे कि तुम विजयी रह सको।'

मैंने श्रद्धा से उन्हे प्रणाम किया तो उसने 'एवमस्तु' कहा तथा गजगामिनी गति से कक्ष से वाहर निकल गई। उसके निकलने के वाद भी मैं मन्त्र-मुग्ध सा वैठा रहा, उसके शरीर की सुगन्ध से पूरा कमरा अपूर्व सुभापित था।

मैं लगभग एक घण्टे तक अनिवर्चनीय आनन्द मे निमग्न रहा। ज्योही मैं चैतन्य हुआ त्योही मैं कक्ष से वाहर आया और दूसरे कक्ष मे लगे हुए आपके चित्र के सामने प्रणीपात हो गया, मेरी आखो से आसुओ की धार वह निकली, सफलता की वजह से मेरा सारा शरीर पुलकित हो रहा था और मन मे एक अपूर्व सी शान्ति अनुभव कर रहा था।

इस अनुष्टान को सम्पन्न हुए तीन महीने वीन गए है, आपने मुझे आज्ञा दी थी कि अनुष्ठान सम्पन्न होने के तीन महीने वाद पत्र लिखना, अत आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हुआ यह पत्र आपको भेज रहा हू।

इन तीन महीनो मे मुझे आश्चर्यजनक उपलब्धिया प्राप्त हुई हैं। साधना सम्पन्न होने के एक महीने वाद ही अप्रत्याशित रूप से मेरा प्रमोशन हो गया और यही पर मेरी नियुक्ति भी हो गई। आर्थिक दृष्टि से मुझे विशेष लाभ हुआ है और मेरा पुत्र जो व्यापार कर रहा था उसमे अद्वितीय सफलता मिल रही है, सवसे वडी वात यह हुई कि मेरे ऊपर तीन मुकदमे चल रहे थे जो शत्रुओ ने ईर्ष्यावश मुझ पर लगा रखे थे, साधना सम्पन्न होने के दो महीनो के भीतर-भीतर उन शत्रुओ ने समझौता करने का निश्चय किया है और उन्होंने कहा कि मै भी समझौता कर लू, मेरी शर्तो पर वे समझौता करने को तैयार थे, अत समझौता हो गया और मैं पूर्ण रूप से इनमे विजयी रहा।

अव मै किसी उच्च अधिकारी से मिलता हू तो उससे पूर्व इस मन्त्र का एक वार उच्चारण कर उसके सामने जव जाता हूँ तो वह मेरे सामने हकलाने लग जाता है और वात मान लेता है।

एक आश्चर्यजनक वात पिछले सप्ताह यह हुई कि मेरे नगर मे एक धर्मशास्त्री आए थे, वे निर्गुणवाद के समर्थक थे। उनकी प्रशसा मैंने काफी सुनी थी अत कुछ

मित्रो के साथ मैं उनके दर्शन के लिए चला गया, उस समय लगभग चार-पाच हजार व्यक्ति बैठे हुए थे, पता नही क्यो मेरे मन मे उनसे तर्क करने की भावना आई और मैंने उनसे निर्गुणवाद के विरुद्ध सगुण उपासना की महता सिद्ध करने की बात रखी। मैंने पाच बार इस मन्त्र का जप किया और आश्चर्य की वात यह थी कि मैं ऐसे-ऐसे तर्क देता गया जिसका भान मुझे पहले कभी नही था। लगभग आध घण्टे तक वाद-विवाद रहा और मैं वराबर अपने पक्ष के तर्क देता रहा। आश्चर्य की वात यह है कि उन स्वामीजी ने अपनी गलती और पराजय सबके सामने स्वीकार कर ली। लोगो ने मुझे आश्चर्य से देखा, मेरे मित्रो ने कहा कि मैं इस प्रकार से तर्क कर रहा था जैसे कि मैंने जीवन भर शास्त्रार्थ किया हो और अत्यन्त उच्चकोटि का विद्वान होऊँ।

मुझे कुछ ऐसा लगा कि सामने वाले स्वामीजी की जीभ कीलन हो गई थी और वे जो कुछ कहना चाहते थे चाहकर भी नही कह पा रहे थे।

आपकी आज्ञानुसार यह पत्र लिख रहा हू। मैंने जिस प्रकार से साधना की, और जो कुछ अनुभूति हुई वह इस पत्र के द्वारा व्यक्त कर दी है आपही देखें कि मैं सफल हो सका हू या नही।

यदि मैं सफल हो सका हू तो इसके मूल मे आपकी ही प्रेरणा रही है। आपकी कृपा से ही मैं सफलता प्राप्त कर सका हू, इसके लिए मैं और मेरा परिवार आपके प्रति कृतज्ञ और चिर ऋणी है।

मुझे एक बार पुन आपके चरणो मे आने की आज्ञा दें, मेरा पूरा परिवार आपके दर्शन करने के लिए व्याकुल है।

दर्शनाभिलाषी,
गिरधर द्विवेदी

# तारा साधना

परम पूज्य गुरुजी !

सादर साष्टाग प्रणाम ।

आपके आदेश से मैं चला तो आया था, परन्तु पिछले चार महीनो से मै आपके चरणो को एक क्षण के लिए भी भुला नही पाया हू । आपने मुझे आदेश दिया था कि मैं अपने मन को सयमित रखू और प्रयत्न करु कि मेरा चित्त इस विन्दु पर स्थिर हो सके । यद्यपि आपकी आज्ञानुसार मैने आपके वताये हुए त्राटक से चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न किया है और मुझे उसमे सफलता भी मिली है, अव मेरा मन पूर्णत शान्त रहता है, शान्ति-सी अनुभव होती है, पहले मेरा मस्तिष्क भटकता रहता था और जव मैं आखें वन्द कर ध्यान लगाने की कोशिश करता, तव मस्तिष्क नियन्त्रण मे नही रह पाता था । मेरी आखें अवश्य वन्द रहती परन्तु मेरा मन घूमता रहता और विचार स्थिर नही रह पाते थे, परन्तु अव इस त्राटक के माध्यम से मुझे आश्चर्य-जनक सफलता मिली है, मैं विचारो के प्रवाह को रोकने मे सफल हो पाता हू, मेरा मन जो उद्विग्न और अशात रहता था अव स्थिर और शान्त रहने लगा है । मै एक आश्चर्यजनक शान्ति अपने मन मे अनुभव करता हू, मैं आपका ऋणी हू और आपने कृपापूर्वक जो कुछ मुझे दिया है उसके लिए मैं जीवन भर ऋणी रहूगा ।

मैं अपने विचारो को केन्द्रित करने मे सफल जरूर हुआ हू और अव मैं ध्यान लगाता हू तो और कोई अन्य विचार मन मे नही आता, परन्तु कई वार ध्यान लगाते ही आपका चित्र सामने आ जाता है, ऐसा लगता है कि आप सशरीर मेरे सामने खडे है और आपका वरदहस्त मेरे सिर पर है । ऐसा दृश्य देखते ही मेरा पूरा शरीर पुलकित हो उठता है तुरन्त समाधि टूट जाती है तथा आख खुल जाती है, उस समय आप दिखाई नही देते, आप कल्पना कर सकते हैं कि आपको सामने न पाकर मुझे कितनी अधिक वेदना होती है, इसको मैं शब्दो मे व्यक्त नही कर पा रहा हू । मैं जो कुछ लिख रहा हू वास्तविकता लिख रहा हू आप समर्थ है, सर्वज्ञ हैं, त्रिकालज्ञ हैं, आप स्वय मेरे इस कथन को परख सकते हैं ।

मैं और कुछ नही चाहता केवल आपके चरणो मे कुछ समय और रहना चाहता हू । आपकी आज्ञा मेरे लिए सर्वोपरि है, फिर भी मैं आपका बालक हू इस

लिए वाल हठ स्वाभाविक है और इसी हठ का आश्रय लेते हुए मैं आपसे निवेदन कर रहा हू कि आप कुछ समय के लिए ही सही, एक वार पुन अपनी शरण मे आने दें और कुछ समय आपके चरणो मे वैठने का अवसर दें ।
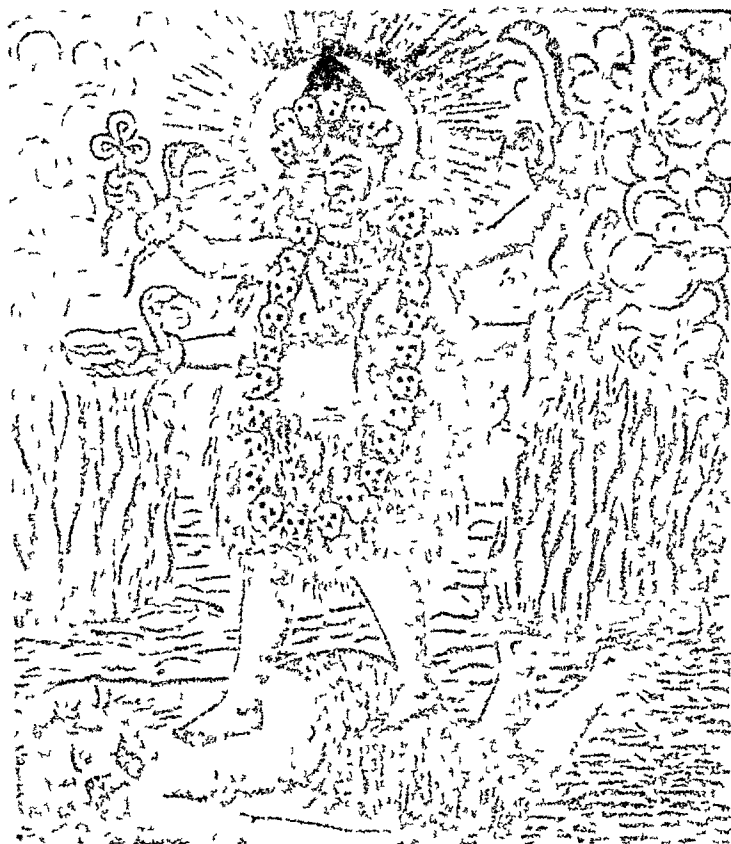
तारा देवी

आपने जो कृपापूर्वक जो तारा साधना सिखाई थी वह मैंने यहा आकर सम्पन्न की । इस साधना मे जो कुछ उपलब्ध हुआ वह सब मैं आपके सामने इस पत्र के माध्यम से रख देना चाहता हू जिससे कि आप जान सकें कि मैं सफल हो सका हू या नहीं ? साथ ही आप मुझे मार्गदर्शन दें कि अब मैं आगे इस सम्बन्ध मे क्या करू ।

आपने वताया था कि किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष के प्रथम गुरुवार से यह

साधना प्रारम्भ की जा सकती है और इसका समय रात्रि के ९ बजे से ३ बजे के बीच रहता है।

आपके यहा से मैं बहुत दु खी और व्यथित हृदय से रवाना हुआ था, आपकी आज्ञा मुझे आगे ठेल रही थी और मेरे पैर आगे बढने के लिए जड से हो रहे थे, फिर भी आपकी आज्ञा आज्ञा ही थी, अत मैं उसी दिन दोपहर को गाडी मे बैठकर अपने घर आ गया।

मेरे घर की छत पर एक छोटा-सा कमरा है अत आपकी आज्ञानुसार मैंने उस कमरे की दीवारें तथा छत गुलाबी रग से पुतवा दी थी, इसके बाद कमरे को शुद्ध जल से धोकर यथासम्भव पवित्र बना दिया था।
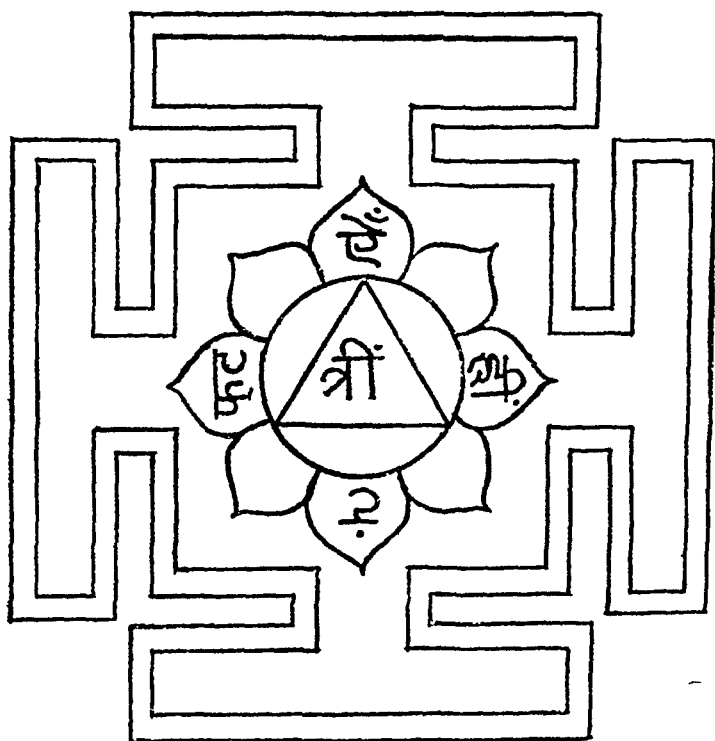
**तारा यंत्र**

कमरे मे लकडी का दो फुट लम्बा और दो फुट चौडा तख्ता रख दिया था जो कि जमीन से छ इच ऊचा था, उस पर गुलाबी कपडा बिछा दिया था और उसके सामने गुलाबी रग का ही आसन बिछा दिया था जो कि सूती था, आसन को इस प्रकार से विछाया था जिससे कि मेरा मुह उत्तर की ओर हो गया था, मेरे सामने ही लकडी का तख्ता था।

आपकी आज्ञानुसार मैंने आधा किलो चावल पहले से ही गुलाबी रग मे रग कर सुखा दिए थे और इसी प्रकार रुई को भी गुलाबी रग से रग सुखा दी थी, इसके वाद जब चावल सूख गए तब उससे उस तख्ते पर चावलो से अष्टदल बनाया और उसके मध्य मे एक मोटा मिट्टी का दीपक रख दिया, जिसमे शुद्ध घी भरा हुआ था, दीपक मे गुलावी रग से रगी रुई की बाट बनाकर रख दी थी।

अष्ट दल के सामने चावल की सात छोटी-छोटी ढेरिया वना दी थी और प्रत्येक ढेरी पर एक सुपारी और एक कपूर की टिकिया रख दी थी, गधक को पीस उसकी ढेरी वनाकर उसके ऊपर दीपक को रख दिया था। दीपक के सामने सात पतासे भी रख दिये थे और सातो ढेरियो पर एक-एक लौंग और इलायची भी रख दी थी।

तख्ते पर एक किनारे पर कलश भी रख दिया था जिसे पहले से ही गुलावी रग से रग दिया था। उसमे गुलावी जल भर दिया था। इस कलश मे आधा किलो के लगभग पानी भर जाता था, कमरे मे मैंने जो बल्व लगा रखा था उसे भी गुलावी रग से रग दिया था। कमरे के फर्श को भी मैंने गुलावी रग से रग दिया था।

शुक्ल पक्ष के प्रथम गुरुवार को रात्रि के आठ बजे मैं छत पर गया, स्नान किया, इसके बाद मैंने अपना यज्ञोपवीत बदल दिया जो नया यज्ञोपवीत मैंने धारण किया वह गुलाबी रग से रगा हुआ था। फिर पहले से ही गुलावी रग से रगी धोती पहन ली, नीचे कच्छा नही पहना था। ऊपर बनियान भी नही पहनी थी, केवल एक गुलाबी रग से रगी धोती को तह करके ओढ ली थी।

ठीक नौ बजे मैं आसन पर बैठ गया जो कि पहले से ही विछा हुआ था। इस प्रकार मेरा मुह ऊपर की तरफ हो गया और मेरे सामने तख्ता विछा हुआ था। कमरे के दरवाजे को मैंने बन्द कर दिया था पर अन्दर से चिटकनी या साकल नही लगाई थी केवल किवाडो को उढ़का दिया था।

सर्वप्रथम मैंने उस कलश के पानी से अपने दोनो हाथ धोये और तीन वार आचमन, प्राणायाम किया तथा दाहिने हाथ मे जल लेकर सकल्प किया कि आज से चौदह दिन तक नित्य १०१ तारा मत्र की माला फेरूगा। यह कार्य नित्य रात्रि के नौ बजे आरम्भ कर दूगा और जब १०१ मालायें समाप्त होगी तभी मैं माला को तख्ते पर रखकर इसी आसन पर सो जाऊगा। दिन मे एक समय भोजन करूगा दिन को नीद नहीं लूगा। खाट पर नही सोऊगा, न नौकरी पर या व्यापार के काम से कही जाऊगा और न असत्य बोलूगा। इसके साथ-ही-साथ मैं इस अनुष्ठान के दौरान किसी प्रकार का लेनदेन या व्यापारिक कार्य भी नही करूगा तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ रहूगा। यह अनुष्ठान मैं तारा महाविद्या को सिद्ध करने के लिए कर रहा हूं।

इसके बाद मैंने सुखासन मे बैठ अपनी कमर को सीधी रखकर स्थिर दृष्टि मे देखता हुआ तारा मत्र का जप आरम्भ किया, मेरे मुह से बहुत ही धीमे-धीमे केवल

होठो-ही-होठो मे मन्त्र की ध्वनि हो रही थी, आपने मुझे निम्न मत्र वताया था जिसे मैंने निरन्तर जप किया था और नित्य १०१ मालायें पूरी की थी। एक माला मे १०८ मनके थे और मैंने रुद्राक्ष की माला का प्रयोग किया था, मन्त्र—'ओम् तारा तूरी स्वाहा' का जप निरन्तर कर रहा था।

पहले दिन लगभग चार बजे मैं जप कार्य से निवृत्त हुआ और फिर मैं उसी आसन पर लेट गया, लेटते ही मुझे नीद आ गई, जप को आरम्भ करने से पूर्व मैंने दीपक जला लिया था। जब मैं लेट गया था उसके वाद ही दीपक अपने आप तेल समाप्त होने पर बुझ गया था। मैंने अनुमान से तेल इतना डाल दिया था जिससे कि सुवह ६ बजे तक दीपक जलता रह सके।

इस प्रकार लगभग दस दिन वीत गए, किसी प्रकार की कोई समस्या नही आई, अनुष्ठान निर्विघ्न चल रहा था, परन्तु ग्यारहवें दिन मैं नियमानुसार नौ बजे जप आरम्भ करने बैठा तो ऐसा लगा जैसे मेरे पास मे से कोई निकल गया हो। एक सरसराहट-सी अनुभव हुई, मेरा शरीर अचानक रोमाचित-सा हो गया, फिर भी मैं आसन पर बैठा रहा और मन्त्र का जाप करता रहा, परन्तु रात बारह बजे के लग-भग एक जोरो का पत्थर किवाड से टकराया और वडे जोर की ध्वनि हुई। मै बैठा-वैठा हिल गया। मैंने अनुभव किया कि पत्थर की चोट से किवाड खुल गया है, इसके वाद तीन-चार और पत्थर जोरो से आकर किवाड से टकराये, एक क्षण के लिए मेरे मन मे विचार आया कि यदि इतनी जोर का पत्थर मेरे सिर मे आकर लग गया तो निश्चय ही मैं समाप्त हो जाऊगा, क्योकि किवाड तो खुल ही गया है, परन्तु मैंने तुरन्त अपने विचारो को रोका और पूर्ण मानसिक रूप से जप को करता रहा, उस रात्रि को सुबह चार बजे तक पत्थर आ-आकर किवाड से टकराते रहे और कमरे मे भी पत्थर आये जिसके निशान कमरे के अन्दर सामने की दीवार पर लगे दिखाई दे रहे थे।

प्रात चार वजे के बाद जप समाप्त कर जव मैं सो गया तव पत्थर आने वन्द हुए, सुवह उठकर जब मैं कमरे से वाहर आया तो लगभग साठ-सत्तर पत्थर किवाड के पास पडे थे और आठ-दस पत्थर कमरे के अन्दर भी आ गये थे, परन्तु किवाड पर किसी प्रकार का कोई चिह्न या पत्थर की चोट दिखाई नही दी। मैंने नीचे अपनी पत्नी और वडे पुत्र को पूछा तो उन्होंने भी उत्तर दिया कि रात को हमने किसी प्रकार की कोई आवाज नही सुनी। मैं आश्चर्यचकित था क्योकि जव भी पत्थर किवाड से आकर टकराता तो मुझे ऐसा सुनाई पडता जैसे पास मे ही कोई छोटा-मोटा बम फट गया हो।

बारहवें दिन रात्रि को मैं पुन साधना कार्य मे वैठा तो रात्रि के लगभग ग्यारह वजे मुझे जोरो से प्यास लगी। इससे पहले ऐसी तीव्र प्यास कभी नही लगी थी। आपने निर्देश दिया था कि जप प्रारम्भ करने के बाद और जव तक उस दिन का जप समाप्त न हो जाए तब तक आसन से हिलना भी नही चाहिए, चाहे प्यास लगे या लघु-

शका हो, आपकी आज्ञा मुझे स्मरण थी, परन्तु उस दिन प्यास इतनी जोरों से लग रही थी कि मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि यदि मैंने पानी नही पिया तो मैं प्यासा ही समाप्त हो जाऊगा, पर फिर भी मैं आसन पर बैठा रहा, रात्रि को दो बजे मुझे जोरो से बुखार-सा अनुभव हुआ। ऐसा लग रहा था जैसे एक सौ पाच डिग्री बुखार आ गया हो, पर बुखार की अवस्था मे भी मैंने अपने आप पर नियन्त्रण बनाये रखा और एक सौ एक मालाए पूरी करके ही सोया। सुबह जब उठा तो मेरा सिर भारी था और चक्कर आ रहे थे।

तेरहवें दिन की रात्रि को जब मैं साधना मे बैठा तो कोई विशेष घटना घटित नही हुई, पर एक बजे के लगभग जोरो से घुघरुओ की आवाज सुनाई दी, ऐसा लग रहा था जैसे पास मे ही मोटे-मोटे घुघरू बज रहे हो, और कोई घम-घम करता मेरे कमरे मे आ रहा है, उसके एक क्षण बाद ही जो दृश्य मैंने देखा तो मेरे मुह से चीख-सी निकल गई। मेरे सामने एक विशालकाय डाकिन की तरह स्त्री खडी थी जिसके लम्बे बाल बिखरे हुए थे, बडी-बडी लाल आखें, मुह से बाहर लम्बे-लम्बे दात निकले हुए और पूरा शरीर भयानक दिखाई दे रहा था। उसके हाथ मे ताजा कटा हुआ सिर था जिसमे से खून निकल रहा था और वह दूसरे हाथ से उस खून को ले लेकर चाट रही थी, कमर पर मोटे-मोटे घुघरू बधे हुए थे, और चलने से आवाज आ रही थी। वह आते ही मेरे सामने खडी हो गई। मैं उस दृश्य को आज भी कहते हुए रोमाचित हो रहा हू और भय की एक लहर-सी आज भी पूरे शरीर मे दौड जाती है, उसके नाखून बढे हुए थे और पूरे शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल थे। उसने आते ही मेरे सीने पर पाव रखा और कहा कि आज मुझे तेरा खून भी पीना है, और इतना कह कर वह इस प्रकार से हसी कि जैसे श्मशान मे हड्डिया आपस मे टकरा रही हो। उसके शरीर से दुर्गन्ध-सी निकल रही थी, जिसे सहन करना कठिन हो रहा था।

यह आपके चरणो की ही कृपा थी कि मैं ऐसी भयानक स्थिति मे भी अपने आपको नियत्रण मे रख सका। यदि मैंने त्राटक का अभ्यास न किया होता तो उस समय मैं निश्चय ही बेहोश हो जाता। मैंने फिर भी अपना जप कार्य चालू रखा। वह प्रात चार बजे तक मेरे सीने पर पावो से चोट करती रही और मुझे कुछ ऐसा लग रहा था कि वह मेरे शरीर से मास नोच-नोच कर स्वादपूर्वक खा रही है। मैं स्वय अपने शरीर के उघडे हुए चमडे को अनुभव कर रहा था और जब वह शरीर से मास नोचती तो भयानक वेदना का अनुभव होता। चार बजे जब मैंने एक सौ एक वी माला पूरी की, उस समय तक मैं लगभग बेहोश हो चुका था। बडी कठिनाई से मैं अपने आपको होश मे रखे हुए था और मत्र का जप चालू था। उसके बाद मैं वही पर लुढक गया। जब मेरी आख खुली तब प्रात के आठ बजे थे। मैं एकदम से हडबडा कर उठ बैठा, मेरा शरीर पसीने-पसीने हो रहा था, मैंने अपने शरीर पर नजर डाली तो कही से भी मास नुचा हुआ नही दिखाई दिया, मेरे मुह से खुशी की चीख निकलते-निकलते रह गई और मुझे पहली बार अतीव आनन्द हुआ कि मेरा शरीर स्वस्थ है,

और कही से भी चमडी फटी हुई या मास नोचा हुआ नही है।

दिन भर मुझे हल्का-सा बुखार रहा और भयभीत-सा पडा रहा। रात्रि को मैंने जो दृश्य देखा था उसको स्मरण करते ही पूरा शरीर थरथरा उठता था।

चौदहवें दिन की रात्रि को मै हिम्मत कर स्नान कर पुन अपने आसन पर बैठ गया, दीपक जलाया और जप कार्य प्रारम्भ कर दिया। रात्रि को लगभग तीन बजे एक अतीव सुन्दरी मेरे पास आकर खडी हुई, जिसने गुलाबी कचुकी और गुलाबी ओढना ओढ रखा था, उसके पूरे शरीर से एक अपूर्व सी मादक सुगन्ध आ रही थी, वह मेरे पास आकर घुटने से घुटना मिलाकर बैठ गई। उसकी श्वास मेरे कन्धे से टकरा रही थी। मैंने एक क्षण के लिए उस तरफ ताका तो मुझे ऐसा लगा जैसे ससार की सबसे सुन्दर स्त्री मेरे पास बैठी हुई है। उम्र लगभग अठारह से बीस वर्ष के बीच थी, माग मे सिन्दूर भरा हुआ था और वह पूरे शरीर पर गहने-पहने हुई थी। वह चुपचाप मेरे पास आकर बैठ गई और मेरी ओर मुस्कराहट के साथ ताकने लगी।

एक बार तो मैं मत्र भूल-सा गया, परन्तु तुरन्त मैंने अपने मन पर नियन्त्रण किया और अपनी आखें सामने दीवार पर स्थिर कर जप कार्य चालू रखा।

उसने एक दो बार कुछ प्रश्न भी किये परन्तु मैंने कोई उत्तर नही दिया और अपने जप को चालू रखा। मैंने अनुभव किया कि उसने अपना सिर मेरे कन्धे से लगा दिया है और उसकी मादक मस्त सुगन्ध मेरे पूरे शरीर मे बिजली दौडा रही है।

लगभग चार बजे मैंने जप कार्य पूरा किया। तब तक वह इसी प्रकार मेरी कमर मे हाथ डालकर कन्धे पर सिर टिकाकर बैठी रही। जप कार्य समाप्त कर ज्योही मैं लेटा वह भी मेरे पास लेट गई। मै तुरन्त उठकर बैठ गया, तो वह आखो से कटाक्ष करती मुस्कराती हुई मेरे पास ही बैठ गई।

एक क्षण के बाद उसने पूछा कि तुमने मुझे बुलाया इसलिए मैं आ गई। आपने मुझे क्यो बुलाया है ?

मैंने कहा कि आपको इसलिए बुलाया है कि मेरे जीवन मे आप सहायक बनी रहे।

उसने पूछा कि मैं मा के रूप मे सहायक रहू या प्रेमिका के रूप मे ?

मैंने उत्तर दिया कि मा के रूप मे मैं आपसे कुछ भी प्राप्त नही कर पाऊगा। मैं आपको प्रेयसी रूप मे ही प्राप्त करना चाहता हू। पर उसमे किसी भी प्रकार की वासना न हो।

वह मुस्करा दी, वास्तव मे ही वह अत्यन्त सुन्दर थी। इतनी सुन्दर स्त्री इससे पूर्व मैंने अपने जीवन मे नही देखी थी। उसकी मुस्कराहट मे एक अजीब-सा आकर्षण था जो कठोर-से-कठोर साधक को भी गुमराह कर सकता है।

उसने कहा मैं प्रेयसी के रूप मे रहने को तैयार हू पर क्या तुम मुझे सन्तुष्ट कर सकोगे ?

मैंने उत्तर दिया कि वासनात्मक रूप से आपका मेरा सम्बन्ध नही रह सकता।

आपकी मैंने साधना की है आप प्रेयसी रूप मे मुझे नित्य धनराशि प्रदान करें जिससे कि मैं अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत कर सकू ।

उसने कहा मैं प्रसन्न हू और तुम प्रेमी हो अत तुमने जो कुछ भी मागा है, मैं उसे पूरा करूगी, और ऐसा कहती हुई वह मन्द गति से मुस्कराती हुई कमरे से बाहर निकल गई । इससे पूर्व उसने दोनो हाथो से मेरे शरीर को पकडकर भीच-लिया था, फिर भी मैंने अपने आप पर नियन्त्रण बनाये रखा ।

वह चली गई, परन्तु मै घटे भर तक सो नही सका । उस कमरे मे उसके शरीर से निकलने वाली सुगन्ध व्याप्त रही । मैं उसके बारे मे ही चिन्तन करता रहा । यह चिन्तन मैं लेटे-लेटे कर रहा था, तभी दीपक तेल न होने के कारण बुझ गया और मुझे नीद आ गई ।

सुबह सात बजे मेरी आख खुली तो मैं उठ बैठा । कमरे मे मेरे अलावा और कोई नही था, परन्तु जहा म सोया था वहा सिर के नीचे सोने का टुकडा पडा था जो कि लगभग दो तोला वजन का था ।

मैंने उस टुकडे को उठा लिया और नीचे आ गया । इस घटना की चर्चा घर मे किसी से नही की । स्नान वगैरह करके मैं दोपहर को एक सर्राफ के यहा गया और वह सोने का टुकडा उसके सामने रख दिया । उसने जाच कर कहा कि सोना पूर्ण असली हे और दो तोला वजन मे है । क्या आपको बेचना है ?

मैंने स्वीकृति दी और उसने दो तोला सोने की रकम मुझे थमा दी । मैं घर चला आया ।

इसके बाद वह सुन्दरी मुझे पुन दिखाई नही दी, पर अब मै नित्य नीचे कमरे मे अपने पलग पर सोता हू तो प्रात सिरहाने मुझे नित्य दो तोला सोने का टुकडा मिल जाता है, ऐसा नियमित रूप से हो रहा है ।

मैं नही समझता कि मैं अपने कार्य मे सफल हुआ हू या नही, परन्तु मुझे आन्तरिक प्रसन्नता अवश्य है और उस सोने के टुकडे को मैं पाच-छ दिनो के बाद जितने टुकडे इकट्ठे होते हैं उन्हें ले जाकर बाजार मे बेच देता हू, आपकी कृपा से मेरा सारा कर्जा उतर गया है और आर्थिक दृष्टि से बहुत ही ज्यादा अनुकूलता अनुभव कर रहा हू ।

मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी 'तारा साधना' सफल हुई है जिसके परिणाम-स्वरूप मुझे आर्थिक लाभ हो रहा है । आपने मुझे बताया था कि जीवन भर इसी प्रकार से आर्थिक लाभ होता रहेगा, इसके लिए मैं आपका अत्यधिक आभारी हू ।

मैं इस बार पुन जल्दी-से-जल्दी आपके चरणो मे आना चाहता हू और आपके दर्शन से अपने आपको धन्य करना चाहता हू । मुझे विश्वास है कि आपकी तरफ से शीघ्र ही स्वीकृति प्राप्त होगी ।

आपका चरण रज,
(वासुदेव शर्मा)

# कर्ण पिशाचिनी साधना

परम पूज्य स्वामी जो,

सादर चरण स्पर्श ।

आज पत्र लिखते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि मैंने आपकी आज्ञा का अक्षरश पालन किया, जिसके फलस्वरूप मैं अपनी उस इच्छा को पूरी कर सका जो कि मेरे मन मे कई वर्षों से थी ।

मैं गृहस्थ नही हू और न जीवन मे गृहस्थी बसाने की इच्छा ही रही । मेरा एक ही ध्येय था कि मैं काल ज्ञान के बारे मे साधना करू, मैंने कही से यह सुना था कि 'कर्ण पिशाचिनी सिद्धि' से काल ज्ञान हो सकता है, जब मुझे यह ज्ञात हुआ तो मैं साधुओ और सन्यासियो के सम्पर्क मे आने लगा । मेरा प्रयत्न शुरू से इस साधना को सीखने का था, परन्तु मुझे कोई ऐसा साधु नही मिला जो कि मुझे इस प्रकार का ज्ञान दे सके ।

मैंने मन मे यह निश्चय कर लिया था कि यदि जिन्दा रहा तो इस ज्ञान को कही-न-कही से अवश्य ही सीखूगा, परन्तु इसके लिये मैं जितना ही अधीर होता उतनी ही ज्यादा परेशानी मिलती । मैं मूलत ज्योतिषी रहा और ज्योतिष के माध्यम से ही अपना जीविकोपार्जन करता था, परन्तु मुझसे लोग प्रभावित नही होते थे, क्योकि मैं उनके भूतकाल के बारे मे कुछ भी बताने मे समर्थ नही था और भविष्य बताता तो उन्हें विश्वास नही होता था, इस प्रकार मैं एक असफल ज्योतिषी बनकर रह गया था ।

तभी मुझे एक साधु से आपके बारे मे जानकारी मिली और मैंने आपके पास आने के लिये पत्र लिखा, परन्तु जब मैंने पत्र मे इस प्रकार की साधना सीखने की इच्छा प्रकट की तो आपने मुझे अपने सचिव के द्वारा मना लिखवा दिया, इससे मैं निराश अवश्य हुआ, परन्तु उस साधु ने यह कहा था कि यदि तुम बराबर प्रयत्नशील बने रहोगे तो आपका हृदय अवश्य पसीज जायेगा, और आप यह साधना सिखा देंगे ।

सभवत आपको स्मरण होगा कि जब मैं बिना आपकी अनुमति लिये आपके द्वार पर आया तो आपने बिना मेरा प्रश्न सुने ही कहलवा दिया कि मैं इस प्रकार की साधना नही सिखाता ।

आपके नौकर के द्वारा जब यह ज्ञात हुआ तो मैं आश्चर्यचकित रह गया कि

जब मैं श्रीमाली जी से मिला ही नही हू तो उन्हे मेरे बारे मे कैसे पता चल गया कि मैं कौन हू और किस उद्देश्य से यहा आया हू । आपने स्पष्ट कहलवाया था कि मैं इस प्रकार की कर्ण पिशाचिनी जैसी वाममार्गी साधना नही सिखाता ।

मैं निराश होकर धर्मशाला लौट आया, नित्य आपके द्वार पर आता और नित्य मुझे ऐसा ही जवाब सुनने को मिलता, मुझे याद है कि सोलहवें दिन आपसे भेंट हो सकी तो आपने मेरा नाम लेकर कहा कि व्यर्थ मे यहा समय बरबाद कर रहे हो, मैंने वाम-मार्गी साधना सिखाना बन्द कर दिया है और तुम्हारी इच्छा कर्ण पिशाचिनी के अलावा और कोई साधना सीखने की नही है, इसलिये मैं तुम्हे यह साधना नही सिखा सकूगा ।

मेरी आखो मे आसू आ गये थे । मैंने अपनी व्यथा आपके सामने रख दी थी, कि मैं किस प्रकार एक सामान्य ज्योतिषी बनकर भूखा मर रहा हू, लोगो का मुझ पर विश्वास ही नही रहा है और ब्राह्मण युवक होते हुए भी मैं भिखारीवत् जीवन व्यतीत कर रहा हू ।

जहा तक मैं समझता हू 'ब्राह्मण' शब्द को सुनकर आपका झुकाव किंचित मेरी तरफ हुआ, पर फिर भी आपने मुझे टरकाना ही चाहा और इस उद्देश्य से आपने मुझे कहा कि आज की रात श्मशान मे बिताकर आओ तो कल बात करूगा । आपने यह सोच लिया था कि न तो मैं सारी रात श्मशान मे रह सकूगा और न आपको इस सबध मे बाध्य कर सकूगा ।

पर मेरे मस्तिष्क मे तो एक ही धुन थी कि मैं इसी साधना को सीखूगा, और कही से भी मुझे इस प्रकार की साधना सीखने को मिलेगी तो मैं इसे प्राप्त करूगा ।

उस दिन मैं शाम को ही श्मशान मे चला गया था और सारी रात श्मशान के मध्य मे बैठा रहा । यद्यपि वह रात कितनी अधिक डरावनी और रोमाच-कारी थी, परन्तु फिर भी आपकी कृपा से मैं सारी रात श्मशान मे बिता सका, सुबह जल स्नानादि कर प्रात ग्यारह बजे के लगभग आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ तो आपने दो क्षण आखें बद कर कुछ सोचा और फिर आखें खोल कर पूछा कि श्मशान मे रात बिता आये, मैंने हा कहा, इस पर आप किंचित परेशान हो गये ।

मैंने सोचा कि आपके द्वार से खाली हाथ ही नही जाऊंगा, पर मेरा मन कह रहा था कि यदि यहा से खाली हाथ चले गए तो अन्य कही पर भी इस प्रकार की विद्या सहज ही प्राप्त नही हो सकेगी ।

इस प्रकार दस-बारह दिन और बीत गये । आपने मुझे टरकाने के लिये कुछ और भी बाते कही पर मैंने आपसे ही सीखने का निश्चय कर लिया था, अन्त मे मैंने जब आपसे शिष्य बनाने की इच्छा प्रकट की तो आपने स्पष्ट शब्दो मे मुझे मना कर दिया । मैंने भी यह निश्चय कर लिया था कि आप मुझे शिष्य बनावें या न बनावें यह विद्या आपसे ही मुझे सीखनी है, मेरा मन कह रहा था कि जब आपने मुझे श्मशान मे रात बिताने को कहा है तो आप स्वय सोचेंगे कि इसको सिखाना ही चाहिए अन्यथा

मुझे ऐसा आदेश नही देना चाहिए था । इसी आशा से मैं डेढ महीने तक जोधपुर मे पडा रहा और नित्य आपके दरवार मे उपस्थित होता और निराश होकर धर्मशाला लौट आता ।

मैंने यह निश्चय कर लिया था कि अव आपको यह नही कहूगा कि आप मुझे कव सिखायेंगे और विना सीखे घर भी नही लौटूगा, चाहे मुझे साल भर तक जोधपुर मे ही क्यो न रहना पडे ।

मै यह सारी कहानी इसलिये लिख रहा हू कि आपको शायद मेरा स्मरण आ जाय और कुछ कृपा का प्रसाद मिल जाय । यद्यपि मैं आपका शिष्य नही वन सका हू सभवत मुझमे इस प्रकार की पात्रता नही है या ऐसा मेरा सौभाग्य नही है कि आप जैसे समर्थ गुरु का सरक्षण प्राप्त कर सकू परन्तु फिर भी मैंने, आपको अपना गुरु माना है, मेरे कक्ष मे आपका चित्र है और उसी के आधार पर मै एकलव्य की तरह आपका शिष्य वनकर कार्य कर रहा हू और भविष्य मे भी करुगा ।

जव डेढ महीना वीत गया और आपने शायद सोचा कि यह आसानी से टलेगा नही तो आपने मुझे कहा कि तुम यदि कर्ण पिशाचिनी साधना ही सीखना चाहते हो तो मैं वता देता हू, पर यह साधना अपने घर जाकर ही करना, भविष्य मे और किसी भी साधना के लिये मुझे मत कहना । क्योकि मैंने इस प्रकार की साधना के निर्देश देने का विचार छोड दिया है । मैं जीवन मे मत्र साधना और दक्षिण मार्गी साधना को आगे वढाना चाहता हू, वाम मार्गी साधना मेरी रुचि के अनुकूल नही हैं । यद्यपि यह वात सही है कि वाम मार्गी साधना से शीघ्र ही सफलता मिल जाती है, सिद्धि हो जाती है और पूर्णता प्राप्त हो जाती है ।

मैं खडा रहा । उस समय, मैं क्या कहता जवकि आप मुझे नाराज होकर भी यह साधना दे रहे थे, इसलिये मैं चुप रहा । आपने जिस प्रकार से वताया मैं उसको कागज पर नोट करता रहा, जव आपने पूरी विधि मुझे वता दी तो कठोर शब्दो मे आज्ञा दी कि आज ही घर चले जाओ और वही पर साधना को सम्पन्न करना तथा भविष्य मे इसका किसी भी प्रकार से दुरुपयोग मत करना । मैं जव आपके चरणो की तरफ झुका तो आप दो कदम पीछे हट गये । यह मेरा दुर्भाग्य ही था, परन्तु मुझे विश्वास है आप दयालु हैं और मुझ जैसे अकिचन पर कभी-न-कभी आपकी कृपा अवश्य होगी ।

आपने जिस प्रकार से वताया था उस प्रकार से मैंने घर पर जाकर प्रयोग प्रारभ किया । आपने मुझे वताया था कि यह केवल तीन दिन का प्रयोग है जो कि किसी भी महीने के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी से प्रारभ होता है और अमावस्या को समाप्त हो जाता है, परन्तु साधना के इन तीन दिनो की तैयारी के लिये इससे पूर्व दस दिन का अभ्यास करना चाहिए और अमावस्या के वाद भी दस दिन तक इस अभ्यास को नियमित रखना चाहिए ।

अत मैंने आपकी वताई हुई विधि के अनुसार पौष मास की तृतीया से स्नान करना वन्द कर दिया, न तो मैं दातुन करता था, न जीभ या दात साफ करता, न

स्नान करता और न अपने कपडे वदलता । आपने मुझे ऐसी स्थिति मे बाहर के कार्य करते रहने को कहा था, अत मैं छोटा-मोटा ज्योतिष का कार्य भी करता रहा, परन्तु लोग मेरे उलझे हुए बाल, पीला और सुस्त चेहरा तथा बिना स्नान किए हुए शरीर को देखकर आश्चर्य करते थे ।

आपने जैसा बताया था, मैं सन्ध्या, पूजन, तर्पण, मन्दिर मे जाना, गायत्री पाठ, वेदपाठ आदि सभी कार्य बन्द कर दिये थे, क्योंकि आपने मुझे वताया था कि यदि इस प्रकार के कार्य करोगे तो कर्ण पिशाचिनी सिद्धि नही हो सकेगी और भविष्य मे भी इस प्रकार के कार्य नही करने हैं ।

जिस विस्तर पर मैं सोता, प्रात उस विस्तर को समेटता नही था, इसी प्रकार थाली मे भोजन करने के वाद थाली को धोता नही था, अपितु शाम को भोजन वनाकर उसी झूठी थाली मे खाना लेकर खा लेता था ।

इस प्रकार मैं बराबर दस दिन करता रहा, त्रयोदशी के दिन मैंने पतासे मे थोडा-सा मल लेकर अपने मुह मे डालकर निगल गया, यद्यपि इससे मुझे घृणा तो वहुत हुई, परन्तु मैं हर हालत मे इस साधना को वाम-मार्गी तरीके से सम्पन्न करना ही चाहता था । इस प्रकार त्रयोदशी से अमावस्या तक इन तीन दिनो मे जब भी भूख लगती पतासे मे या किसी अन्य वस्तु मे अपना ही मल लेकर निगल जाता और जब प्यास लगती तो अपना ही मूत्र छानकर पी लेता ।

त्रयोदशी की रात्रि को मैंने अपने घर के दरवाजे अच्छी तरह से वन्द कर दिये और कमरे मे वडे-वडे ग्यारह दीपक लगा दिए, प्रत्येक दीपक मे आधा किलो से ज्यादा तेल था । इसके वाद मैं ऊनी कम्बल का आसन विछा दक्षिण की तरफ मुह कर वैठ गया, इन दस दिनो मे स्नान न करने से मेरे शरीर मे से दुर्गन्ध आ रही थी, इस दिन प्रात जो मल हुआ था उसे मैंने भोजन की थाली मे ले लिया था और दिन को इसी मल का सेवन किया था, वाद मे जो वच गया था वह मैंने रात्रि को ग्यारह बजे सर्वथा नग्न होकर अपने पूरे शरीर पर लेप दिया था, ललाट पर अपने ही मल का तिलक किया था और बालो मे भी इस मल को अच्छी तरह से लगा दिया था ।

मैं जिस आसन पर वैठा उसके चारो तरफ मैंने दीपक लगा कर उनके मध्य मैं वैठ गया था, इसके वाद मैंने पहले से ही हड्डियो की माला तैयार करके रखी थी, जो कि मैंने एक दिन रात्रि को श्मशान मे जाकर एक कब्र खोदकर उसमे से हड्डिया निकाल कर माला वनाई थी । उस माला मे चौवन छोटी-छोटी हड्डिया थी, इस प्रकार यह चौवन हड्डियो के टुकडो की एक माला वन गई थी, इस प्रकार की मैंने दो मालाए वनाई थी, जिसमे से एक माला मैंने गले मे पहन रखी थी, और एक माला मैंने अपने हाथ मे ले रखी थी ।

इसके वाद आपने मुझे 'कर्ण पिशाचिनी' मन्त्र जप करनेका निर्देश दिया था, अत मैंने इसी नग्नावस्था मे वैठ कर जप प्रारम्भ किया । आपने जो मुझे मन्त्र सिखाया था वह इस प्रकार था—

'ओम ह्रीं कर्ण पिशाचिनी अमोघ सत्य वादिनी मम कर्णे
अवतर-अवतर सत्य कथय-कथय अतीत अनागत
वर्तमान दर्शय-दर्शय ए ह्रीं ह्रीं कर्ण पिशाचिनी स्वाहा।'

इस मन्त्र का मैं निरन्तर जप करता रहा, आपने मुझे बताया था कि एक सौ पन्द्रह मालाए निरन्तर जप करनी है। यदि जप के दौरान लघुशका हो तो उसी आसन पर लघु शका कर ली जाय, यदि मल विसर्जन की शका हो तो उसी आसन पर मल विसर्जन कर लें और मन्त्र पढते-पढते ही उस मल को शरीर पर लेप कर दें। मूत्र को भी बायें हाथ से लेकर अपने शरीर पर छिडकते रहे।

मैंने ऐसा अनुभव किया कि जब मैं उस दिन इक्कीस मालाए पूरी कर चुका तो मुझे जोरो से लघुशका हुई और जो भी मूत्र हुआ वह मैं बायें हाथ से लेकर अपने मुह पर और शरीर पर छिडकता रहा, दाहिने हाथ से मैं अपनी माला को लेकर मन्त्र जाप करता रहा।

उस रात्रि को कई बार मल और मूत्र विसर्जन हुआ। मैं आश्चर्यचकित था कि इससे पूर्व ऐसा कभी नही हुआ था, सारा कमरा दुर्गन्ध से भर गया था। उस कमरे मे सास लेना भी कठिन हो रहा था, फिर भी मैंने एक सौ पन्द्रह मालाए पूरी की, जब जप समाप्त हुआ उस समय प्रात पाच बज चुके थे।

जप समाप्त करके मैं आसन से उठा और कमरे मे ही सो गया, आपने मुझे निर्देश दिया था कि कमरे मे ही रहना है बाहर जाने की आवश्यकता नही है, प्रात ६ बजे के लगभग मुझे जोरो की भूख लगी और कुछ ऐसा लगा जैसे मैं महीने भर से भूखा हू और यदि तुरन्त भोजन नही किया तो शायद प्राण समाप्त हो जायेंगे, उसी समय मल विसर्जन भी हुआ, उस मल से ही मैंने यथासम्भव क्षुधा और मूत्र से अपनी प्यास को शान्त किया।

एक क्षण के लिए मेरी आखो मे आसू आ गए कि आपने मुझे मना किया था, वह ठीक था। आपकी आज्ञा मान लेता तो मुझे इतना पतित नही होना पडता, मेरा ब्राह्मणत्व समाप्त हो गया था और मैं एक पिशाच की तरह उस कमरे मे बैठा हुआ था।

चतुर्दशी की दोपहर को मैं उसी कमरे मे लेटा हुआ था। जमीन पर कोई वस्त्र बिछा हुआ नही था। मैं सर्वथा नग्न था तभी धीरे से दरवाजा खुला, कुछ ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि कोई कमरे के अन्दर आया हो, जबकि मैंने मुख्य द्वार का दरवाजा पूरी तरह से बन्द कर रखा था और अन्य कोई दरवाजा ऐसा नही था जिससे कि कोई अन्दर आ सके।

मैं सजग था, मेरी आखें खुली हुई थी, प्रमाण प्राप्त करने के लिए अपने हाथ से शरीर पर चिकोटी भी काटी तो मुझे दर्द-सा हुआ, अत यह स्पष्ट था कि मैं सजग था। मैंने देखा कि एक स्त्री कमरे मे आई है जो कि सर्वथा नग्न है, उसकी आयु पच्चीस से तीस वर्ष के लगभग होगी। दिखने मे वह मध्यम स्तर की सुन्दरी लग

रही थी। वह मेरे पास आकर मेरे साथ लेट गई। मैं उसे देखकर हडवडा गया और उठ वैठा तो उसने जबरदस्ती से मुझे पुन अपने साथ लिटा लिया और धीरे-धीरे मेरे गुप्तांग पर हाथ फेरने लगी।

मैं हतप्रभ था, किंकर्त्तव्यविमूढ था कि क्या करू और क्या न करू ? मेरे मन मे एक अजीब-सा भय व्याप्त हो गया था। उस तरफ देखने का साहस नही जुटा पा रहा था, परन्तु वह विना हिचकिचाहट निर्लज्ज-सी मेरे गुप्तांग पर हाथ फेरती रही और मुझे काम करने के लिए प्रेरित करती रही, परन्तु सम्भोग नही हुआ और लगभग पाच वजे वह मेरे पास से उठकर अदृश्य हो गई।

मै पस्त-सा हो गया था और निश्चय कर लिया था कि इस साधना को छोड दू, परन्तु आपने मुझे वता दिया था कि यदि साधना प्रारम्भ करने के वाद वीच मे छोड दी तो वह पिशाचिनी तुम्हे उसी समय समाप्त कर देगी। इस साधना म या तो सफलता ही मिलती है या मृत्यु ही प्राप्त होती है।

मै उठ वैठा, कमरे मे कई वार मल मूत्र होने से एक अजीब-सी दुर्गन्ध भर गई थी जिससे मेरा माथा फट रहा था, परन्तु मैं कमरे मे पडा रहा। रात्रि को लगभग ग्यारह वजे मै पुन सभी दीपक जला आसन पर वैठ गया और पहले दिन की तरह ही मन्त्र जप प्रारम्भ किया। मेरी रुचि इस साधना मे समाप्त हो गई थी और मैं जो कुछ कर रहा था वेमन से कर रहा था। मेरी राय है कि किसी भी व्यक्ति को इस प्रकार की साधना वाममार्गी तरीके से सम्पन्न नही करनी चाहिए, अघोरी ही इस कार्य को कर सकते हैं।

खैर, मेरा जप निरन्तर चालू रहा, पर घण्टे भर वाद ही वही स्त्री मेरे पास आकर वैठ गई जो दोपहर को मेरे साथ आकर लेटी थी, उसके दात वाहर निकले हुए थे, सिर पर छोटे-छोटे वाल थे, वालो मे सिन्दूर भरा हुआ था और गले मे हड्डियो की माला पहने हुई थी, इसके अलावा वह पूरी तरह से निर्वस्त्र थी।

वह पास मे वैठकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी और वह मेरे गुप्तांग के साथ वरावर खेल कर रही थी। कभी वह उस पर हाथ फेरती, कभी मेरा चुम्वन ले लेती और कभी मेरी कमर मे हाथ डाल देती, मैं पसीने-पसीने हो रहा था, परन्तु फिर भी मेरा मन्त्र जप चालू था। इस वीच पाच-छ वार मल-मूत्र विसर्जन हुआ तो उस स्त्री ने ही लेकर मेरे शरीर पर और अपने शरीर पर चुपड दिया। इस प्रकार प्रात पाच वजे तक वह मेरे पास वठी रही और जप समाप्त होते ही उठकर दरवाजे के वाहर निकल गई।

मैं आसन से उठकर पास ही कमरे मे लेट गया। मै इस माहौल मे लगभग अर्द्ध विक्षिप्त-सा हो गया था। मैंने इस साधना को समाप्त करने की सोच ली थी, परन्तु मृत्युभय से मैं ऐसा नही कर सका।

अमावस्या के दिन मैं कमरे मे लेटा रहा। लगभग वारह वजे वह स्त्री पुन आकर मेरे पास लेट गई। उसे लेटते देख कर मैं उठ कर खडा हो गया तो उसने उठ

कर मेरी कमर मे जोरो से लात मारी और मुझे साथ ही लेटने पर विवश कर दिया, आज उसने मेरे शरीर के साथ कई बार खिलवाड की और सम्भोग के लिए भी प्रेरित किया। लगभग तीन बजे उसने जबरदस्ती से सम्भोग किया और सम्भोग समाप्त होते ही वह उठकर कमरे से बाहर निकल गई। मैं भय, पश्चात्ताप और ग्लानि से दुखी हो रहा था।

मैं इसी प्रकार कमरे मे पडा रहा। ऐसा लगा जैसे मैं एक भयानक षड्यन्त्र मे फस गया हू और निकलने का कोई चारा नही है। रात्रि के लगभग ग्यारह बजे मैं अत्यन्त बेमन से उठकर आसन पर बैठ गया और चारो तरफ दीपक लगा दिए। आज का माहौल मुझे अत्यन्त डरावना और वीभत्स लग रहा था, कमरा दुर्गन्ध से भर गया था, मेरा शरीर मल-मूत्र से सना हुआ था, और दिमाग की नसें दुर्गन्ध के मारे फट रही थी।

जप प्रारम्भ होते ही वह स्त्री कमरे मे आ गई और आकर सीधे ही मेरी गोदी मे बैठ गई, उसने अपना दाहिना हाथ मेरे गले मे डाल दिया।

मैं चुपचाप मत्र जप करता रहा और वह वही पर मल विसर्जन करती रही और वह अपने हाथ से अपने मल और मूत्र को मेरे शरीर पर लेपती रही, रात्रि के लग-भग पाच बजे वह गोदी से अलग हुई और मेरे सामने नग्नावस्था मे बैठ गई, जप समाप्त हुआ तो वह हड्डियो की माला पास मे रख दी।

उसने कहा मैं ही तुम्हारी प्रियतमा हू और अब जिन्दगी भर तुम्हारे साथ रहूगी और तुम्हारा कार्य करूगी, पर यदि तुमने मुझे कभी छोडना चाहा तो मैं तुम्हे समाप्त कर दूगी, ऐसा कहते-कहते उसने अपने गले मे जो हड्डियो की माला पहने हुए थी, वह मेरे गले मे पहना दी और मेरे गले मे जो हड्डियो की माला थी वह निकालकर अपने गले मे डाल ली, और नववधू की तरह मुस्कराने लगी।

मैं चुप रहा तो उसने कहा शर्माने की जरूरत नही है, तुमने मुझे सिद्ध किया है तो अब मैं जीवन भर तुम्हारे साथ रहूगी ही, और जब भी मुझे सम्भोग की इच्छा होगी तो तुम्हारे पास आऊगी और तुम्हे मेरी इच्छा पूरी करनी पडेगी।

तुम जो कुछ भी प्रश्न पूछोगे तुम्हारे कान मे मैं कह दूगी, मगर मेरे बारे मे अन्य किसी को कहा तो तुम्हारा गला घोट दूगी। साथ ही मुझसे पिण्ड छुडाना चाहा तो तुम्हे मारकर मुझे प्रसन्नता ही होगी, ऐसा कहकर वह मेरे गुप्ताग पर चुम्बन लेती हुई कमरे से बाहर निकल गई।

काश! मैं इस प्रकार की साधना न करता तो ज्यादा अच्छा रहता, पर अब मैं इस साधना को कर चुका था अत मै पीछे भी नही हट सकता था, आपने तो मुझे बहुत मना किया था परन्तु यह दण्ड मेरी जिद्द के कारण ही मुझे भोगना पड रहा है।

आपने जो विधि बताई थी उसके अनुसार मैंने प्रतिपदा को प्रात उठकर स्नान किया, परन्तु दातो को साफ नही किया, दीपक उठाकर घर के बाहर दक्षिण की तरफ जमीन मे गाड दिये और उन दीपको के साथ ही उस हड्डियो की माला को भी

जमीन मे गाड दिया, इसके बाद पूरे कमरे को साफ किया और शुद्ध जल से दो तीन बार धोया, फिर मैने पुन स्नान कर कपडे धारण कर लिये ।

इस प्रकार प्रतिपदा से दसवी तक मैं घर मे ही रहा। बाहर नही निकला, पर प्रतिपदा के बाद दसवी तक पुन स्नान नही किया, और न कपडे ही बदले, साथ ही मै भूख लगने पर नित्य थोडा-थोडा मल लेता रहा, प्यास लगने पर अपना ही मूत्र पी लेता था ।

शुक्ल पक्ष की दसवी को यह अनुष्ठान समाप्त हुआ और एकादशी को मैंने पुन स्नान किया, साबुन लगाकर भली प्रकार से शरीर को साफ किया, कपडे भी बदले और दाँतो को तथा जीभ को भी साफ किया, उसने जो मुझे हड्डियो की माला पहनाई थी वह मैंने अपने गले मे पहिने रखी ।

इस अनुष्ठान को सम्पन्न हुए दो महीने बीते गये है, परन्तु मैं अन्दर-ही-अन्दर पश्चात्ताप की अग्नि मे जल रहा हू, क्योकि अब मै न तो गायत्री मत्र का उच्चारण कर सकता हू और न किसी अन्य देवी देवताओ की पूजा या पाठ कर पाता हू ।

पर इससे आर्थिक वृद्धि असाधारण रूप से हुई है, पिशाचिनी घेर घारकर लोगो को मेरे घर की तरफ ठेलती है और नित्य सौ से ज्यादा लोग मुझे मिलने के लिये आ जाते है, उनको सामने देखते ही उनके भूतकाल की कई घटनाएँ मेरे सामने आ जाती हैं । जब वे अपने भूतकाल की कोई बात पूछते हैं तो मेरे कानो मे उसका उत्तर पिशाचिनी कह देती है और जब मै वही बात सामने वाले व्यक्ति को कहता हू तो वह आश्चर्यचकित हो जाता है और अपना सिर मेरे पैरो मे रख देता है।

इसके बाद जब वह व्यक्ति भविष्यकाल से सबधित प्रश्न पूछता है तो उसका उत्तर पिशाचिनी नही दे पाती, तब मैं अपने मन से कुछ भी कह देता हू पर वह पूरा विश्वास कर लेता है, क्योकि उसने भूतकाल की जो बात पूछी थी वह सही-सही बता दी थी इसीलिये वह प्रभावित रहता ।

कुछ व्यक्तियो ने मेरी परीक्षा भी ली और मैं उसमे भी सफल रहा। एक बार बाहर से एक सेठ आये जिसके तीन पुत्र थे, पर उन्होंने कई लोगो के सामने मुझे प्रश्न पूछा कि पण्डितजी मेरे अभी तक सन्तान नही हुई है, कब होगी ?

तुरन्त ही मेरे कानो मे सुनाई दिया कि इसके तीन पुत्र है । तीनो के नाम ये हैं—उनकी उम्र उनकी आदतो तथा उनके और सेठजी के सम्बन्धो के बारे मे भी मेरे कानो मे ध्वनि आ गई थी ।

मैने जब ये बातें उस सेठ को एक विशेष मुद्रा बनाकर कही तो वह आश्चर्यचकित रह गया और मुझे ससार का सर्वश्रेष्ठ भविष्यवक्ता मान बैठा और सबके सामने मेरे चरणो मे सिर रख पाच हजार रुपये भेंट कर दिये, फिर उसने भविष्यकाल से सबधित प्रश्न पूछा तो मैंने कुछ भी कह दिया पर वह पूरी तरह से आश्वस्त था, अत उसने इन बातो को भी सही मान लिया, उसने मुझे अपने घर भी चलने के लिये प्रेरित किया और कहा कि आप लक्ष्मी वृद्धि के लिये अनुष्ठान करें, आप महान् विद्वान् हैं, यदि एक

लाख भी खर्च होगा तो मैं करूगा, मैंने हा भर ली, यद्यपि मुझे अनुष्ठान नही आता है परन्तु वह मुझसे प्रभावित है और मेरे कहने पर वह खर्च करने को तैयार है।

इस प्रकार नित्य तीन चार हजार की आय हो गई है, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता बढती जा रही है, परन्तु मैं अन्दर-ही-अन्दर खोखला होता जा रहा हू, मेरे जीवन की सारी खुशिया छिन गई है, वह पिशाचिनी पन्द्रह बीस दिनो के बाद रात्रि को आती है और जबरदस्ती से मेरे साथ सम्भोग करके चली जाती है, मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं इससे पिण्ड नही छुडा पाऊगा।

मैं ससार की दृष्टि से सफल हू, सम्पन्न हू, विद्वान् और त्रिकालज्ञ हू, बडे से बडा सेठ मेरे सामने गिडगिडाता है इससे मेरे 'अह' की तुष्टि होती हे, परन्तु फिर भी मैं मन से प्रसन्न नही हू। चित्त मे शान्ति नही है और जीवन मे किसी प्रकार का उमग या उत्साह नही रह गया है।

मैं समझ गया कि आपने मुझे शिष्य क्यो नही बनाया, आपने मुझे क्यो फटकारा था, इस साधना को करने के लिये बार-बार क्यो मना किया था, यह अब मेरी समझ मे आया है, मैं वास्तव मे ही अधम और पापी हू, ब्राह्मण न रहकर कसाई-सा हो गया हू अत इन अपवित्र होठो से आप जैसे महापुरुष का नाम लेना भी मैं पाप समझता हू।

पर, आप दयालु है, कई प्रकार की सिद्धियो के स्वामी हैं, मैं दीन-हीन आपके चरणो की रज हू, मेरी एक विनती है कि आप कोई ऐसा तरीका बताइये जिससे कि मै इससे मुक्ति पा सकू। मैं इस साधना से पूर्व जैसा था उसमे ज्यादा सुखी था, मैं वापस वैसा ही बनना चाहता हू, इस पिशाचिनी से मुक्ति चाहता हू और यह मुक्ति आपके अलावा और कोई नही दे सकता।

मेरा प्रत्येक क्षण दुखमय बन गया है। हर क्षण उसके आने की आशका रहती है और उससे सम्भोग से मेरा शरीर पस्त हो जाता है और ऐसा लगता है जैसे शरीर का खून निचुड गया हो, इस ग्लानि मे शायद मैं ज्यादा जी भी नही सकूगा और मरने के बाद भी मेरी आत्मा भटकती ही रहेगी।

यह पत्र दुखी हृदय से लिख रहा हू, पूरा पत्र रोते सिसकते हुए लिखा है, मैं एक बार—केवल एक बार आपके द्वार पर भिखारी के रूप मे आना चाहता हू, केवल इसलिये कि आप मुझे इस साधना से मुक्ति दिला सकें। कोई ऐसी विधि बतायें जिससे कि मैं इस सिद्धि से मुक्ति पा सकू और सामान्य मानव बन सकू।

मैं आपका कोई हित नही कर सका हू। मै किसी भी योग्य नही हू, मैं आपका शिष्य कहलाने के काबिल नही हू, पर फिर भी ब्राह्मण हू और आप ब्राह्मणो पर कृपा करने वाले है इससे भी ज्यादा आपमे मानवता है, दया है, शक्ति है, और ऐसी सिद्धिया है जिससे आप मुझे वापिस मानव बना सकते हैं, यदि आप ऐसा कर सकेंगे तो मेरा सारा जीवन आपका कृतज्ञ रहेगा और मेरा रोम-रोम आपके उपकारो से ऋणी रहेगा।

अकिंचन

(मधुसूदन शर्मा)

# अष्ट लक्ष्मी साधना

आदरणीय पण्डितजी,

सादर पाय लागन।

आपको जब यह पत्र लिख रहा हू तो हृदय मे एक आनन्द की अनुभूति हो रही है, ऐसा लगता है जैसे मैं अपने जीवनदाता को पत्र लिख रहा होऊ, और यह बात सही भी है क्योकि आपने मुझे ही नही, मेरे पूरे परिवार को जीवनदान दिया है। मैं और मेरा परिवार तो एक प्रकार से मृतक प्राय हो गया था, परन्तु शायद हमारे पूर्वजो का पुण्य बाकी था जिससे कि मेरा आप जैसे दिव्य पुरुष से सम्पर्क हो सका और वापिस जीवन दान प्राप्त हो सका

आप अत्यधिक व्यस्त हैं, और आपके जीवन का प्रत्येक क्षण कीमती और सार्वजनिक हो गया है, दिल्ली मे आपके आने पर मैंने उमडती हुई भीड को देखा है और उन लोगो के मन मे आपसे मिलने की जो चाह और तडफ होती है उसको मैंने अनुभव किया है, मेरी इच्छा बराबर यह रहती है कि मैं आपसे हर महीने भेंट करू परन्तु आप जैसे महापुरुष का दर्शन इतना जल्दी हो जाय ऐसा हमारे भाग्य मे कहा है?

यह बात मैं इसलिए लिख रहा हू कि आपके पास सैकडो पत्र आते है और नित्य सैकडो व्यक्तियो से भेंट करते हैं, इसलिए शायद हमारा स्मरण आपको न रहा हो, परन्तु मैं और मेरा परिवार आपको एक क्षण के लिए भी नही भूला है।

हम चार भाई हैं और पीढियो से हमारे यहा जवाहरात का व्यापार होता है। हमारे पूर्वज इस व्यापार मे अत्यधिक प्रसिद्ध थे और उन्होंने जो सम्मान और गौरव अपनी जाति मे प्राप्त किया वह दुर्लभ है। हमने अपने परिवार मे जब आख खोली तो चारो तरफ वैभव बिखरा हुआ था, हमारा लालन-पालन अत्यन्त ही शान-शौकत के साथ हुआ। मैं चारो भाइयो मे सबसे बडा हू और इसलिए परिवार की पूरी जिम्मेवारी मेरे ऊपर ही रही है, यद्यपि दिल्ली मे हम चारो भाई अलग कोठियो मे रहते थे परन्तु हमारा व्यापार सयुक्त था और हमारी मुख्य दुकान दिल्ली मे थी तथा बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, न्यूयार्क आदि मे भी हमारी दुकानें थी।

हमारा जीवन अत्यन्त वैभव के साथ चल रहा था, हम अग्रवाल हैं और लक्ष्मी पुत्र हैं, हमारे जीवन और प्रतिष्ठा का मुख्य आधार लक्ष्मी ही है, परन्तु एक समय

ऐसा आया कि हम निरन्तर नुकसान मे होते गए और जितना अधिक प्रयत्न क
उतना ही ज्यादा नुकसान होता गया । इस प्रकार नुकसान सहन करते गए, परन्तु
प्रकार स्थिति होते-होते एक दिन ऐसा भी आ गया जब हमे महसूस हुआ कि हम इ
अधिक घाटे मे जा रहे है कि यदि कुछ उपाय नही किया तो शायद दिवालिया बन
पड सकता है ।

हमने अपने खर्चे घटा लिए, पूरे परिवार मे व्यक्तिगत कार्य के लिए बीस-बा
कारें थी वे बेच दी, और एक कार रही, सैकडो नौकर-चाकर हटा देने पडे, मुनी
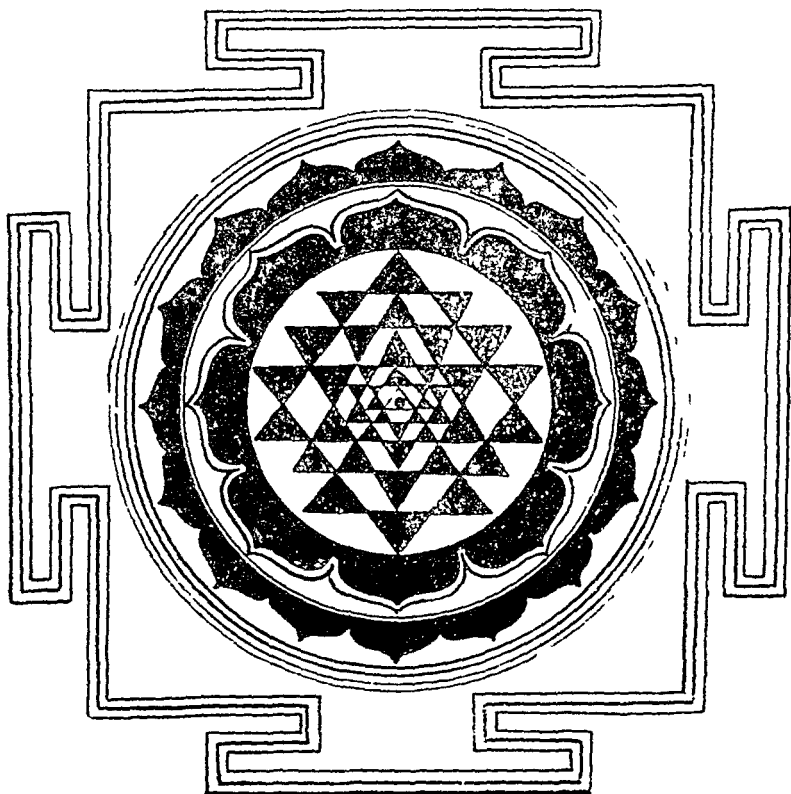
धीरे-धीरे किनारा करते गए, और मजबूरी से हमे कलकत्ता की दुकान वन्द कर देनी पडी, इसके वाद मद्रास की दुकान वन्द हो गई, चार महीने वाद हमे वम्वई की दुकान को भी वन्द करने के लिए विवश होना पडा। इस प्रकार हमारे पूरे परिवार मे केवल एक दिल्ली की दुकान ही वाकी रही, परन्तु फिर भी दुर्भाग्य ने हमारा पीछा नही छोडा और एक ही सौदे मे चालीस लाख का घाटा खाना पडा, फलस्वरूप हमे तीन कोठिया गिरवी रख देनी पडी, मेरा दिमाग खराव हो रहा था, मैं समझ नही पा रहा था कि क्या करू, जितना ही ज्यादा हाथ पैर मार रहा था उतनी ही ज्यादा असफलता हाथ लग रही थी।

इसी वीच एक प्रसिद्ध महाराजा के जवाहरात विकने की वात सुनायी दी, मैं वहा गया और उन जवाहरातो को अपनी दोनो कोठिया गिरवी रखकर खरीद लिया, परन्तु तीसरे दिन ही उन जवाहरातो की चोरी हो गई, यह मेरे जीवन का सवसे वडा आघात था और उसने मुझे खाट पर पटक दिया।

इस प्रकार दो वर्षो मे मै धनपति से कर्जदार हो गया। मेरी चारो कोठिया गिरवी रख दी गई थी, हम चारो भाई एक छोटे से मकान मे किरायेदार वन कर रहने लगे थे, एकमात्र कार भी विक गई थी और एक दिन जव हमने हिसाव लगाया तो ज्ञात हुआ कि हम पर कुल मिलाकर एक करोड का कर्जा है।

जिस प्रकार से स्थिति चल रही थी उस हिसाव से हम एक लाख एक हजार भी देने की स्थिति मे नही थे, मेरी आखो के आगे अधेरा-सा छा गया। परिवार दयनीय स्थिति मे आ गया था, समाज मे हमारी प्रतिष्ठा कमजोर हो गई थी, हम झूठी शान-शौकत भी नही रख पा रहे थे, हम चारो उस दुकान पर वैठते, दुकान मे कुछ माल ही नही था तो फिर ग्राहक क्या आते, इस प्रकार धीरे-धीरे मैं वीमार पडने लगा और मुझे पहला 'हार्ट अटेक' हुआ जिससे मैं मरते-मरते वचा।

कनकधारा देवी
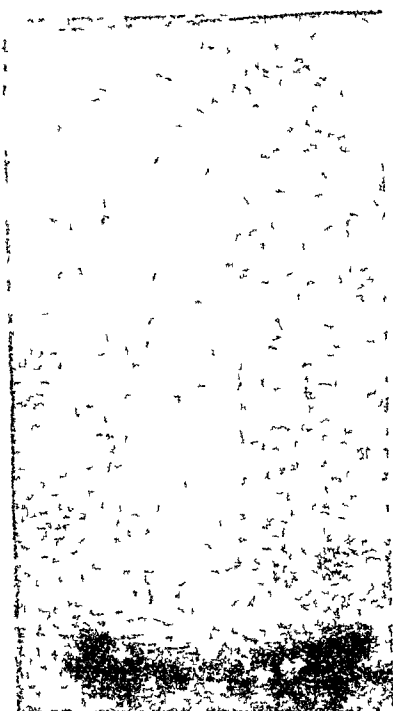
इन दो वर्षों मे मैं सैकड़ो ज्योतिषियो, तान्त्रिको, मान्त्रिको आदि के पास गया और उन्होंने जो कुछ कहा वह मैंने किया, परन्तु कोई भी स्थिति सुधार नहीं सका। मैं निरन्तर कर्जे मे डूबता गया और एक दिन मैंने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया।

आप विचार कर सकते हैं कि ऐसा कठोर निर्णय मैंने कितने दुखी मन से लिया होगा। उस दिन बाजार जाकर मैं नीद की गोलिया ले आया, अपने परिवार के नाम एक पत्र लिखा जिसमें इस दुखद स्थिति की जिम्मेवारी अपने ऊपर ली और उन सबसे क्षमा याचना की, एक पत्र मैंने अपनी पत्नी के नाम लिखा जिसमे मैंने इस गरीबी की स्थिति का जिम्मेवार अपने आप को ठहराया, क्योंकि घर मे बडा मैं ही था अत निर्णय भी मैं ही लेता था और मेरे ही निर्णयो से परिवार इस स्थिति तक पहुचा था।

मैंने दोनो पत्र सिरहाने रखकर शाम को सभी बच्चों को प्यार कर भाइयो से जी भर कर मिल कर अपने कमरे मे आ कर सो गया और नीद की पन्द्रह से ज्यादा गोलिया खा ली। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि यह रात मेरी अन्तिम रात है।

परन्तु दुर्भाग्य मेरा पीछा नही छोड रहा था। रात के तीन बजे मेरी आखें पथरा गई, गले मे खरास पैदा हो गई और घरघराहट की ध्वनि से पूरा परिवार जाग गया, उसी समय मुझे उल्टी हो गई और मैं चाहते हुए भी नही मर सका। मुझे मजबूरी से दूसरे दिन का सूर्य देखना पड गया, पर मेरी इस घटना से पूरा परिवार आशकित हो गया और सभी अपने ऊपर मौत को मडराते हुए देखने लगे।

दूसरे ही दिन सयोग से हमारे किसी समय रहे हुए श्री मूलचन्द दलाल आये, वे केवल मिलने के लिए ही आये थे। उन्होंने पाच साल पहले दलाली का कार्य छोड दिया था और बम्बई मे अपनी स्वय की दुकान खोल दी थी, वे किसी कारणवश दिल्ली आये थे। हमारे घर की स्थिति थोडे-बहुत रूप मे उन्हें मालूम थी, पर उस दिन जब मेरे घर आये और मेरी स्थिति को देखा तो वे अनुभवी होने के कारण सब कुछ भाप गये, उन्होंने मुझे बताया कि आप घबरावें नही और एक बार जोधपुर जाकर पण्डित जी से सम्पर्क स्थापित करें, केवल मात्र वे ही आपको इस विपत्ति से छुटकारा दिला सकते हैं या कोई रास्ता दिखा सकते हैं।

पर मैं पूरी तरह से टूट गया था, मुझे किसी भी ज्योतिषी या तन्त्र-मन्त्र पर भरोसा नही रहा था, पर जब उन्होंने बहुत हठ किया और बताया कि मैं जो कुछ बन सका हू वह उनकी ही कृपा से बन सका हू, दलाली का कार्य छोडने के बाद मैंने उनकी सलाह के अनुसार ही अपनी दुकान खोली थी और आज मैं जो कुछ हू इसमे उनका बहुत बडा योगदान है, अत आप एक बार उनकी राय अवश्य ले लें। यदि आप कहे तो मैं आपके साथ चलने के लिए तैयार हू।

एक सप्ताह बाद जब मैं कुछ स्वस्थ हुआ तो उस दलाल को साथ लेकर मैं जोधपुर आपके निवास स्थान पर पहुचा। वह दलाल जो कि उस समय तक एक सफल धनपति बन चुका था आपसे परिचित था, अत उसके आग्रह से आपसे मिलने का

सौभाग्य प्राप्त हुआ, मैने आपके सामने अपनी सारी कहानी सुना दी, आप चुपचाप सुनते रहे ।

मैंने अपने जीवन के वैभव का भी सही वर्णन किया था और आपके मिलने के समय मैं जिस स्थिति मे था उसका सही-सही सत्य विवरण आपके सामने प्रस्तुत कर दिया था, शायद आप मेरी सत्यता से पसीज गए थे, या मेरा समय अच्छा आने वाला था अत आपने मुझे सान्त्वना दी और बताया कि 'अष्ट लक्ष्मी साधना' से आप वापिस उसी स्तर पर पहुच सकते है जिस स्तर पर आप थे ।

मुझे आपके कथन पर बिल्कुल विश्वास नही हुआ था, परन्तु आपका व्यक्तित्व मुझे प्रभावित कर रहा था और मेरा अन्तरमन इस बात की साक्षी दे रहा था कि यदि कल्याण हो सकता है तो केवल इसी व्यक्ति के द्वारा ही मभव है अन्य कोई उपाय नही है । मैं जिस समय आपसे मिला था, उस समय आश्विन महीना चल रहा था, आपने कहा कि दीपावली पर मैं तुम्हारे लिए अष्ट लक्ष्मी साधना करवा सकता हू और मुझे विश्वास है आने वाले समय मे आप पुन श्रेष्ठ स्थिति पर पहुच सकेंगे ।

आपके कथन पर मेरे साथ आये दलाल को बहुत अधिक विश्वास था, अत उसने निवेदन किया कि आप इनके लिए 'अष्ट लक्ष्मी साधना' यही जोधपुर मे ही सम्पन्न करा लें । ये पति-पत्नी उसमे भाग लेने के लिए यही पर आ जायेंगे । यद्यपि आप उस समय अधिक व्यस्त थे, परन्तु हमारे अनुरोध को आपने मान लिया था, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी । आपने यह भी कहा था कि साधना मे पति-पत्नी भाग लें यह अनिवार्य नही है, परन्तु मैंने मन मे सोचा कि यदि दिल्ली मे कुछ दिन और रहा तो शायद पागल हो जाऊगा, इसकी अपेक्षा तो कुछ दिन जोधपुर मे ही बिता दिए जाय । आपने जो व्यय बताया था मेरे पास तो उसका सौवा हिस्सा भी नही था, परतु दलाल श्री मूलचन्द जी को आप पर अत्यधिक विश्वास था अत उन्होंने सारा खर्चा सहन करने का निश्चय किया ।

आपने अपने कार्यक्रम को देख कर नवरात्रि मे ही इस अनुष्ठान को सम्पन्न करने की स्वीकृति दी, फलस्वरूप मैं तीसरे ही दिन अपनी पत्नी के साथ जोधपुर आ गया था, मूलचन्द जी भी एक दिन के लिए वम्वई जाकर लौट आये थे ।

मैंने मन-ही-मन सोचा कि पण्डितजी जो भी अनुष्ठान करायेंगे उसे मैं अपनी डायरी मे नोट करता रहूगा, यदि यह सफल हो गया तो यह आलेख मेरी पीढियो के लिए लाभदायक ही रहेगा ।

आपने आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से इस अनुष्ठान को प्रारम्भ किया । जहा तक मुझे स्मरण है ग्यारह पण्डितो ने इसमे भाग लिया था, मैंने जब आपसे अष्ट लक्ष्मी के बारे मे पूछा था तो आपने बताया था कि लक्ष्मी प्राप्ति और स्थायी लक्ष्मी के लिए अष्ट लक्ष्मी साधना सर्वश्रेष्ठ है । इसमे (१) धन लक्ष्मी (२) धरा लक्ष्मी (३) वाहन लक्ष्मी (४) यश लक्ष्मी (५) व्यापार लक्ष्मी (६) आयु लक्ष्मी (७) सन्तान लक्ष्मी (८) दारिद्रय विनाशक अखण्ड लक्ष्मी, इन अष्ट लक्ष्मियो की पूजा होती है और

इनसे सबधित साधना सम्पन्न होती है, जिससे कि जीवन मे किसी भी प्रकार का अभाव न रहे ।

आपने ग्यारह कलश स्थापन किये थे और आठ तख्ते बिछाकर उन पर आठ यत्र चावलो से बनाये थे जो कि निम्न प्रकार थे

१ लक्ष्मी यत्र, २ श्री यत्र, ३ कनकधारा यत्र, ४ ऐश्वर्य यत्र, ५ वरदा यत्र, ६ स्थायित्व यत्र, ७ घटाकरण यत्र, ८ कुबेर यत्र ।

इन आठो यत्रो पर क्रमश अष्ट लक्ष्मी की अलग-अलग चादी की प्रतिमाए बनाकर स्थापित की थी, और प्रत्येक यत्र की विस्तार से पूजा की थी, इसके साथ-ही-साथ आपने प्रत्येक यत्र को स्फुरण कर मत्र सिद्ध प्राण प्रतिष्ठा युक्त बनाया था । आपने प्रत्येक पण्डित को अलग-अलग मत्र जपने के लिए दिया था, और तीन पण्डितो को कनकधारा मत्र जपने की आज्ञा दी थी । मैं उन पण्डितो के पास बैठा था और उनसे कनकधारा विनियोग ध्यान और मत्र नोट कर लिया था ।

## कनकधारा सकल्प

ओम् विष्णु-विष्णु तत्पद० मम सकल विघ विजय श्री सुख शान्ति, धन धान्य, यश, पुत्र पौत्रादि प्राप्तये स्मज्जन्म जन्मान्तरीय कुलार्जित सचित महादु ख दारिद्रय-तादि शान्तये व कनकधारा यत्र पूजन मह करिष्ये ।।

## कनकधारा विनियोग

ओम् अस्य श्री कनकधारा यत्र मत्रस्य, श्री आचार्य श्री शकर भगवत्पाद् ऋषि श्री भुवनेश्वरी ऐश्वर्यदात्री महालक्ष्मी देवता, श्री बीज ह्री शक्ति, श्री विद्या रजोगुण, रसना ज्ञानेन्द्रिय रस वाक् कर्मेन्द्रिय मध्यम स्वर, द्रव्य तत्व, विद्या कला, ऐं कीलन, ब्लू उत्कीलन प्रवाहिनी सचय मुद्रा, मम क्षेमस्थेर्यायुरारोग्या भि वृद्धयर्थ श्री महालक्ष्मी अष्ट लक्ष्म्ये भगवती दारिद्रय विनाशक धनदा लक्ष्मी प्रसाद सिद्धयर्थ च नमोयुक्त वाग् बीज स्व बीज लोम-विलोम पुटितोक्त त्रिभुवन भूतिकरी प्रसीद मह्यम्माला मत्र जपे विनियोग

## कनकधारा ध्यान

सरसिज नियये सरोज हस्ते
धवल तमाशुक गन्ध माल्य शोमे
भगवति हरि वल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवन भूति करि प्रसीद मह्यम् ।।

## कनकधारा-मत्र

ओम् व श्री व ऐं ह्री श्री क्ली कनकधाराये स्वाहा ।

मैं तो केवल कनकधारा से सबधित मत्र ही अपनी डायरी में लिख पाया था परन्तु जैसा कि मुझे याद है प्रत्येक लक्ष्मी से सम्बधित अलग विनियोग, अलग ध्यान

तथा अलग मत्र था, इस प्रकार अष्ट लक्ष्मी के आठ मत्र ध्यान, और विनियोग थे, जो कि प्रत्येक पण्डित अलग-अलग यत्र के सामने बैठकर सबधित अनुष्ठान कर रहे थे।

आठ दिन आपके निर्देशन मे कार्य होता रहा, आपके सान्निध्य मे जिन पण्डितो ने जिस प्रकार से कार्य किया था उनकी सराहना करता हू, वास्तव मे—उन्होंने समर्पण भाव से कार्य किया था, आपकी अनुपस्थिति मे उन पण्डितो से जब आपकी चर्चा चलती तो वे आपके प्रति अत्यन्त ही उच्च भाव रखते और अपना सौभाग्य मान रहे थे कि आपके निर्देशन मे उन्हे कार्य अनुष्ठान करने का सौभाग्य हो रहा है।

नवें दिन आपने यज्ञ किया जिसमे विशेप मत्रो से आहुतिया दी गई थी, आपने जितनी सामग्री यज्ञ के लिए मगाई थी उसे देख आश्चर्यचकित रह गया था कि इतनी सामग्री का सयोजन आपने किस प्रकार से किया होगा ?

यज्ञ समाप्त होने के बाद मैं अपनी पत्नी सहित घर चला आया था, आपने एक 'अष्ट लक्ष्मी यत्र' मुझे दिया था जिसे अपनी दुकान पर स्थापित करने के लिए कहा था, मैंने वह यत्र अपनी दिल्ली स्थित दुकान मे स्थापित कर दिया था, परन्तु फिर भी मेरा मन सशय ग्रस्त बना रहा था, क्योकि मैं जब अपने परिवार की स्थिति देखता तो मेरी आखो मे आसू तैर जाते।

परन्तु वास्तव मे ही आप मत्रपूत हैं। यत्र स्थापित करने के दस दिनो बाद ही एक अमेरिकन जवाहरात व्यापारी से भेंट हुई और उसने एक सौदे मे सहयोग का प्रस्ताव रखा। मैं आश्चर्यचकित था कि इस समय भारत मे चार-पाच अरबपति फर्में हैं फिर वह मुझ से ही सौदे के लिए क्यो समझौता करना चाहता है, जबकि मैं तो पूरी तरह से टूटा हुआ था, परन्तु फिर मुझे मालूम हुआ कि उसने एक बार न्यूयार्क स्थित दुकान से सौदा खरीदा था और हमारी ईमानदारी उसके चित्त पर अकित हो गई थी।

उस एक सौदे मे ही हमे बीस लाख रुपये मिले। इसके बाद मेरा कुछ हौसला खुला और उस अमेरिकन जौहरी के साथ भारत के पाच-छ राजघरानो से सौदे हुए और प्रत्येक सौदे मे तीस से चालीस लाख का लाभ हुआ, इस प्रकार उस यत्र को स्थापित करने के दो महीनो के भीतर ही एक करोड का लाभ हो गया था।

मैं ही नही पूरा परिवार आश्चर्यचकित था, और हमारी प्रत्येक सास के साथ आपका नाम निकलता था। इस अनुष्ठान को सम्पन्न हुए एक साल बीत गया है और आज मैं वापस उसी स्थिति मे हू जिस स्थिति मे मैं पहले था। मैंने अपनी चारो कोठिया छुडवा ली हैं जो कि गिरवी रखी हुई थी, पुन कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और न्यूयार्क की दुकानें खुल गई है और आर्थिक दृष्टि से मैं अत्यधिक समृद्ध हू, समाज मे मेरा नाम आदर के साथ लिया जाने लगा है, और यह आपकी कृपा है कि मैं कुछ दिनो पूर्व जवाहरात सघ का अध्यक्ष चुना गया हू।

इस एक वर्ष मे मुझे प्रत्येक सौदे मे लाभ हुआ है, मै जिस सौदे को भी मिट्टी

समझता उसी सौदे मे लाभ हो जाता, और इस एक वर्ष मे मैं पुन सम्पन्नता की स्थिति मे पहुच गया हू ।

पडितजी मैं किन शब्दो मे आपका आभार व्यक्त करू, मैं और मेरा परिवार तो मरा हुआ था, आर्थिक दृष्टि से हम भिखारी बन गए थे, सामाजिक दृष्टि से हम अयोग्य ठहरा दिये गए थे और स्वास्थ्य की दृष्टि से मैंने आत्महत्या का प्रयास कर लिया था, ऐसी स्थिति से इस एक वर्ष मे जिस स्तर पर पहुचा हू वह सब आपके ही प्रयत्नो का फल है । आपका आशीर्वाद मेरा सहायक रहा है ।

वह 'अष्ट लक्ष्मी यन्त्र' मेरी दुकान पर स्थापित है, और इस समय पुन चार सौ से ज्यादा नौकर तथा सौ से अधिक दलाल मेरे व्यापार मे सहायक हैं, यह सब कुछ आपका ही प्रभाव है, मेरे शरीर का रोम-रोम आपका ऋणी है, और जीवन भर ऋणी रहेगा, आज जो कुछ भी मेरी सम्पत्ति है वह आपकी है, उस पर आपका ही अधिकार है । मैं तो केवल निगरानी रखने वाला हू, ऐसा ही भाव मेरे मन मे है, इस सम्पत्ति का आप जिस प्रकार से भी उपयोग करना चाहे कर सकते हैं ।

अनुष्ठान सम्पन्न होने पर मैं आपको कुछ भी दक्षिणा नही दे सका था और आज दक्षिणा देने की बात कहते हुए सकोच और हिचकिचाहट हो रही है कि आप जैसे पुण्यात्मा को मैं दे ही क्या सकता हू ? मेरी सामर्थ्य ही क्या है ? मैं तो उस दिन भी आपके सामने भिखारी की तरह खडा था और आज भी आपके सामने भिखारी के रूप मे ही उपस्थित हू ।

आप तो शायद मुझे भूल गये होंगे क्योकि आप प्रत्येक क्षण क्रियाशील हैं, मेरे जैसे सैकडो धनिक आपके चरणो मे बैठे हुए हैं, अत मेरा स्मरण आपको शायद ही रहा होगा, परन्तु मैं, मेरा परिवार, और मेरी आने वाली पीढिया आपको एक क्षण के लिए भी नही भुला पायेंगी, हमेशा आपके ऋणी हैं और ऋणी रहेगे ।

मैं इस पत्र के माध्यम से, अपनी आत्मा से निवेदन कर रहा हू कि मेरी इस समय जितनी भी सम्पत्ति है वह सब आपके चरणो मे रखी हुई है, आप आज्ञा दें, आप जितनी भी सम्पत्ति को, जिस रूप मे भी व्यय करने की आज्ञा देंगे वह मेरे लिए बिना हिचकिचाहट के स्वीकार्य होगी ।

मेरे दो स्वार्थ हैं—पहला स्वार्थ तो यह है कि मैं आपके चरणो मे उपस्थित होना चाहता हू और इस उम्मीद के साथ उपस्थित होना चाहता हू कि आप मेरी झोपडी मे पधारें और आज्ञा दें कि जिससे मैं और मेरा परिवार धन्य हो सके, दूसरा स्वार्थ यह है कि आप इसी प्रकार के तीन अनुष्ठान और सम्पन्न करावें जिससे कि इस प्रकार के यत्र बम्बई, मद्रास, तथा न्यूयार्क की दुकान मे स्थापित किए जा सकें ।

इस घोर अनास्था के युग मे केवल आप ही ऐसे प्रकाश स्तम्भ हैं जिनके प्रकाश मे हम लोग आगे बढ सकते हैं । आपका स्नेह, आपकी कृपा और आपकी मधुरता मेरे हृदय पर अकित है । यद्यपि मैं शिष्य कहलाने के काबिल नही हू फिर भी मैं आपको

गुरु शब्द से सम्बोधित करना चाहता हू और मुझे आशा है आप इस अकिंचन के अनुरोध को ठुकरायेंगे नही।

मैं और मेरा पूरा परिवार आपके प्रति श्रद्धानत है, कृतज्ञ है, ऋणी है। हमारा सब कुछ आपका है, हम आपके ही हैं। यह मैं अपनी आत्मा से, विचारो को और भावनाओ को व्यक्त कर रहा हू।

मुझे विश्वास है आप मेरे अनुरोध को स्वीकार करते हुए मुझे चरणो मे उपस्थित होने की स्वीकृति देंगे जिससे कि मैं आपको आदर सहित अपनी कुटिया मे लाकर अपने जीवन को और अपने परिवार के जीवन को धन्य कर सकू।

आपका ही—

( हेमचन्द्र अग्रवाल )

# सम्मोहन साधना

पूज्य बाबा जी,

सादर दण्डवत ।

बहुत समय बाद इस पत्र के द्वारा आपको याद कर रहा हू और अपना विनम्र प्रणाम इस पत्र के द्वारा भेज रहा हू । आपको मेरा स्मरण शायद हीं होगा, परन्तु मैं आज से छ वर्ष पूर्व आपको हरिद्वार मे मिला था जबकि आप वहा माताजी के साथ एक मास के प्रवास हेतु आये थे और गीता आश्रम मे ठहरे थे, सबसे पहले मैं वही पर आपसे मिला था ।

आपके बारे मे मैंने कई साधुओ और सन्यासियो से सुन रक्खा था कि आप तान्त्रिक क्षेत्र मे निष्णात हैं साथ-ही-साथ मत्र साधना मे भी आपने सर्वोच्च उपलब्धिया प्राप्त की हैं, मेरा कई बार विचार हुआ कि मैं जोधपुर आकर आपसे भेंट करू और अपने मन की व्यथा आपके सामने प्रकट करू, परन्तु प्रयत्न करने पर भी मैं उस तरफ नही आ सका । एक बार जब कुछ रुपयो का जुगाड हुआ तब मैं जोधपुर आया था, परन्तु उस समय आप जोधपुर से बाहर थे इसलिये मिलना नही हो सका । मैं वहा एक सप्ताह तक हनुमान आश्रम मे ठहरा था और नित्य आपके घर जाकर पता करता परन्तु यही उत्तर मिलता कि अभी आप वापस नही लौटे हैं, लौटने का कोई निश्चित कार्यक्रम भी नही है, अत मैं निराश हो वापस लौट आया था ।

बचपन से ही मैं ब्रह्मचारी रहा हू, घर गृहस्थ का मोह मुझे प्रारम्भ से ही नही रहा, मैंने अपने जीवन को ईश्वर भजन मे ही बिता देने का निश्चय किया था, इसलिये मैंने साधु रूप धारण कर लिया था, परन्तु मेरे भगवे कपडे पहनना व्यर्थ ही रहा, क्योंकि मैं चाहकर भी अपने चित्त को एकाग्र नही कर पाया और ईश्वर भजन की तरफ उन्मुख नही हो पाया, मैं साधारण कार्यों मे लिप्त रहा और धन सचय करने की प्रवृत्ति मेरे मन मे पनपती रही ।

फिर मेरे मन मे विचार आया कि मैं एक आश्रम स्थापित करू और उसके द्वारा जनता को मैं अपने विचारो से प्रेरित करू, जब भी मैं ऐसा सोचता तो अपने आप पर लज्जा आती, क्योकि मुझमे कोई विशेष गुण नही था जिससे कि मैं इस उद्देश्य मे सफलता प्राप्त कर सकता।

मैंने ऋषिकेश को ही अपना क्षेत्र चुन लिया, भगवे कपडे पहनने के कारण रोटी की चिन्ता नही थी परन्तु मेरा मन पूरी तरह से उदास और निराशा से भरा हुआ था, मैं शाम को जब गगा तट पर बैठता तो अपने आप पर ग्लानि आती कि मेरा जीवन एक प्रकार से व्यर्थ ही गया। न तो मैं सही रूप मे गृहस्थ बन सका और न मैं साधु जीवन के उच्च आदर्शो को ही प्राप्त कर सका। एक प्रकार से मैं अन्न पर पलने वाला पशु बनकर रह गया, न मैं तत्र मत्र के क्षेत्र मे किसी को गुरु बना सका और न आध्यात्मिक क्षेत्र मे सफलता प्राप्त कर सका।

यहा पर बाहर से भी कई साधु और सन्यासी आते, नित्य साय गगा-तट पर या गीता आश्रम मे प्रवचन होते, हजारो लोग उन प्रवचनो को सुनने के लिये आते और वे मत्र मुग्ध से प्रवचन सुनते रहते, कई साधु घटो धारा प्रवाह बोलते। वे इस प्रकार तथ्यो को रखते कि जनता उनके पीछे दीवानी बनी रहती, यद्यपि मैं उन प्रवचनकर्त्ता के व्यक्तिगत जीवन से परिचित रहता। उनका जीवन किसी भी प्रकार से आदर्श नही था, वे व्यक्तिगत जीवन मे कामुक, लोभी, और पतित थे, परन्तु जब वे प्रवचन देते तो पता नही उनके होठो पर कैसे सरस्वती आकर बैठ जाती कि वे बोलते ही रहते और श्रोता चुपचाप सुनते रहते। वे जो बात कहते उनका ज्ञान मुझे भी था परन्तु मैं उस ज्ञान को प्रवचन के माध्यम से सही रूप मे नही रख पाता, यद्यपि मेरी इच्छा यही रहती कि मैं भी एक श्रेष्ठ प्रवचनकर्त्ता बनू, घटो धारा प्रवाह भाषण देता रहू और मेरे प्रवचनो को जनता दत्तचित्त होकर सुनती रहे। मैंने एक दो बार प्रयास भी किया, परन्तु पाच-सात मिनट से ज्यादा नही बोल सका। मेरे मन की एक ही लालसा थी कि मैं श्रेष्ठ प्रवचनकर्त्ता बनू और श्रोताओ को अपने प्रवचन के माध्यम से सम्मोहित-सा कर दू जिससे कि वे मेरे प्रवचनो के लिये दीवाने रहे।

इसके लिये मैं कई प्रवचनकर्त्ताओ और साधुओ से मिला, परन्तु किसी ने भी मुझे सन्तुष्टि नही दी, जब मैं उनके जीवन को कुरेदता तो वे मुझसे भी ज्यादा पतित और पाखण्डी प्रतीत होते। एक प्रकार से मुझे साधु जीवन पर ही घृणा हो आई थी।

ऐसे ही ऊहापोह मे एक दण्डी स्वामी ने मेरी समस्या को सुनकर आपसे मिलने की राय दी, और आपका पता भी दिया, परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि जोधपुर जाने पर भी आपके दर्शन नही हो सके। मैं अपने दुर्भाग्य को कोसता हुआ वापस लौट आया।

अचानक एक दिन गीता आश्रम के ब्रह्मचारी धीरेन्द्र स्वामी से बातो-ही-बातो मे पता चला कि आप ऋषिकेश आये हुए हैं और लगभग एक महीने तक वही गगा के किनारे रहेंगे, मैं उस रात्रि को सो नही पाया, चाहता तो मैं यही था कि उसी समय आपसे मिलू, परन्तु रात्रि अधिक बीत जाने के कारण दूसरे दिन प्रात आपसे मिलने का निश्चय किया।

दूसरे दिन मैं प्रात आपके कक्ष मे आया तो आप सन्ध्या वन्दन से निवृत्त हो आसन पर बैठे हुए किसी पुस्तक को पढ रहे थे। मैंने आकर आपके चरणो मे प्रणाम

किया, आपने एक क्षण के लिये मुझे देखा और बिना आशीर्वाद दिये पुन पुस्तक पढने लग गये।

मैं आध घटे तक बैठा रहा, फिर मैंने आपका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करना चाहा तो आपने छूटते ही जवाब दिया कि यहा व्यर्थ ही आये हो, जब तक तुम्हारे मन से पाखण्ड और ढोंग दूर नही होगा तब तक कुछ भी उपलब्धि सभव नही है।

मैं कुछ नही बोला, फिर थोडी देर बाद आपसे निवेदन किया कि मैं तो केवल आपसे मिलने के लिये ही आया हू और कोई प्रयोजन नही है।

आपने हसकर जवाब दिया यहा पर भी असत्य बोल रहे हो तो आगे जीवन मे क्या करोगे ? साथ-ही-साथ आपने बता दिया कि तुम अच्छा प्रवचन करना चाहते हो, मन की मसा यही है कि तुम्हारे भाषण से या प्रवचन से, लोग प्रभावित हो और वे तुम्हे उच्च स्तर का साधु मान लें, जबकि तुम पतित, पाखण्डी और अवसरवादी हो।

मैंने अपनी सारी रामकहानी आपके सामने रख दी। आपका ध्यान पुस्तक की तरफ था, मेरी बात आपने सुनी या नही, मैं नही कह सकता, पर मुझे आपको अपनी राम कहानी कहकर सन्तोष अवश्य हुआ, साथ ही आपने बिना मेरा प्रश्न जाने मेरे बारे मे या मेरी इच्छा के बारे मे जो कुछ कह दिया था उससे मैं यह तो जान गया कि आप विशिष्ट व्यक्ति हैं और मेरा भला आपके द्वारा हो सकता है।

उस समय तो मै लौट आया। परन्तु मैं इस अवसर को हाथ से जाने नही देना चाहता था, अत मैंने निश्चय कर लिया कि गालिया खाकर भी आपकी सेवा करनी है और सेवा के द्वारा ही आपका मन जीतना है, जिससे कि जाने से पूर्व कुछ साधना प्राप्त हो सके।

मैं नित्य प्रात साय आपके कक्ष मे आता और यथासभव सेवा करने का प्रयत्न करता। एक दिन आपके साथ गगा तट पर विचरण करने का भी अवसर मिला।

आपको सभवत स्मरण होगा कि एक दिन एक विशिष्ट सन्यासी स्वामी प्रज्ञानन्द जी आपसे मिलने के लिये विशेष रूप से पधारे थे। उनके बारे मे गीता आश्रम और ऋषिकेश मे कई बातें प्रचलित थी कि वे विशिष्ट योगी हैं और अधिकाश समय ऋषिकेश से दस मील दूर एक पेड पर बैठकर साधना करते हैं। चौबीसो घटे वे पेड पर ही रहते है, यद्यपि उनके कुछ शिष्य नीचे कुटिया मे रहते हैं, परन्तु बहुत ही कम लोगो ने उन्हे पेड से नीचे उतरते हुए देखा था। वे कब मल-मूत्र विसर्जन करते हैं किसी को कोई ज्ञान नही था। जो भी साधु ऋषिकेश आता वह पैदल प्रज्ञानन्द जी के दर्शन करने अवश्य जाता, उनकी सिद्धियो के बारे मे ऋषिकेश मे काफी चर्चाए थी, परन्तु जब उस दिन वे स्वय नियम तोडकर पैदल आपसे मिलने के लिये आये तो ऋषिकेश के हजारो निवासी और साधु महात्मा आश्चर्यचकित रह गये, और उसी दिन ऋषिकेश को आपकी महानता के बारे मे पता चला था। प्रज्ञानन्द जी लगभग चार घटे आपसे एकान्त मे बातचीत करते रहे। इसकी भनक पडते ही

आपके कक्ष के बाहर हजारो नागरिको और साधुओ की भीड लग गई थी। जब वे बाहर निकले तो उनके चेहरे पर अपूर्व आभा विद्यमान थी। एक महात्मा ने उनसे जब आपके बारे मे पूछा तो उन्होंने इतना ही उत्तर दिया कि मैं अपने गुरु भाई से मिलने के लिये आया था, विशेषकर ये मेरे अग्रज हैं, अत इनसे निर्देश लेने और कुछ सीखने के लिये ही आया था, इसके अतिरिक्त उन्होने कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया और तेज कदमो से अपने गन्तव्य की ओर चले गये।

उस दिन लोगो ने आपकी महानता के बारे मे पहली बार जाना और उसके बाद तो चौबीसो घटे आपके कक्ष के बाहर भीड लगी रही, इससे आप कुछ परेशान भी रहे, परन्तु इससे लाभ यह हुआ कि मुझे कुछ अधिक सेवा करने का मौका मिल गया।

जब आपके साधना समय मे भी व्यवधान पडने लगा तो आपने घर जाने का निश्चय कर लिया। जिस दिन आपने यह निश्चय किया उसी दिन एक विशिष्ट सन्यासी आपसे मिलने के लिये आये थे, यद्यपि उनका नाम मुझे स्मरण नही है परन्तु बाद मे मुझे कहा कि वे किसी समय आपके शिष्य रह चुके थे और आपसे मिलने के लिये विशेष रूप से यमुनोत्री से भी दूर अपने स्थान से आपसे मिलने के लिये आये थे। जब आप उनसे बातचीत कर रहे थे तब मैं भी सौभाग्य से उपस्थित था, उस दिन मेरा सौभाग्य ही था कि कक्ष मे आपके शिष्य, आप, मैं और माताजी के अलावा और कोई नही था।

उन्होंने सम्मोहन साधना की चर्चा चलाई थी, तो आपने विस्तार से इस साधना के बारे मे उन्हे समझाया।

आपने बताया कि सम्मोहन दो प्रकार का होता है, एक तो व्यक्ति सम्मोहन और दूसरा 'समूह सम्मोहन।' सम्मोहन के माध्यम से किसी भी व्यक्ति को अपने मन के अनुकूल बनाया जा सकता है, इस प्रकार का प्रयोग करने के बाद सामने वाले व्यक्ति को जो कुछ भी कहा जाता है वह उसी प्रकार से करता रहता है, उसकी सारी इच्छाए विचार और तर्क समाप्त हो जाते है, केवल उसका ध्येय सम्मोहनकर्त्ता के कथन का पालन करना रह जाता है।

दूसरा सम्मोहन 'समूह-सम्मोहन' होता है इसमे सर्वप्रथम स्वय पर सम्मोहन करना होता है। फिर वह सम्मोहनकर्त्ता जहा तक दृष्टि डालता है उस दृष्टिपथ मे जितने भी लोग होते हैं वे सब सम्मोहित से रहते हैं, इस सम्मोहन के द्वारा विशाल भीड भी सम्मोहित की जा सकती है, और उस भीड से मनचाहा कार्य लिया जा सकता है, उस समय उस भीड की इच्छा और तर्क समाप्त हो जाते हैं, केवल वह सम्मोहनकर्त्ता की इच्छाओ का दास बन जाती है, ऐसे समय मे यदि कोई साधु या सन्यासी प्रवचन करता है। तो सामने चाहे हजारो, लाखो व्यक्ति बैठे हो, वे चुपचाप उस प्रवचन को सुनते रहते हैं चाहे वह प्रवचन नीरस हो, परन्तु उस भीड को वह प्रवचन अद्वितीय लगता है और वह भीड यही चाहती है कि इस प्रकार बैठे रहे और सुनते रहे। उस समय

उनकी सारं ज्ञानेन्द्रिया और कर्मेन्द्रिया उस सम्मोहनकर्त्ता के अनुकूल वन जाती हैं तथा ऐसे सनय वह जो भी आदेश या सलाह देता है भीड उस सलाह को मानने मे प्रसन्नता अनुभव करती है।

आपने आगे समझाते हुए वताया कि यदि किसी व्यक्ति को जन मानस पर अपना नियत्रण स्थापित करना है, या जन मानस को अपने नियत्रण मे रखना है, या उसे अपना अनुयायी वनाना है तो इस प्रकार की साधना सर्वश्रेष्ठ रहती है, परन्तु इसमे इस वात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि भीड को यह मालूम नही होने देना चाहिए कि आपने उस भीड पर सम्मोहन किया है।

इसके वाद आपने इस साधना की क्रिया भी अपने शिष्य को समझाई थी, आपने वताया था कि इस प्रकार की साधना शुक्ल पक्ष की पचमी से प्रारम्भ होती है और इसमे एक महीना लग जाता हे।

सर्वप्रथम पचमी को प्रात उठकर स्नानादि कर पीली धोती पहन लेनी चाहिए, इसके अलावा शरीर पर अन्य किसी भी प्रकार का वस्त्र नही होना चाहिए। सूर्योदय से पूर्व ही पूर्व दिशा की ओर किसी भी वट वृक्ष या आक के वृक्ष को निमत्रित कर उसकी एक डाली तोडकर ले आनी चाहिए, यह डाली हरी होनी चाहिए।

तत्पश्चात् सूर्योदय से पूर्व ही नदी तट पर जाकर कमर तक पानी मे खडे होकर दर्ये हाथ मे वह डाली ले ले और दाहिने हाथ मे मूगे की माला ले ले। इस माला मे चौपन मनके होने चाहिए, जो कि मूगे के मनके होते है, मूगा रत्न लाल रग का होता है। और ज्योतिष की दृष्टि से इसे मगल का रत्न माना जाता है।

इसके वाद निम्नलिखित मत्र की इक्कीस मालाए उसी जल मे खडे-खडे जपनी चाहिए, खडे होते समय पानी कमर तक होना चाहिए और पूर्व की तरफ मुह करके खडा होना चाहिए। चौपन मत्र जपने पर एक माला कही जाती है, यदि नदी नही हो तो तालाव मे या अपने घर मे पानी का कुण्ड वनाकर उसमें खडे होकर भी यह साधना की जा सकती है, परन्तु इस वात का ध्यान रखें कि जब तक इक्कीस मालाए समाप्त न हो जाय तव तक किसी से भी वातचीत न करें और कितना ही जरुरी काम हो पानी के वाहर न निकले, इसके अलावा किसी की आवाज आने पर या प्रश्न पूछे जाने पर भी जवाव न दें, केवल मुह से स्फुटित रूप मे मत्र जप करते रहे। यह प्रयोग तीस दिन का होता है।

साधना काल मे पूर्णत ब्रह्मचर्य रखे, साथ ही इन तीस दिनो मे स्त्री जाति से वातचीत न करे, चाहे वह मा, वहिन, पत्नी ही क्यो न हो, यथासम्भव चौवीसो घटे तक मौन व्रत रखे।

इसके अलावा एक समय भोजन करें और लोम-विलोम गति से भोजन किया करें, अर्थात् पहले दिन एक तोला भोजन करे, दूसरे दिन दो तोला। इस प्रकार पन्द्रहवें दिन पन्द्रह तोला भोजन करें, फिर सोहलवें दिन चौदह तोला और इस प्रकार कम करते-करते तीसवें दिन एक तोला भोजन करें, इसके अलावा अन्य किसी भी प्रकार

का कोई अन्न न ले । दूध, पेय पदार्थ आदि का भी सेवन न करे, साथ ही साधना काल मे किसी भी प्रकार की नशीली वस्तु का सेवन भी वर्ज्य है ।

साधना मे प्रात सूर्योदय से पूर्व ही जल मे खडे होकर इक्कीस मालाए फेरे । इसी प्रकार सूर्यास्त के वाद भी जल मे खडे होकर इक्कीस मालाओ का प्रयोग करें । दिन मे मध्यान्ह काल मे अर्थात् वारह वजे से प्रारम्भ करके भी इक्कीस मालाए फेरें, दोपहर को तथा मध्य रात्रि को जप आसन पर वैठकर किया जाता है, साय और प्रात जल मे खडे होकर किया जाना चाहिए ।

आसन पीले रग का होना चाहिए और पूर्व की ओर मुह करके वैठना चाहिए, पद्मासन का प्रयोग आवश्यक है, आखें स्थिर और कमर सीधी रहनी चाहिए, साधक को किसी भी प्रकार के आलस्य आदि से ग्रस्त नही होना चाहिए । एक महीने तक किसी भी पुरुष या स्त्री से सम्भाषण न करे और भोजन स्वय के द्वारा पका हुआ या
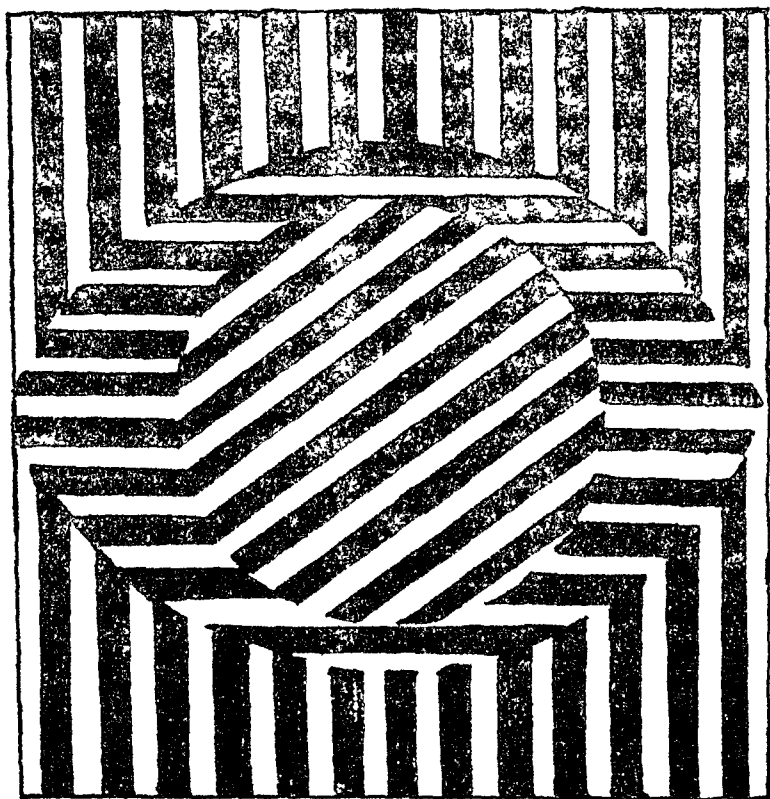
सम्मोहन आधार—इच्छा कम्पन

किसी शुद्ध वर्ण के पुरुष द्वारा पकाया हुआ ग्रहण किया जा सकता है, भोजन सात्विक और शुद्ध शाकाहारी होना चाहिए।

जब तीस दिन समाप्त हो जाय तो इकतीसवें दिन किसी ऐसे माध्यम को चुनना चहिए जो कि सीधा सरल व्यक्ति हो। उसकी उम्र वीस वष से कम हो तो ज्यादा उचित रहेगा। यथासभव माध्यम चौदह-पन्द्रह वर्ष का वालक उचित रहता है, उस दिन उस वालक को सामने बिठाकर मन-ही-मन मत्र का पाच वार जप करना चाहिए और फिर मन मे ही उस वालक को आज्ञा देनी चाहिए कि खडा होकर जल का लोटा भरकर ला। या ऐसा ही कोई सामान्य कार्य मन-ही-मन उस वालक को सम्बोधित करके कहना चाहिए, इसके लिए उस वालक को नाम उच्चारश करने की आवश्यकता नही है, केवल उस पर दृष्टि डालना या उसकी आख मे आख डालकर मन-ही-मन कहना पर्याप्त होता है, ज्योही आप मन मे आज्ञा देंगे त्योही वह बालक यदि उठकर आपका वताया हुआ कार्य कर लेता है तो प्रयोग मफल समझना चाहिए।

इसी प्रकार जब किसी समूह पर सम्मोहन करना होता है, तो समूह को सम्बोधित करने से पूर्व आखें वद कर अपने स्वय के चित्र को या अपने स्वय के स्वरूप को आखो के सामने लाकर पाच बार मत्र जप करना चाहिए, उसके वाद तुरन्त आखें खोलकर सामने बैठे जन समूह पर दृष्टि डालनी चाहिए, उस समय आपकी दृष्टि जितनी दूर तक की भीड को देखेगी वह पूरी भीड आपके प्रति सम्मोहित रहेगी, उसके वाद आप जो भी आज्ञा देंगे वह समूह उस आज्ञा को क्रियान्वित करने मे सौभाग्य समझेगी, या आप जो भी कहेगे वह उनके लिए अमृत के समान होगा, आपके प्रवचन को वह भीड शान्ति से ध्यानपूर्वक सुनेगी और उस भीड को एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव होगा। वे सारे सम्मोहित व्यक्ति वार-वार यही चाहेगे कि आपकी बात को सुनते रहे, प्रवचन समाप्त होने के वाद भी वे एक अजीब-सा आकर्षण आपके प्रति अनुभव करेगे और वे वार-बार आपको देखने, आपकी सेवा करने या आपकी वात सुनने के लिये लालायित रहेगे, उनमे तर्क करने या विरोध करने की क्षमता ही नही रहेगी। एक उच्चस्तरीय प्रवचनकर्ता के लिये यह साधना अत्यन्त आवश्यक है जिससे वह देश और विदेश मे अपने भाषण के द्वारा लोकप्रियता प्राप्त कर सके।

आपने निम्नलिखित मत्र अपने शिष्य को वताया था जो मैने मन-ही-मन उसी समय स्मरण रखा था और बाहर आकर उसे अपनी डायरी मे अकित कर दिया था।

### मंत्र

ओम श्री भैरवी भद्राक्षी आत्मन्, सर्व जन वाक्
चक्षु, श्रोत्र मन स्तभय स्तभय, वाधय वाधय मम
शब्दानुग्रह दर्शय दर्शय दृष्टिपथात् सम्मोहनाय
सम्मोहनाय कुरू कुरू स्वाहा।

मैं इसी प्रकार की साधना जानने के लिये ही तो भटक रहा था और उस दिन अनायास ही मेरी इच्छा पूर्ण हो गई थी। मैं आपके प्रति कृतज्ञ था कि आपने प्रत्यक्ष रूप से भले ही न सही परन्तु मेरे मन की बात जानकर अप्रत्यक्ष रूप से मुझे मेरी मनोवाछित साधना बता दी थी।

उसके तीसरे दिन ही आने जाने वाले लोगो की भीड से परेशान होकर आप जोधपुर के लिये प्रस्थान कर गये थे।

मैंने उसके बाद शुक्ल पक्ष की पचमी से आपने जो विधि बताई थी उसके अनु-सार साधना प्रारम्भ कर दी थी। वहा पर एक फोटोग्राफर के द्वारा आपका जो चित्र लिया गया था उससे मैंने एक प्रति प्राप्त की थी और उसे अपनी कुटिया में रखकर आपको गुरु मान प्रार्थना निवेदन कर साधना कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

शक्ति चक्र

साधना निर्विघ्न समाप्त हो गई थी, यद्यपि मुझे आशका थी कि मैं सफल हो सकूगा या नहीं, परन्तु आपके मौन आशीर्वाद से इस साधना मे सफल हो सका, और साधना के बाद मैंने व्यक्ति सम्मोहन किया और मन-ही-मन जो आदेश दिया उसका

उसने अक्षरश पालन कर दिया था। जब तक उसने मेरी आज्ञा का पालन नही किया तब तक वह कसमसाता रहा और कुछ ऐसा लगा जैसे कि कोई शक्ति उसे इस कार्य को करने के लिये प्रेरित कर रही है, जब उसने आज्ञा का पालन कर लिया तभी उसके चेहरे पर सन्तोष की झलक दिखाई दी।

साधना समाप्ति के बाद पन्द्रह दिन तक मैं विश्राम करता रहा और सोलहवें दिन मैंने गीता आश्रम के सचालको से निवेदन किया कि आज मैं सायकाल को प्रवचन देना चाहता हू, वहा पर कोई-न-कोई प्रवचनकर्त्ता आते रहते हैं अत जब मैंने अपनी बात उनके सामने रखी तो वे विश्वास नही कर सके कि मैं एक घटे तक धाराप्रवाह प्रवचन दे सकूगा, परन्तु मैंने उन्हे किसी प्रकार आश्वस्त किया और उस दिन धडकते हृदय से व्यासपीठ पर जा बैठा।

मेरे सामने अपार जनसमूह बैठा हुआ था। एक क्षण के लिये मैं घबरा गया, परन्तु मैंने अपने सामने आपका चित्र लगा रखा था अत मन-ही-मन आपको प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मुझे पूरी सफलता प्राप्त हो, इसके बाद मैंने स्वय को सम्मोहित कर अपनी दृष्टि सामने फैले हुए जनसमूह पर डाली, अचानक एक विद्युत तरग-सी मेरे सारे शरीर मे दौड गई और कुछ ऐसा लगा कि जैसे मेरे होठ कुछ कहने के लिये उतावले हो। मैंने प्रवचन प्रारभ किया और धाराप्रवाह रूप से निर्धारित विषय पर बोलता रहा। मुझे ज्ञात ही नही हो सका कि समय कैसे बीत गया। उस दिन मैं एक घटा बीस मिनट तक धारावाहित रूप से प्रतिपाद्य विषय पर बोलता गया और अपार जनसमूह शान्त चित्त से सुनता रहा। पूरे भाषण के दौरान इतनी शान्ति रही कि यदि सुई भी गिरती तो उसकी आवाज स्पष्ट सुनाई पड सकती थी, उस सभा मे सैकडो साधु और सन्यासी भी थे, प्रवचन समाप्त होने पर उन सन्यासियो ने मुझे घेर लिया और मेरे प्रवचन की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे। प्रवचन समाप्त होने पर पहली बार परम्परा तोड कर श्रोताओ ने हर्ष से तालिया बजायी थी जो कि मेरे प्रवचन के प्रभाव को स्पष्ट व्यक्त कर रही थी।

परन्तु मुझे कुछ भी ध्यान नही था कि मैं क्या बोला था और किस प्रकार से बोला था, पर गीता आश्रम के सचालको ने मुझे बताया कि आप निर्धारित विषय पर ही बराबर बोलते रहे थे, सबधित विषय से कही पर भटके नही थे। मैं स्वय अपने आप आश्चर्यचकित था।

दूसरे दिन प्रात से ही श्रोता मुझ मिलने के लिए उतावले थे और जहा भी मैं जाता मुझे घेर लेते। वे मेरा दर्शन कर अपना सौभाग्य समझने लगे थे। उनकी राय में मैं विद्वान् और उच्चकोटि का अध्येता हू, तभी तो मैं इस प्रकार के कठिन विषय पर इतनी गहराई और स्पष्टता के साथ बोल सका था।

इसके बाद मैंने एक महीने तक वहा निरन्तर प्रवचन किया, सचालको ने यह उचित समझा कि मेरे प्रवचन को टेप कर लिया जाए, जिससे कि भविष्य मे भी इसका उपयोग हो सके।

आज मै एक श्रेष्ठ आश्रम का सचालक हू, सैकडो शिष्य मेरे पास हैं आर्थिक दृष्टि से मैं सम्पन्न हू और लोगो के अनुसार मेरी जीभ पर सरस्वती विराजमान है, परन्तु मैं अपने आपको समझ रहा हू कि मैं क्या हू ।

मेरा मन बराबर अपने आपको धिक्कार रहा है कि मैंने छुप करके, चोरी से यह साधना आपसे सीखी है, बिना आपकी स्पष्ट आज्ञा के इस साधना को सम्पन्न किया है । जब भी मैं अकेला होता हू मेरा मन पाश्चाताप की अग्नि मे जलने लगता है, अब मैंने यह अनुभव कर लिया कि जब तक पत्र के माध्यम से मैं आपसे क्षमा याचना कर लू तब तक मेरे मन को शान्ति नही मिल सकेगी ।

निश्चय ही मैं आपके प्रति अपराधी हू और इस अपमाध की आप जो भी सजा देना चाहे वह स्वीकार्य होगी । आप आज्ञा दें मैं स्वय आपके चरणो मे उपस्थित होकर क्षमा याचना करू और तब तक आपके चरणो मे पडा रहू जब तक कि आप क्षमा नही कर देंगे ।

इस पत्र के साथ मैं अपना पता लिखा लिफाफा सलग्न कर रहा हू । यद्यपि आप सर्वज्ञ है, आपसे कुछ भी छिपा नही है परन्तु मैं आपके सामने बालक के समान उपस्थित हुआ हू, इसीलिए यह पत्र और अपना पता लिखा लिफाफा भेजने की धृष्टता कर रहा हू । जब तक आपकी आज्ञा प्राप्त नही होगी तब तक मेरा मन इसी प्रकार छटपटाता रहेगा ।

मैं तो अपने मन से आपको गुरु मानता हू और पूर्ण क्षमता तथा सर्वाग सहित आपके प्रति मनन करता हुआ याचना करता हू कि आप मुझे अभय दें जिससे कि मैं अपने अपराध का प्रायश्चित कर सकू और आपके चरणो मे बैठकर कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकू ।

अकिंचन
साधु अमृतानद

# अघोर गौरी-साधना

आदरणीय पण्डित जी,

सादर चरण स्पर्श।

आपसे बिछुडे हुए लगभग एक वर्ष होने को आया है। मुझसे ऐसी क्या त्रुटि हुई हे कि मेरे पत्र का उत्तर भी मुझे प्राप्त नही हो रहा है, इस एक वर्ष मे मैंने कितने ही पत्र आपको दिये होगे, परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे एक भी पत्र का उत्तर प्राप्त नही हो सका। मुझसे यदि कोई गलती हो गई हो तो मै उसके लिए क्षमा प्रार्थी हू। मैं तो बालक हू और बालक हमेशा गलती करते रहते है आप मेरे लिए आदरणीय हैं और एक प्रकार से मेरे सर्वस्व हैं। अत आपसे अलग रहकर मै जीवित नही रहना चाहता। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ हो वह मुझे बतायें जिससे कि मैं उसका प्रायश्चित करू।

मुझे वे दिन याद हैं जब मैं आपके सान्निध्य मे दो साल रहा था और आपसे काफी कुछ ज्ञान मुझे मिला था। यद्यपि मैने आपसे मन्त्र साधना ही सीखी थी परन्तु मैं मन-ही-मन इसलिए चिन्तित था कि मेरी एक ही बहिन है जो कि रग से काली और दिमाग से कुछ कमजोर है, इसलिए बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका कही विवाह नही हो रहा था। मेरे पिताजी ने उसके विवाह के लिए अत्यधिक प्रयत्न किए थे पर अन्त मे थक गये थे और यह निश्चय हो गया था कि अब इसका विवाह होना सम्भव नहीं है।

उसके विवाह के लिए मेरे पिता अपने मकान को गिरवी रखकर भी दहेज की पूर्ति मे हिचकिचा नही रहे थे। उन्होंने कई जगह इस प्रकार आश्वासन भी दिया था कि आप जो भी चाहेंगे मैं यथासम्भव उसकी पूर्ति करूगा, परन्तु फिर भी मेरे पिता अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त नही कर पाये थे।

जिसके घर मे जवान बहिन हो और उसका विवाह नही हो तो माता-पिता या भाई को कितना मानसिक दुख होता है इसकी कल्पना वही कर सकता है जो भुक्त भोगी हो, परन्तु मुझे रह-रहकर एक विचार आ रहा था कि यदि मैं आपके सामने इस समस्या को रखू तो शायद उसका समाधान मिल सकेगा।

पिछली बार जब मैं आपके पास आया था तो मैं इस समस्या से बहुत अधिक

दुखी और परेशान था, परन्तु मेरी आत्मा इस बात के लिए तैयार नही थी कि मैं अपने स्वार्थ के लिए आपको परेशान करू। परन्तु जब एक दिन अघोर मन्त्रो की चर्चा चली तो आपने ऐसे ही एक मन्त्र की चर्चा की थी कि वह मन्त्र सामान्य दिखाई देता है, परन्तु विवाह कार्य मे पूर्ण सफलतादायक है। यह बात सुनकर जहा मुझे मन-ही-मन प्रसन्नता हुई, वही मेरी आखो मे आसू भी छलछला आये। मुझे उस एक क्षण

अघोर गौरी देवी

मे अपनी बहिन का स्मरण हो आया था। मैं उठकर एक तरफ चला गया था। मैं अपने आसू आपको दिखाकर परेशान नही करना चाहता था।

आपने बताया था कि यह मन्त्र अघोर मन्त्रो में विवाह मन्त्र कहलाता है और यदि नित्य इस मन्त्र की एक सौ आठ मालायें फेरें तो ग्यारह दिनो के भीतर-भीतर अनुकूल समाचार प्राप्त हो सकते है, पर आपने यह बताया था कि इस मन्त्र का जप वही करें जिनका विवाह होना है। आपने जो मन्त्र बताया था वह इस प्रकार था

## अघोर विवाह मंत्र

मखनो हाथी जर्द अम्वारी<br>
उस पर बैंठी कमाल खा की सवारी<br>
कमाल खा कमाल खा मुगल पठान<br>
बैंठे चबूतरे पढे कुरान<br>
हजार काम दुनिया का करे<br>
एक काम मेरा कर<br>
न करे तो तीन लाख तैंतीस हजार पैंगम्बरो की दुहाई।

मैंने इस मन्त्र को एक अलग कागज पर नोट कर लिया था और उसके तीसरे दिन आपकी आज्ञा से मैं अपने घर चला आया था।

घर आने पर मैंने देखा कि मेरी घर की स्थिति मे कोई सुधार नही हुआ है और पिताजी बेटी के विवाह की चिन्ता मे घुलकर आधे हो गये हैं और मेरी मा ने खाट पकड ली है।

मैंने आपके बताये हुये मन्त्र का प्रयोग करने का निश्चय किया। यद्यपि यह मेरा अपराध ही है कि विना आपको सूचना दिये इस प्रकार का प्रयोग अपनी बहिन से करवाया परन्तु इसके पीछे मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ था और उससे भी ज्यादा यह स्वार्थ था कि मेरे माता-पिता की चिन्ता दूर हो सके।

मैंने अपनी बहिन को इस मन्त्र के बारे मे बताया तो उसने इस मन्त्र को जपने से मना कर दिया, इससे पूर्व उसने सैंकडो व्रत-तप पूजा-पाठ आदि कर लिये थे और एक प्रकार से वह इन सबसे निराश हो गई थी। उसे विश्वास हो गया था कि यह मन्त्र-तन्त्र झूठे हैं, इनमे किसी प्रकार की कोई सत्यता नहीं है, पर मेरे आश्वासन देने पर कि यह अन्तिम बार है, मेरा कहना मानकर इस मन्त्र का जाप ग्यारह दिन कर ले। यदि इस बार भी सफलता नही मिली तो भविष्य मे तुझे मैं कुछ भी नही कहूगा।

मेरे कहने से उसने इस मन्त्र का जप प्रारम्भ किया। आश्चर्य की बात यह है कि नवें दिन ही मेरे दूर के चाचाजी ने एक लडके के बारे मे सूचना दी। उनका

घर सम्पन्न और हमसे बढा-चढा था, लडका योग्य तथा उच्च पद पर नौकरी कर रहा था, इसलिए मेरे पिताजी को बिल्कुल विश्वास नही था कि वहा सगाई हो सकेगी, परन्तु चाचाजी और मेरे विशेष आग्रह पर वे गये और प्रसन्नता की बात यह है कि उन्होंने सम्बन्ध स्वीकार कर लिया ।

इस अनुष्ठान को प्रारम्भ हुये ग्यारह दिन बीते थे कि लडके वालो ने मेरे घर आ बहिन को देखकर स्वीकृति दे दी । उन्होंने कहा हमे रग-रूप की जरूरत नही है, हमे तो सुशील कन्या चाहिए, दहेज की भी इच्छा नही है, क्योकि भगवान की पूरी कृपा है ।

ग्यारहवें दिन मेरी बहिन ने अनुष्ठान पूरा किया और उसके एक महीने बाद ही विवाह सम्पन्न हो गया । विवाह निर्विघ्न समाप्त हुआ और अब बहिन अपने ससुराल है तथा वहा पूरी तरह से सुखी है ।

मैंने यह पहली बार अनुभव किया कि अघोर मन्त्र भी अपने आप मे चमत्कारिक है । उस दिन बातो-ही-बातो मे आपसे यह मन्त्र प्राप्त हो गया था और इससे एक बार घर का कल्याण हो गया है ।

वास्तव मे ही आपके साथ रहने से प्रत्येक क्षण मूल्यवान बन जाता है । बातचीत के प्रसग मे भी हम शिष्यो को कब कौन-सा रत्न प्राप्त हो जाए, कुछ भी नही कहा जा सकता ।

यद्यपि मुझसे गलती हुई है कि मैंने इस मन्त्र का जप बिना आपकी अनुमति के अपनी बहिन से सम्पन्न कराया है पर इसके लिए इतनी कठोर सजा न दें कि मुझे आपके चरणो से बिछुडना पडे ।

मैं अपने अपराध के लिए बार-बार क्षमा प्रार्थी हू । आप मेरे अपराध को क्षमा कर पत्र का उत्तर दें और स्वीकृति दें जिससे कि मैं आपके चरणो मे उपस्थित हो सकू ।

आपका ही,
कृष्ण गोपाल 'यदु'

# काल ज्ञान मंत्र

आदरणीय गुरुदेव,

सादर चरण स्पर्श ।

यह मेरा सौभाग्य है कि आपका वरदहस्त पिछले बीस वर्षों से मुझ पर है और इन बीस वर्षों मे समय-समय पर आपने जो मुझे तन्त्र-मन्त्र का ज्ञान दिया है उसके लिए मैं आपका आभारी हू, केवल मात्र आभारी शब्द कहने से मैं उऋण नही हो सकता, क्योंकि मेरे जीवन का निर्माण और इस जीवन की सरचना आपकी कृपा के फलस्वरूप ही है, फलस्वरूप मेरा पूरा जीवन आपको समर्पित है ।

मैं कई वर्षों से आपसे 'काल ज्ञान मन्त्र' सीखना चाहता था क्योकि मैंने कई ग्रन्थो मे काल ज्ञान मन्त्र के बारे मे काफी कुछ सुन रखा था, परन्तु कही से भी मुझे काल ज्ञान मन्त्र प्राप्त नही हो सका था, इसके लिए मैंने तन्त्र-मन्त्र की कई पुस्तकें टटोली परन्तु इस प्रकार का मन्त्र मुझे प्राप्त नही हो सका ।

मुझे यह विश्वास था कि आपको अवश्य ही काल ज्ञान मन्त्र का ज्ञान होगा, परन्तु मेरी हिम्मत नही हो रही थी कि मैं इस सम्बन्ध मे आपसे निवेदन करू ।

परन्तु इस बार जब आपने मुझे अभयदान दिया तो मैंने सकुचा कर अपने मन की बात आपके सामने रख दी । आपने जब काल ज्ञान मन्त्र के बारे मे सुना तो मेरे चेहरे की ओर दो क्षण के लिए देखने लगे । मैं उन दो क्षणो मे पसीने-पसीने हो गया था कि शायद मुझसे कोई त्रुटि हो गई है, क्योकि मैं आपकी उस भेदिनी दृष्टि का सामना नही कर पा रहा था ।

परन्तु यह मेरा सौभाग्य था कि आपने काल ज्ञान मन्त्र सीखने की स्वीकृति दी, साथ ही इस मन्त्र के बारे मे बताया कि यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय है और जो साधक उच्चस्तरीय साधना सम्पन्न कर लेता है, तब उसे काल ज्ञान मन्त्र की साधना सिखाई जाती है । इस मन्त्र की साधना करने के बाद ही वह साधक सिद्धाश्रम मे प्रवेश करने का अधिकारी होता है ।

आपने बताया था कि इस मन्त्र की इक्कीस मालाए नित्य फेरनी आवश्यक होती हैं, आसन सूती या रेशमी किसी भी प्रकार का हो सकता है, इसका प्रयोग

प्रयोग के समय अन्य किसी भी प्रकार के विधि-विधान की आवश्यकता नही होती, केवल सामने गुग्गुल धूप लगाते रहना चाहिये।

आपने यह भी बताया था कि एक महीने तक इसका अनुष्ठान करने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है और इसके साथ-ही-साथ वह व्यक्ति भी सिद्ध पुरुष हो जाता है, और किसी को देखते ही उसका भूत, वर्तमान और भविष्य उसकी आखो के सामने स्पष्ट हो जाता है। उस साधक से कुछ भी छिपा नही रहता और वह सामने वाले व्यक्ति की गोपनीय-से-गोपनीय बात जान लेता है, इसी प्रकार वह भविष्य के प्रत्येक क्षण को अपनी आखो के सामने देख लेता है और वह जो कुछ भी कहता है भविष्य मे सत्य होता है, एक प्रकार से कहा जाय तो उसका वचन मिथ्या नही जाता।

आपने यह भी बताया था कि यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय होता है और सामान्य रूप से इस मन्त्र का ज्ञान साधक को नही दिया जाता, जब तक कि सिद्धाश्रम स्थित गुरु की आज्ञा प्राप्त नही हो जाती, सम्भवत यह मेरे पूर्व जन्मो का पुण्योदय था कि आपने मेरी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए मुझे काल ज्ञान मन्त्र प्रदान किया था।

आपने जो मुझे मन्त्र बताया था वह इस प्रकार था

## काल ज्ञान मन्त्र

ओम नमो भगवते ब्रह्मानन्द पद गोलोकादि असख्या ब्रह्माण्ड भुवन नाथाय शशाक शख गोक्षीर कर्पूर धवल गात्राय नीलाभोधि जलद पटलाधिव्यक्तस्वरूपाय व्याधिकर्म निर्मूलोच्छेदन कराय, जाति जरायमरण, विनाशनाय, ससारकान्तारोन्मूल नाय, अचिन्त्य बल पराक्रमाय, अति प्रतिमाह चक्राय त्रैलोक्याधीश्वराय, शब्दै के त्रैलोक्याधिनरिवल भुवन कारकाय, सर्वसत्य हिताय, निज भक्ताय, अभीष्ट फल प्रदाय भक्त्याधीनाय सुरासुरेन्द्रादि मुकुटकोटि धृष्टवाद पीठाय, अनन्त युग नाथाय, देवाधि-देवाय, धर्मचक्राधीश्वराय, सर्व विद्या परमेश्वराय, कुविद्या विघ्न प्रदाय, तत्पादपकजा श्रयानि यवनी देवी सासन देवते त्रिभुवन सक्षोभनी, त्रैलोक्य शिवापहारकारिणी श्री अद्भुत जातवेदा श्री महालक्ष्मी देवी (अमुकस्य) स्थावर जगम कृत्रिम विषमुख सहा-रिणी सर्वाभिचार कर्मापहारिणी परविद्योछेदनी परमन्त्र प्रनाशिनी अष्ट महानाग कुलीच्चाटनी कालदष्ट्र मृत कोत्यापिनी (अमुकस्य) सर्वरोग प्रमोचनी, ब्रह्माविष्णु-रुद्रेन्द्र चन्द्रादित्यदिग्रह नक्षत्रोत्पात मरण भय पीडा मर्दिन त्रैलोक्य विश्वलोक वशकरि भुविलोक हितक महाभैरवि भैरव शस्त्रोपधारिणी रौद्रे, रौद्ररूपधारी प्रसिद्धे, सिद्ध विद्याधर यक्ष राक्षस गरुड गधर्व किन्नर कि पुरुषो दैत्यारगेन्द्र पूजिते ज्वालापात कराल दिगन्तराले महावृपभ वाहिनी, खेटक कृपाण त्रिशूल शक्ति चक्रपाश शरासन शिव विराजमान षोडशार्द्ध भूजे एहि एहि ल ज्वाला मालिनी ह्री ह्री ह्र ह्रा ह्री ह्र ह्रौं ह्र देवान् आकर्षय आकर्पय नाग ग्रहान् आकर्षय आकर्षय यक्ष ग्रहान् आकर्षय आकर्षय गधर्व ग्रहान् आकर्षय भूत ग्रहान् आकर्षय आकर्षय दिव्यतर ग्रहान् आक-

# अनग साधना

परम पूजय स्वामी जी,

दण्डवत प्रणाम।

आज से पाच वर्ष पूर्व आपके चरणो मे उपस्थित हुआ था, सभवत आपको मेरा स्मरण नही रहा होगा। मैं नेपाल मे काठमाण्डू से एक सौ पचास मील दूर कोसाना गाव मे रहने वाला युवक हू और आपका नाम सुनकर आपके चरणो मे उपस्थित हुआ था।

आपके यहा आने से पूर्व मैं अपने जीवन से पूरी तरह से निराश हो चुका था, क्योकि मैं सामान्य रूप से नपुसक था। मैं सही रूप मे सभोग करने मे सक्षम नहीं था और इस सम्बन्ध मे जितनी भी दवाइया लेता उसका विपरीत असर ही मुझे प्राप्त होता।

मैं अपने पिता का इकलौता पुत्र था, इसलिए वे मेरा विवाह करने को इच्छुक थे जिससे कि बहू घर मे आ सके और पौत्र हो जिससे कि उनकी वश परम्परा आगे बढे, परन्तु मैं अपने आपको भली प्रकार से जानता था क्योकि बचपन मे कुटेवें और कुसगति मे पडकर अपने स्वास्थ्य को चौपट कर दिया था। मेरी इन्द्री कमजोर और टेढी हो गई थी। मैं किसी कन्या का जीवन बर्बाद नही करना चाहता था, इसलिए मैं विवाह करने को इच्छुक नही था।

परन्तु मेरे पिता इस सम्बन्ध मे कुछ भी नही जानते थे और मैं शर्म के मारे उन्हे कुछ नही कह सकता था। फलस्वरूप कुछ समय बाद ही मेरा विवाह हो गया। मैं मन-ही-मन लज्जित रहने लगा। मेरी पत्नी मेरे घर आ गई थी, परन्तु मैं हर समय उससे कटा-कटा रहता, क्योकि मेरे मन का चोर मुझे खाये जा-रहा था।

इस प्रकार लगभग एक महीना बीत गया और मैंने एक दिन-भी पत्नी से बातचीत नही की, पिताजी मुझे ठेलकर छत पर भेज देते तो मैं अलग बिछौना बिछाकर सो जाता और ऐसा प्रदर्शन करता जैसे कि मुझे नींद आ गई हो।

परन्तु यह कब तक चलता और एक दिन मेरे इस रहस्य का भण्डाफोड पत्नी के सामने हो गया। पत्नी को जब विश्वास हो गया कि मैं नपुसक हू और मैं किसी भी स्थिति मे पत्नी की इच्छा पूर्ण नही कर सकता तो उसकी आखो मे आसू आ गये। उस

समय मुझे जितनी ग्लानी और वेदना हुई थी उसे मैं ही जान सकता हू। इस प्रकार का दुख और शर्म वही जान सकता है जो भुक्तभोगी हो।

उस रात मैं एक क्षण के लिये भी सो नही पाया। दूसरे दिन मैं विना घर वालो को वताये घर से भाग खडा हुआ। मैं किसी भी हालत मे अपने जीवन को समाप्त कर देना चाहता था।

इस प्रकार मैं लगभग दो महीने भटकता रहा, न तो मेरे खाने का ठिकाना था और न रहने का आश्रय। मेरे पास जो थोडी बहुत पूजी थी वह भी समाप्त हो गई। अत मै इलाहाबाद मे मजदूरी करने लगा। मैं नित्य सगम पर जाकर सो जाता और यदि कोई साधु सन्यासी मिलता तो उसकी थोडी बहुत सेवा भी कर लेता।

एक दिन मैंने अपनी व्यथा एक सन्यासी को वताई तो उसने कहा कि इस सबध मे मेरे पास तो कोई उपाय नही है और गरम दवाइया लेकर तुमने अपने शरीर को वर्वाद कर दिया है। अत दवाइयो से अव तुम्हारा कल्याण नही हो सकता, यदि कोई 'मदन साधन मत्र' का ज्ञान तुम्हे दे या तुम 'अनग यत्र' प्राप्त कर सको तो तुम्हारी समस्या का हल हो सकता है। उन्होंने स्पष्ट वताया कि मैं ऐसे किसी भी साधु को या पण्डित को नही जानता, परन्तु मैंने जोधपुर के श्रीमाली जी का नाम अवश्य सुना है, वे समर्थ हैं और यदि तुम्हारी समस्या का समाधान कोई भी कर सकता है तो वे ही कर सकते हैं।

मेरे मन मे जिन्दा रहने की आशा जगी और मै उसी दिन जोधपुर के लिये रवाना हो गया। जोधपुर मे मै एक धर्मशाला मे टिक गया, परन्तु आपके सामने आने की हिम्मत नही हो रही थी।

एक दिन मन कडा करके आपके सामने उपस्थित हुआ और अपनी पूरी राम कहानी आपके सामने प्रकट कर दी। मैं वात कहता जा रहा था और साथ-ही-साथ मेरी आखो से आसू भी बहते जा रहे थे। सभवत आपको मेरे आसुओ पर तरस आया होगा और आपने मुझे अनग मत्र का ज्ञान दिया था और वताया था कि इस मत्र का एक लाख जप नदी के किनारे किया जाय और जप समाप्ति के वाद एक हजार चमेली के पुष्पो से आहुति दी जाय तो तुम वापस पूर्ण पुरुष वन सकते हो और तुम्हारी वश परम्परा कायम रह सकती है।

आपने जो मत्र दिया था वह इस प्रकार था

## मंत्र

ओम ए मदने मदनविद्रावणे अगसगमे देहि
देहि क्री-क्री स्वाहा।

मैं वापस इलाहावाद आ गया था, और सगम तट पर इस मत्र का जप प्रारभ कर दिया था। चौदह दिनो मे मैंने इस मत्र का एक लाख जप कर दिया था। दिन मे

में एक समय भोजन करता और गगा के किनारे इस मत्र का जप करता। पन्द्रहवें दिन मैंने गगा के किनारे ही एक हजार चमेली के पुष्पो से आहुतिया देकर अनुष्ठान को आपके वताये हुए तरीके से सम्पन्न किया था।

उस रात्रि को पहली वार मुझे अनुभव हुआ जैसे मै सक्षम पुरुष हू। मैंने अपने शरीर को स्पर्श किया तो प्रसन्नता के मारे चीख निकल पडी और मुझ मे आश्चर्य-जनक परिवर्तन आ गया।

अनुष्ठान सम्पन्न कर मैं सीधा अपने घर चला आया। घर वाले यह समझ चुके थे कि मैं हमेशा-हमेशा के लिए घर से चला गया हू। मुझे पाकर उनकी प्रसन्नता

अनग यत्र
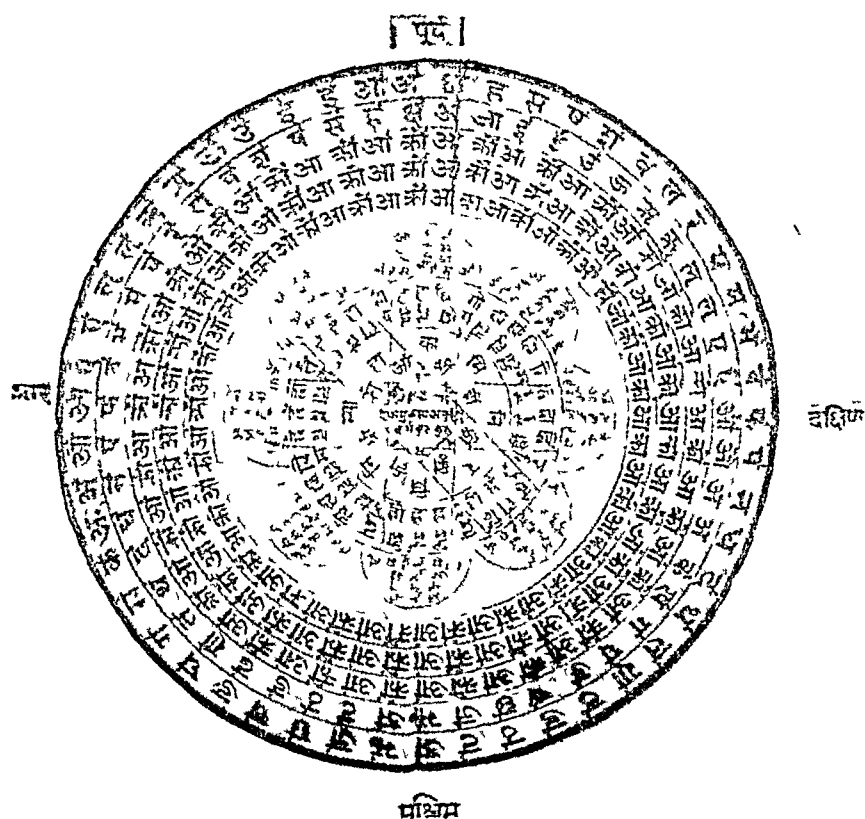
का ठिकाना न रहा। उसी दिन रात्रि को मैंने पूर्ण सन्तुष्टि के साथ अपने पौरुष का प्रदर्शन किया। मेरी पत्नी और मैं पूर्णत सन्तुष्ट थे।

आज मेरे दो पुत्र तथा एक पुत्री है, और यह जो कुछ भी है वह आपकी कृपा के फलस्वरूप ही है। इसके बाद मैं ऐसे तीन और युवको को यह अनुष्ठान सम्पन्न करवा चुका हू और वे पुन नया जीवन प्राप्त कर चुके हैं।

मैं लज्जा के साथ यह पत्र लिख रहा हू क्योकि मैं पिछले पाच वर्षों से आपको पत्र नही दे सका। आपने मुझे जीवन दान दिया है और मुझ मे एक नई चेतना जाग्रत की है। मेरे वश को आगे बढाने मे आपका ही मत्र सहयोग रहा है, इसके लिए मैं और मेरा पूरा परिवार आपका आभारी हे।

इस महीने के अन्त मे मैं अपनी पत्नी और पुत्रो के साथ आपके दर्शनो के लिए आ रहा हू। पिछली वार जव मैं आपके यहा आया था तब मैं कुछ भी भेंट करने के योग्य नही था, परन्तु इस वार मैं आपके चरणो मे पत्र पुष्प अर्पित कर अपने मन के वेग को शान्त करना चाहता हू।

मुझे विश्वास है कि इस महीने के अन्त मे आप जोधपुर मे ही होगे, जिससे कि मैं और मेरा परिवार आपके दर्शन कर जीवन को सफल बना सके।

भवदीय,
(शमशेर बहादुर राणा)

# दत्तात्रेय-साधना

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर चरण स्पर्श ।

आपकी कृपा से मैं सकुशल घर पहुच गया था । आपने जिस प्रकार से दत्तात्रेय साधना करने को कहा था उसी प्रकार से मैंने उस साधना को सम्पन्न किया है और उसका अनुकूल परिणाम भी मुझे प्राप्त हुआ है ।

आपने मुझे आज्ञा दी थी कि मैं साधना सम्पन्न कर उससे सबधित अनुभव को आपके सामने रखू ।

यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे इस बार आपके चरणो मे बैठकर 'दत्तात्रेय साधना' सीखने का अवसर मिला । आपने बताया था कि यह साधना अभी तक गोपनीय रही । बहुत ही कम साधको को इस साधना का ज्ञान रहा है । यह मेरे ऊपर आपका विशेष अनुग्रह है कि आपने कृपा कर इस साधना को करने के लिए मुझे प्रेरित किया ।

आपने बताया था कि यदि किसी का बालक खो जाय, या उसका पता नही चले, इसी प्रकार किसी भी बन्धु बान्धव के खो जाने पर इस प्रकार की साधना सम्पन्न की जाती है, फलस्वरूप खोया हुआ प्राणी साधना सम्पन्न होते-होते घर आ जाता है ।

आपके कहने के अनुसार मैंने इस साधना को शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा से प्रारम्भ किया । सर्वप्रथम मैंने अलग कक्ष मे एक ऊनी आसन बिछा दिया था और उसके सामने एक लकडी का बाजोट या तख्ता रख दिया था जो डेढ फुट लम्बा तथा डेढ़ फुट चौडा था । उस पर लाल वस्त्र बिछा दिया था और उस पर चावलो से दत्तात्रेय यत्र बना दिया था जो कि आपने मुझे बताया था ।

इसके बाद इस यत्र पर एक कासी का कटोरा रखकर उसमे एक किलो तेल भर दिया था और उसके सामने एक छोटा-सा दीपक भी जलाकर रख दिया था ।

पूर्णिमा की रात्रि को स्नान कर लाल धोती पहन नौ बजे मैं आसन पर बैठ गया और फिर दत्तात्रेय यत्र की षोडशोपचार पूजा कर उस पर जो तेल का पात्र था उसकी भी पूजा की ।

तत्पश्चात् सकल्प कर मैंने आपके बताये हुए तरीके से दत्तात्रेय मत्र की इक्यावन मालाए फेरी । आपने मुझे जो मत्र बताया था वह इस प्रकार था

## मंत्र

ओम् ह्रीं क्लीं ऐं श्री महायक्षिण्ये
(लुप्त प्राणी) आगच्छ स्वाहा

रात्रि को जब इक्यावन मालाए समाप्त हुई तो मैं वही आसन पर सो गया। दिन को मैं एक समय भोजन करता और व्यसन आदि का परित्याग कर दिया था।

इस प्रकार तीन रात्रि तक मैंने प्रयोग कर दत्तात्रेय मत्र को सिद्ध कर दिया।
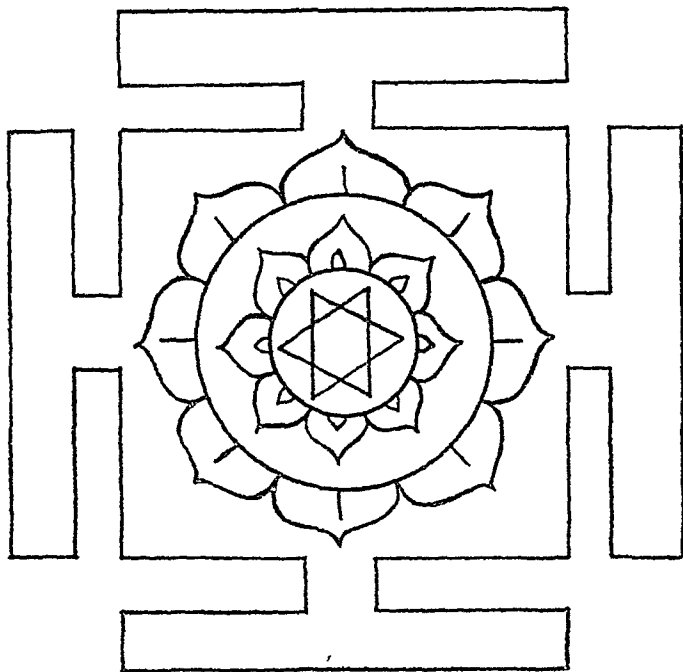
दत्तात्रेय यन्त्र

सयोगवश उन्हीं दिनो मेरे गाव के सेठ श्री कस्तूरचन्दजी के इकलौते पुत्र का अपहरण हो गया था, और दो महीने बीतने पर भी उसका कोई पता नही लग रहा था। पुलिस एक प्रकार से थक गई थी और सेठजी भी पूरी तरह से निराश हो गये थे।

एक दिन सेठजी को किसी ने बताया कि मैं श्रीमाली जी से दत्तात्रेय साधना सीखकर आया हू जो कि इस प्रकार के कार्यों के लिये उपयुक्त है। तब सेठजी ने मुझसे निवेदन किया कि मेरा इकलौता पुत्र रमेश का अपहरण हो गया है और दो महीनो से पता नही चल रहा है, अत आप यदि श्रीमालीजी से इस प्रकार की कोई साधना

सीखकर आये हो तो कृपया उस अनुष्ठान को सम्पन्न कर दें, जो भी व्यय आयेगा मैं वहन करने को तैयार हू ।

यह मेरा पहला अवसर था। मैंने इस अनुष्ठान को करने का निश्चय कर लिया और दूसरे दिन से ही इसके लिये व्यवस्था प्रारभ कर दी। आपने वताया था कि मत्र सिद्ध होने पर किसी भी दिन से इस अनुष्ठान को प्रारम्भ किया जा सकता है और यह अनुष्ठान प्रात नौ वजे से प्रारभ होकर साय पाच वजे तक चलता है। इसमे आसन विछाकर पूर्व की ओर मुह करके वैठना चाहिए और सामने तख्ते पर चावलो से दत्तात्रेय यत्र वनाकर उस पर कासी का कटोरा रख देना चाहिए और उसमे एक किलो शुद्ध मूगफली का तेल भर देना चाहिए। इसके अलावा साधक के चारो ओर एक हजार दीपक जला देने चाहिए। एक व्यक्ति इस कार्य के लिये नियुक्त कर देना चाहिए। वह उन दीपको मे तेल डालता रहे, वे बुझने न पावें। दीपको मे मूगफली या तिल्ली का तेल डाला जाता है।

इस प्रकार वे हजार दीपक प्रात नौ वजे से जलाने चाहिए और साय पाच वजे तक जव तक अनुष्ठान पूरा न हो तव तक उन दीपको को जलाये रखना चाहिए। इस प्रकार यह प्रयोग सात दिन तक होता है और इसमे दत्तात्रेय मत्र की एक सौ एक माला फेरनी पडती हैं। एक माला मे एक सौ आठ मनके होते हैं। कोई भी माला प्रयोग मे ली जा सकती है। आसन पर वैठने के वाद साधक को वीच मे उठना नही चाहिए, ऐसा करने पर सातवें दिन अनुष्ठान सम्पन्न होने से पूर्व ही खोया हुआ वालक या प्राणी घर आ जाता है और यदि वह पहले ही मर गया हो तो उस कटोरे मे वह दृश्य स्पष्ट दिखाई दे जाता है कि उस प्राणी को किसने, कव और किस प्रकार मारा है? साथ ही उसकी लाश कहा पर है?

ऊपर जो मत्र दिया है, उसके कोष्टक मे लुप्त प्राणी के स्थान पर उस खोए हुए वालक या प्राणी का नाम उच्चारण करना चाहिए।

आपने जिस प्रकार से विधि वताई थी उसी प्रकार से मैंने अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया था और अपने आसन के चारो ओर एक हजार दीपक जला दिये थे। एक व्यक्ति इस वात का ध्यान रखता कि किसी भी दीपक का तेल समाप्त न हो जाय।

अनुष्ठान प्रारम्भ होने के चौथे दिन ही सेठजी का पुत्र रमेश घर आ गया था। उसने जो कहानी वताई वह आश्चर्यजनक थी। उसने वताया कि मुझे डाकू अपहरण करके ले गये थे और किसी एक पहाडी मे छुपाकर रख दिया था, परन्तु आज से चार रोज पूर्व (जिस दिन से अनुष्ठान प्रारभ हुआ) एक डाकू का सरदार से मतभेद हो गया और वह रात्रि को चुपचाप मुझे उठाकर भाग गया। उसने आज प्रात गाव के पास मुझे लाकर छोड दिया और कहा कि मेरे भी तुम्हारी उम्र का ही एक पुत्र था जिसे डाकू उठाकर ले गये थे और उसे मार दिया था। उस समय जो मुझे वेदना हुई थी वैसी ही वेदना तुम्हारे माता-पिता को होती होगी, इसलिये मैं तुम्हे छोड देता हू जिससे कि तुम अपने दुखी माता-पिता से मिल सको।

जब बालक घर आ गया तो चौथे दिन साय मैंने अनुष्ठान को समाप्त कर दिया। वास्तव मे ही यह एक आश्चर्यजनक घटना है और इसके लिये मैं आपका अत्यधिक कृतज्ञ हू। बालक के घर आने से सेठजी को जो प्रसन्नता हुई है उसका मैं वर्णन नही कर सकता, साथ-ही-साथ इस कार्य से मेरी प्रतिष्ठा आसपास के गावो मे बहुत अधिक हो गई है।

परन्तु पण्डितजी यह सम्मान और प्रतिष्ठा मेरी नही अपितु आपकी है। पिछले दस वर्षों से मैं आपसे सम्पर्क रख रहा हू और इन दस वर्षों मे आपने जो-जो साधनाए मुझे दी है वे अद्भुत है। मानव कल्याण मे सहायक हैं। जैसा कि आपने कहा था मैं पुन आपके चरणो की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हू कि मैं इन मत्रो का उपयोग जन-कल्याण के लिये ही करता रहूगा।

नवरात्रि मे मैं आपके चरणो मे उपस्थित होना चाहता हू, इसकी स्वीकृति देने की अनुकम्पा करें।

आपका चरणानुरज,
केशव नारायण 'सपा')

## खेल-खेल में सीखो विज्ञान

## 01 ाइंस क्सपेरिमेंट्स

-आइवर यूशिएल

न्हे वैज्ञानिकों के लिए लिखी गई एक ऐसी स्तक—जो स… व रोचक प्रयोगो द्वारा विज्ञान े जटिल सिद्धातो को समझने मे निश्चित रूप से ादद देगी।

*योगो की एक झलक —*

- *कैसे चल पाते हैं जल-सतह पर कीट?*
- *नहाने के बाद क्यो लगती है ठड?*
- *कमरे मे बैठ नापो सितारो की दूरी।*

ससके साथ ही वर्षामापी, सूक्ष्मदर्शी, डायनेमो ादि अनेक उपकरण बनाने की सचित्र वधिया।

मूल्य 24/- डाकखर्च 5/- पृष्ठ 120

English Edition also available

## अनुभवी फोटोग्राफर द्वारा लिखित घर-बैठे फोटोग्राफी सिखाने वाला

## प्रैक्टिकल फोटोग्राफी कोर्स

लेखक ए एच हाशमी

*पोर्ट्रेट्स, ग्रुप्स, स्टिल-लाइफ, लैण्डस्कैप, स्पोर्ट्स तथा स्पीड फोटोग्राफी, विवाह-उत्सव, जानवर, प्राकृतिक दृश्यावलिया आदि सभी मौको के फोटो खीचना सीखो।*

• डेवलपिग • काण्टैक्ट • एन्लार्जमेण्ट • रीटचिंग • डाक्यूमेण्ट कॉपिंग • फिनिशिंग • कलरिंग।

डिमाई साइज 244 पृष्ठ मूल्य 28/ डाकखर्च 6/-

## सर्वश्रेष्ठ ट्रिक्स का अनूठा संकलन

## चिल्ड्रन्स ट्रिक्स एण्ड स्टंट्स

इस सचित्र पुस्तक मे तुम पाओगे

- **ऐसी कुर्सी,** *जिसे तुम नही उठा सकोगे।*
- **ऐसा गुब्बारा,** *जिसे तुम नही फोड सकोगे।*
- **अदृश्य मानव,** *जो तुम्हारी आखो के सामने से गायब हो जाएगा।*
- **अगुली,** *जो हवा मे तैरेगी।*

तुम्हारे दोस्तो को चकरा देने वाली—रहस्यमय, … में आसान 70 ऐसी

## क्विज़ टाइम

*—आइवर यूशिएल*

मूल्य 24/-
डाकखर्च 6/-
पृष्ठ 128

जन-सामान्य तथा विद्यार्थियो के लिए समान रूप से उपयोगी प्रश्नोत्तर शैली मे लिखी यह पुस्तक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, साहित्य, खेलकूद तथा फिल्म जगत से जुडे आधारभूत 1001 प्रश्नो के सचित्र उत्तर प्रस्तुत करती है।

Also available in English

English editio

उदीयमान कार्टूनिस्टो के लिए विशेष उपयोग

## कार्टून कैसे

## अनजाने तथ्य जानिए

# 501 रोचक तथ्य

मूल्य 15/-
डाकखर्च 5/-

- सोडावाटर में बिलकुल सोडा नही होता।
- मनुष्य की रक्तवाहिनियों की कुल लम्बाइ 1 00,000 मील होती है।

*ऐसे ही गुदगुदाने वाले व ज्ञान-विज्ञान के नए क्षितिज खोलने वाले 501 अजाने तथ्य'*

## विचित्र दुनिया—विचित्र लोग

# विश्व के विचित्र इंसान

*— ए एच हाशमी*

मूल्य 20/- डाकखर्च 5/-

बड साइज क 108 पृष्ठ

- दो सिर वाला अजूबा बच्चा कैसा था?
- शरीर से जुडे स्यामी भाई?
- तीन टागो वाला व्यक्ति कैसे चलता था?
- क्या कोई व्यक्ति आधे टन का था?

*ऐसी ही कितनी अन्यान्य विचित्र जानकारिया।*

## विचित्र जन्तुओं का संसार

# विचित्र जीव-जन्तु

*—ए एच हाशमी*

मूल्य 20/-
डाकखर्च 5/-

**टुआटॅरा** *तीन आंख वाला विचित्र प्राणी।*
**काच मेंढक'** जिसकी पारदर्शी त्वचा मे से भीतर *का सारा शरीर दीख पडता है।*
**लैंपधारी मछली** जिसके सिर पर प्रकृति ने *जलने वाले बल्ब दिए हैं।*

*इसी प्रकार के 75 से भी अधिक विचित्र-जत।*

## आर्कीटेक्ट अशोक गोयल की प्रामाणिक पुस्तकें

# होम डेकोरेशन गाइड

मूल्य 36/- डाकखर्च 6/-

*इस पुस्तक म गह-सज्जा सबधी सभी विषयो व विस्तारपूर्वक और चित्रो सहित समझाया गय है*
—धर्मयु

*इस किताब की मदद से छोटी-छोटी जगहो व भी अच्छी तरह सजा कर दर्शनीय बनाया ज सकता है*
—नवभारत टाइम

## 70 से 225 वर्गमीटर के नक्शे

# 51 हाउस डिजाइंस
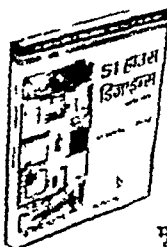
मूल्य 48/- डाकखर्च 6/-

**प्रत्येक नक्शा निम्न बातो को ध्यान मे रखकर बनाया गया है**

- ड्राइग, डाईनिंग, बैठक व बाथरूम एव रसोईघर आदि का सही तालमेल हो
- जगह का सदुपयोग हो सभी कमरे हवादार हो व उनमे कुदरती रोशनी हो आदि।

## 250 से 500 वर्गमीटर के नक्शे (फ्रन्ट एलीवेशन के डिजाइनों सहित)

# माडर्न हाउस प्लान्स

मूल्य 36/- डाकखर्च 6/-

- गेट-स्थान्य क डिज़ाइनो की पूर्ण जानकारी
- सजावटी पेड-पोधो की जानकारी
- कमरो के परस्पर सही तालमेल के तरीके
- मकान-सम्बन्धी प्राविधिक जानकारिया
- बिल्डिग बाई-लॉज का विवरण

# Skill in correspondence ensures
## Brighter Career... Faster Promotion... Sure Success in Business...

*Rapidex*
# Self Letter Drafting Course

Big Size
Pages: 354
Price Rs 50/-

Whether you are an administrator or a supervisor office superintendent or a steno-typist—the skill in correspondence is an art you must master because almost every situation every occasion calls for a well-drafted letter And with this skill in hand none can stop you from getting ahead

***While other books teach you to copy readymade letters given in them this course will teach you how to draft a letter of your own choice***

**FEATURES**

- Sentences and phrases in abundance
- Tick mark the required ones
- Arrange in proper order instantaneously
- Shape & mould the way you want to

And now make as many letters as you want on the same subject

**DIVIDED UNDER 3 SECTIONS**
*It takes care of your personal and social* letters commercial correspondence and applications for job

## कोई भी भाषा सीखें
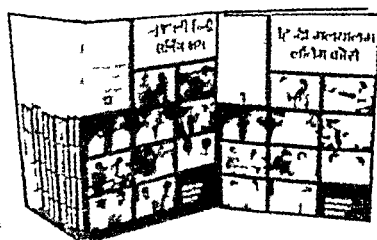
रैपिडैक्स
## लैंग्युएज लर्निंग सीरीज

इतनी सरल व ग्राह्य सीरीज कि आप कुछ ही दिनो में काम चलाने लायक कोई भी भारतीय भाषा बोलने और समझने लगेंगे

**12 खण्डों की सीरीज़ की पुस्तकें**

हिन्दी-तेलुगू लर्निंग कोर्स
हिन्दी-कन्नड लर्निंग कोर्स
हिन्दी-तमिल लर्निंग कोर्स
हिन्दी-बंगला लर्निंग कोर्स
हिन्दी-गुजराती लर्निंग कोर्स
हिन्दी-मलयालम लर्निंग कोर्स

**इसी प्रकार प्रान्तीय भाषाओं से हिन्दी सीखने के लिए भी 6 पुस्तकें उपलब्ध**

सभी पुस्तकें लगभग 250 पृष्ठ मे

## *Books for Science Students*

### General Science
**A series of five books**

The series provides help and guidance on all the major branches of science—*Physics, Chemistry Biology Geology & Astronomy*

Price 15/ each Postage 4/ each

### Quiz Series
**(Work Books for Physics Chemistry Biology & Science)**

Each book in this series contains 1000 quiz type questions covering almost every branch of particular science with answers

Price 12 each Postage 4/ each

Also in Hindi

### Know Science

Know Science offers pupils in the 10-13 age range 1000 questions in the general field of science

Price Rs 15/- Postage Rs 4/-

## कैमरा साधारण हो या बढ़िया—आप स्वयं ट्रिक फोटोग्राफी कर सकते हैं...

# ट्रिक फोटोग्राफी एंड कलर प्रोसेसिंग

—ए एच हाशमी

**बोतल के भीतर आदमी, हथेली पर नाचती औरत, सेब मे से झाकते बच्चे या पत्ते पर प्रेमिका का फोटो उतारिए'**

ट्रिक फोटोग्राफी पर हिंदी मे प्रथम पुस्तक—जिसमे ट्रिक और इफेक्ट की पूरी-पूरी प्रैक्टिकल जानकारी चित्रो के साथ दी गई है इसके अलावा *कलर फोटोग्राफी व कलर प्रोसेसिंग की प्रैक्टिकल जानकारी भी इसमे है जिसकी मदद से आप निगेटिव या ट्रासपेरैंसी की प्रोसेसिंग कर सकते हैं और अच्छे कलर एन्लार्जमैन्ट भी बना सकते हैं।*

डिमाई साइज पृष्ठ 248
मूल्य 32/- डाकखर्च 6/-

---

## डा. नारायणदत्त श्रीमाली द्वारा विरचित

मूल्य 30/-
डाकखर्च 5/-

मूल्य 40
डाकखर्च 6

### तांत्रिक सिद्धियां

मंत्र-अध्येताओ, तात्रिको एव साधको के लिए ऐसी पथ-प्रदर्शक पुस्तक जिसमे दुष्कर तांत्रिक क्रियाओ का सरल एव सचित्र विवरण है।

### मंत्र रहस्य

मत्रो के मूल स्वरूप, मत्र-चेतन्य, मत्र कीलन-उत्कीलन, मत्र-ध्वनि, मत्र-विनियोग एव मत्रो के सफल प्रयोगो के लिए सचित्र ग्रन्थ।

---

## 'रिप्ले' की *Believe It or Not!* अब हिन्दी में भी....

### संसार के 1500 अद्भुत आश्चर्य

पुस्तक में कुदरत के चमत्कारो, अद्भुत ऐतिहासिक घटनाओ, बादशाहो की अजीबो-गरीब सनको, साहस और वीरता के बेमिसाल कारनामो, पृथ्वी, समुद्र और आकाश के जीव-जन्तुओ और वनस्पतियो की अनजानी विचित्रताओ का सचित्र वर्णन किया गया है।

मूल्य 36/- डाकखर्च 6/- पृष्ठ 224

---

- दुर्गा महिमा
- लक्ष्मी महिमा
- शिव महिमा
- गणेश महिमा
- विष्णु महिमा
- हनुमान महिमा

*पुस्तको मे महिमाओ के अतिरिक्त पूजा के मत्र, नैवेद्य आदि की विधिया भी हैं।*

मूल्य 24/- डाकखर्च 5/-

---

## तीर्थ-यात्रा का सुफल पाइये

### हमारे पूज्य तीर्थ

बडे 208पृष्ठ
मूल्य 36/-
डाकखर्च 6/-

यह पुस्तक आपको, तीर्थो की धार्मिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उपयोग मे आने वाले साज-सामान, आने-जाने के मार्ग का निर्देश, ठहरने आदि की वाछित जानकारी प्रदान करेगी।